प्रकाशक

डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

नैक (NAAC) द्वारा A+ ग्रेड प्राप्त

महर्षि दयानन्द मार्ग, नरहरपुरा, औसानगंज, वाराणसी-221001

सम्पर्क सूत्र- 9453666088, वेबसाइट- www.davpgcvns.ac.in

संयुक्तांक : 07-08

प्रभा PRABHA

वर्ष 2023 एवं 2024

Joint Issue 07-08 (2023 & 2024)

ISSN 2394-5974

प्रभा

PRABHA

अन्तर्विषयी सान्दर्भिक समीक्षित शोध-पत्रिका

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Research Journal

वर्ष - 2023 एवं 2024 (संयुक्तांक- 07-08) ISSN 2394-5974

प्रभा

अन्तर्विषयी सान्दर्भिक समीक्षित शोध-पत्रिका

संरक्षक
श्री अजीत कुमार सिंह
मंत्री/प्रबंधक

प्रधान-सम्पादक
प्रो. मिश्रीलाल
प्राचार्य (प्र0)

सम्पादक
डॉ. दीपक कुमार शर्मा

सह-सम्पादक
डॉ. राजेश कुमार झा
डॉ. संजीव वीर सिंह प्रियदर्शी
डॉ. श्रुति अग्रवाल

प्रकाशक
डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज
(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
नैक (NAAC) द्वारा A+ ग्रेड प्राप्त
महर्षि दयानन्द मार्ग, नरहरपुरा, औसानगंज, वाराणसी-221001
सम्पर्क सूत्र- 9453666088, वेबसाइट- www.davpgcvns.ac.in

Year - 2023 & 2024 (Joint Issue- 07-08) **ISSN 2394-5974**

PRABHA

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Research Journal

Patron
Shri Ajit Kumar Singh
Secretary/Manager

Editor-In-Chief
Prof. Mishrilal
Principal (I/c)

Editor
Dr. Deepak Kumar Sharma

Co-Editor
Dr. Rajesh Kumar Jha
Dr. Sanjeev Veer Singh Priyadarshi
Dr. Shruti Agrawal

Publisher
D.A.V.P.G. College
(Banaras Hindu University)
A+ Grade by NAAC
Maharshi Dayanand Marg, Narharpura, Ausanganj, Varanasi-221001
Mob.: 9453666088, website : www.davpgcvns.ac.in

परामर्शदात्री-समिति

- प्रो. संजय कुमार, कुलपति (प्रभारी), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- प्रो. श्रीनिवास वरखेडी, कुलपति, केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नईदिल्ली
- प्रो. कामेश्वर नाथ सिंह, कुलपति, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया
- प्रो. विजयकुमार सी.जी., कुलपति, महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन
- प्रो. मुरलीमनोहर पाठक, कुलपति, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नईदिल्ली
- प्रो. आनंद कुमार त्यागी, कुलपति, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- प्रो. बिहारी लाल शर्मा, कुलपति, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
- प्रो. युगल किशोर मिश्र, कुलपतिचर, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर
- प्रो. हरिशंकर प्रसाद, अध्यक्षचर, शोध अध्ययन बोर्ड, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- प्रो. श्रीकिशोर मिश्र, पूर्व सदस्य- सचिव महर्षि सांदीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन
- प्रो. सुषमा घिल्ड्याल, संकाय प्रमुख, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- प्रो. बिंदा दत्तात्रेय परांजपे, संकाय प्रमुख, सामाजिक-विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- प्रो. एच. के. सिंह, संकाय प्रमुख, वाणिज्य संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- प्रो. सदाशिव कुमार द्विवेदी, समन्वयक, भारत अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- प्रो. अजय कुमार वर्मा, दर्शन विभाग, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नईदिल्ली

शोध-पत्र मूल्यांकन समिति

- प्रो. अरविन्द कुमार, अटल बिहारी वाजपेयी प्रबंधन एवं उद्यमिता संस्थान, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, दिल्ली
- प्रो. सतीश कुमार सिंह, दर्शनशास्त्र विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी
- प्रो. पूनम सिंह, संस्कृत विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी
- प्रो. राहुल, वाणिज्य विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी
- डॉ. अरुण कुमार मिश्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. संजय कुमार, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. मधुसूदन मिश्र, ज्योतिषविभाग, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

Advisory Committee

- Prof. Sanjay Kumar, Vice Chancellor (in-charge), Banaras Hindu University, Varanasi
- Prof. Shrinivasa Varakhedi, Vice Chancellor, Central Sanskrit University, New Delhi
- Prof. Kameshwar Nath Singh, Vice Chancellor, Central University of South Bihar, Gaya
- Prof. Vijaykumar C.G., Vice Chancellor, Maharishi Panini Sanskrit and Vedic University, Ujjain
- Prof. Murali Manohar Pathak, Vice Chancellor, Shri Lal Bahadur Shastri National Sanskrit University, New Delhi
- Prof. Anand Kumar Tyagi, Vice Chancellor, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapeeth, Varanasi
- Prof. Bihari Lal Sharma, Vice Chancellor, Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi
- Prof. Yugal Kishor Mishra, Ex. Vice Chancellor, Jagadguru Ramanandacharya Rajasthan Sanskrit University, Jaipur
- Prof. Harishankar Prasad, Ex. Chairman, Research Studies Board, University of Delhi
- Prof. Shri Kishor Mishra, Former Member – Secretary, Maharshi Sandipani Rashtriya Veda Vidya Pratishthan, Ujjain
- Prof. Sushma Ghildyal, Dean, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- Prof. Binda Dattatreya Paranjape, Dean, Faculty of Social Sciences, Banaras Hindu University, Varanasi
- Prof. H. K. Singh, Dean, Faculty of Commerce, Banaras Hindu University, Varanasi
- Prof. Sadashiv Kumar Dwivedi, Coordinator, Bharat Adhyayan Kendra, Banaras Hindu University, Varanasi
- Prof. Ajay Kumar Verma, Department of Philosophy, Jawaharlal Nehru University, New Delhi

Research Paper Evaluation Committee

- Prof. Arvind Kumar, Atal Bihari Vajpayee Institute of Management and Entrepreneurship, Jawaharlal Nehru University, Delhi
- Prof. Satish Kumar Singh, Department of Philosophy, D.A.V.P.G. College, Varanasi
- Prof. Poonam Singh, Department of Sanskrit, D.A.V.P.G. College, Varanasi
- Prof. Rahul, Department of Commerce, D.A.V.P.G. College, Varanasi
- Dr. Arun Kumar Mishra, Department of Sanskrit, Delhi University, Delhi
- Dr. Sanjay Kumar, Department of Sanskrit, Delhi University, Delhi
- Dr. Madhusudan Mishra, Department of Astrology, Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi

सम्पादक-मण्डल

- प्रो. संगीता जैन, उप-प्राचार्या
- प्रो. राहुल, उप-प्राचार्य
- प्रो. ऋचा रानी यादव, अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग
- प्रो. मधु सिसोदिया, अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
- प्रो. अनूप कुमार मिश्र, अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
- प्रो. स्वाति सुचरिता नंदा, अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
- प्रो. विनोद कुमार चौधरी, अध्यक्ष, इतिहास विभाग
- प्रो. विजय नाथ दुबे, अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग
- प्रो. मीनू लकड़ा, अध्यक्ष, शारीरिकशिक्षा विभाग
- प्रो. सतीश कुमार सिंह, अध्यक्ष, दर्शन विभाग
- प्रो. प्रशांत कश्यप, अध्यक्ष, प्रा.भा.पु.इ.सं. एवं पुरातत्व विभाग
- प्रो. राकेश कुमार राम, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
- डॉ. हबीबुल्लाह, अध्यक्ष, उर्दू विभाग
- श्री कुंवर शशांक शेखर, प्रशासनिक अधिकारी
- श्री सुरजीत, अनुभाग अधिकारी (प्रशासन)

सम्पादकीय संपर्क :

E-mail : prabha@davpgcvns.ac.in

मोबाईल : 9697504867

मूल्य : रू0 250 /-

प्रकाशक

डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

नैक (NAAC) द्वारा A+ ग्रेड प्राप्त

महर्षि दयानन्द मार्ग, नरहरपुरा, औसानगंज, वाराणसी-221001

सम्पर्क सूत्र- 9453666088, वेबसाइट- www.davpgcvns.ac.in

EDITORIAL-BOARD

- Prof. Sangeeta Jain, Vice-Principal
- Prof. Rahul, Vice-Principal
- Prof. Richa Rani Yadav, Head, Department of Psychology
- Prof. Madhu Sisodia, Head, Department of Sociology
- Prof. Anoop Kumar Mishra, Head, Department of Economics
- Prof. Swati Sucharita Nanda, Head, Department of Political Science
- Prof. Vinod Kumar Choudhary, Head, Department of History
- Prof. Vijay Nath Dubey, Head, Department of Commerce
- Prof. Minu Lakra, Head, Department of Physical Education
- Prof. Satish Kumar Singh, Head, Department of Philosophy
- Prof. Prashant Kashyap, Head, Department of A.I.H.C & Arch.
- Prof. Rakesh Kumar Ram, Head, Department of Hindi
- Dr. Habibullah, Head Department of Urdu
- Shri. Kunwar Shashank Shekhar, Administrative Officer
- Shri Surjeet, Section Officer (Administration)

Editorial Contact:

E-mail : prabha@davpgcvns.ac.in
Mob. : 9697504867

Price : Rs. 250/-

Publisher

D.A.V.P.G. College

(Banaras Hindu University)

A+ Grade by NAAC

Maharshi Dayanand Marg, Narharpura, Ausanganj, Varanasi-221001

Mob.: 9453666088, website : www.davpgcvns.ac.in

शुभकामना संदेश

सम्पूर्ण सामाजिक-चेतना का आधार शिक्षण संस्थाएं होती हैं तथा उनका प्रमुख दायित्त्व है समाज तथा राष्ट्र का कल्याण और उसकी उत्कृष्टता के प्रति सजग रहते हुए उनकी अपेक्षाओं को पूर्ण करना एवं नवीन अनुसंधानों के द्वारा आगामी पीढ़ी का पथ प्रदर्शन करना। इस हेतु शोध पत्रिकाएं निश्चित ही एक सशक्त साधन के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन करती हैं।

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि महाविद्यालय की शोध-पत्रिका "**प्रभा**" नित्य उत्कर्ष को प्राप्त कर रही है। प्रकृत अंक के लिए सम्पादक मंडल के समस्त सदस्यों तथा शोधपत्र लेखकों के प्रति अपनी शुभकामनाएं व्यक्त करता हूँ।

(अजीत कुमार सिंह)
मंत्री/प्रबंधक

शुभाशंसा

वैरिञ्चप्रपञ्चान्वितेऽमितेऽखिले भूमण्डलमण्डिततले विविधिगुणखचितसृष्टिर्नितरां चेतांस्यान्दोलयन्ती नृणां विद्योतततेतराम्। ''भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा'' इत्युक्तेरनुसारं देशस्यास्य भारतवर्षस्य भाः प्रतिष्ठिता च केनोपदेशेन औन्नत्यशिखरमाश्लिषेदिति धीमन्तोऽन्तः-करणप्रदेशादहर्निशन्नैजिकेज्ञानाब्धावाशिखरमवगाहनं विधाय शास्त्रद्युतिततिमातन्वते। अध्ययनमेकमाजीवनं प्रचलमाना सङ्क्रान्तिरस्तीति विदुषाम्मतम्। अत्र बहुविधानाञ्शास्त्राणा- मालोडनविलोडनं क्रियत एव किन्वेकस्मिन् विषये एव मतिमादधानः कश्चिच्छास्त्रव्रती भवति। विभिन्नविषयनिष्णाता विशेषज्ञा स्वीयविचारौषधिविटपसंरक्षणङ्कुर्वन्ति चेन्नहि केवलमेकस्य अपितु द्रागेवानेकषो रोगाणामशेषतो हानिं विदधति। सर्वेषां बोधस्तरस्य भृशं वर्धनार्थं काचित् सरणिरपेक्ष्यते सततसंवीक्षणेन विस्मयकारिणी। तत्तच्छात्रेषु तलस्पर्शि पाण्डित्यमात्मसात्कुर्वता- माचार्याणां दर्शनं यथा सम्भवेत्तदर्थं सर्वत्र समेजनाः प्रयत्नशीलाः समवलोक्यन्ते। देशस्य विभिन्नविश्वविद्यालयेभ्यो ज्ञानहैयङ्गवीनप्राप्तये विभिन्ना मूल्याङ्कितान्ताराष्ट्रिया राष्ट्रिया वा शोधपत्रिकाः पुरस्समायान्ति, तन्मध्य एव काशीहिन्दूविश्वविद्यालयेन सम्बद्धे- डी.ए.वी. स्नातकोत्तरमहाविद्यालयेऽपि शोधक्षेत्रं दार्ढ्यमादधती प्रभा विद्वत्सु शोधप्रवित्तिप्रविधिमभिप्रेरयन्ती प्रतिवर्षं प्राकाश्यमाभजते। इयं ''प्रभा'' इति नाम्ना वैशिष्ट्यशोधगुणोपेता नाना शोधनिबन्धान् दधाना शोधपत्रिका (संयुक्ताङ्कः 07-08, वर्षः 2023 एवं 2024) इति रूपे प्राकाश्यमानीयत-इति विदित्वा मोमुदीमो वयं महाविद्यालयीयाः। अनुसन्धित्सूनां कृत इयं वरदस्वरूपा प्राचीनाधुनिकज्ञान-विज्ञानमहिम्ना समेषामुपकाराय बोभविष्यतीत्यहं प्राचार्यत्वेन विश्वसिमि। अस्याः प्रकाशनार्थमशेषविघ्नव्यूहशमनाधिपतिं पशुपतिं सान्नपूर्ण संस्तौमि प्रस्तौमि–

शोधोद्देश्यविधानकर्मचतुरा सामाजिकी सर्वदा
सर्वेभ्यो हितकारिणी प्रतिपलं संवर्धयन्ती जनान्।
नानाज्ञानसुरत्नमण्डनपरा विद्वज्जनैस्संस्तुता
भूयाच्छोधसुपत्रिकाऽतिविमला लोके प्रभा भूरिशः॥

प्रो. मिश्रीलालः
प्राचार्य (प्र0)

सम्पादकीय

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिः आसंसारं न दीप्यते॥

भारतीय आर्ष-मनीषा सम्पूर्ण विश्वप्रपञ्च को तब तक अंधकार से युक्त मानती है जब तक कि ज्ञान-रूपी प्रकाश से वह प्रकाशित न हो जावे। अतएव ज्ञान के महत्व को शब्दों की मर्यादा में पूर्णरूपेण परिभाषित कर पाना अशक्य है तथा ज्ञान वह वस्तु है, जिसका ग्रहण चेतनायुक्त प्राणी के द्वारा सम्पूर्ण-जीवन पर्यन्त सतत गतिशील रहता है। ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया को किसी एक निश्चित विषय पर आकृष्ट कर लेना और उसके अनुसन्धान हेतु तत्पर हो जाना ही सामान्य शब्दों में शोध या अनुसंधान है जो कि औपचारिक या अनौपचारिक रूप से ग्रहण किया जाता है।

शोध या अनुसंधान के द्वारा गवेषक अपने विषय में प्राप्त होने वाले परिणाम को प्रकाशित करने के साथ ही आगामी पीढ़ी को भी एक नवीन दृष्टि-पथ प्रदान करता है जो कि किसी भी राष्ट्र की भौतिक सम्पदा से भी अधिक श्रेयस्कर अमूल्यनिधि है। प्रस्तुत शोध-पत्रिका भी राष्ट्र के विद्यार्थियों, गवेषकों के समक्ष विभिन्न-विषयों पर प्राप्त शोधलेखों को समीक्षित करके प्रदान करने का एक माध्यम है।

''प्रभा'' इस दृष्टि से भी विशेष है कि इसमें लेखों को ग्रहण करने से उसके मूल्यांकन तथा प्रकाशन का समस्त उपक्रम पूर्णतः पारदर्शी तथा निःशुल्क है, जिसमें कोई भी अध्येता अपना लेख प्रदान कर सकता है प्रत्युत मूल्यांकन-समिति की अनुशंसा के बाद ही उसे ग्रहण किया जाता है। सदस्यता आदि शुल्क भी इसीलिए नहीं रखा गया है कि हमें मात्र गवेषक की गवेषणा की अपेक्षा है न कि उससे प्राप्त धन के द्वारा हम पोषण करें। अतएव लेख-प्रकाशन में सदस्यता-प्राप्त करने को भी ग्रहण नहीं किया गया है।

प्रस्तुत अंक (संयुक्तांक 07-08, वर्ष 2023 एवं 2024) अत्यन्त उपादेय होगा, क्योंकि इसमें अनेक उत्तम कोटि के विद्वानों के शोधपत्रों का समाहार किया गया है साथ ही शोधछात्रों के भी प्रयास सराहनीय हैं। प्रकृत अंक के समस्त लेखकों के प्रति अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त करते हुए उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ एवं परामर्शदातृ-समिति, मूल्यांकन समिति तथा सम्पादक मण्डल के आचार्यों के प्रति अपनी प्रणामाञ्जलि अर्पित करते हुए महाविद्यालय के प्रबंधक तथा अभिभावक श्री अजीत कुमार सिंह जी एवं प्राचार्य प्रो0 मिश्रीलाल जी के प्रति सप्रणति कृतज्ञता समर्पित करता हूँ, क्योंकि आपका निरंतर मार्गदर्शन और अप्रत्याशित अभिप्रेरणा ही हमारा सम्बल है और अन्त में भगवान् विश्वनाथ जी से इस अंक की सफलता की कामना करता हूँ।

।। इति शम् ।।

विद्वदवच्चरणसरोजरेणु
दीपक कुमार शर्मा
सम्पादक

विषय-सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ सं.
1.	आचार्य मम्मटप्रणीत काव्यप्रकाश का वैलक्षण्य **प्रो. पूनम सिंह**	**1-5**
2.	कार–ए–जहाँ दरज़ है : एक मुताला **डॉ. हबीबुल्लाह**	**6-11**
3.	उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भूमिका **डॉ. प्रतिमा गुप्ता**	**12-20**
4.	श्रीमन्त शंकरदेव का भक्ति विषयक चिन्तन **डॉ. दीपक कुमार शर्मा**	**21-26**
5.	शाङ्करभाष्य पद्धति विमर्श (ब्रह्मसूत्र चतुस्सूत्री पर्यन्त भाष्य के आलोक में) **डॉ. घनश्याम मिश्र**	**27-32**
6.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वैदिक कृषिकर्म की प्रासङ्गिकता **डॉ. सविता ओझा**	**33-38**
7.	वेदों में वर्णित औषधियों द्वारा समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा **डॉ. अमित भार्गव**	**39-43**
8.	आहार एवं पोषण **डॉ. पुष्पा कुमारी**	**44-50**
9.	महाकवि कालिदास के नाटकों में रमणीयता के प्रतिपादक तत्त्व **डॉ. रंगनाथ**	**51-54**
10.	काव्य–भाषा और नागार्जुन की सामाजिक जीवन की कविता **डॉ. नीलम सिंह**	**55-64**
11.	उर्दू उपन्यासों में स्त्री विमर्श और शोषण की गाथा उपन्यास ''शेल्टर–होम शेल्टर'' के विशेष संदर्भ में **डॉ. शमशीर अली**	**65-71**
12.	पाण्डुलिपि की संरचना, संरक्षण एवं पुनः प्रसारण में भूमिका **हर्षराज दुबे, प्रो. कृपाशंकर शर्मा**	**72-80**
13.	वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार की भूमिका **संदीप कुमार शर्मा**	**81-89**
14.	"स्वाध्यायोध्येतव्यः" इतिविधिवाक्यस्य विमर्शः **डॉ. अरुणकुमारमिश्रः**	**90-98**
15.	वैदिककाले अंकगणितस्वरूपम् **डॉ. नवनीतशर्मा**	**99-109**
16.	सांस्कृतिकपरम्परासंरक्षणे संस्कृतस्यावदानम् **डॉ. अंकितातिवारी**	**110-115**
17.	किरातार्जुनीयस्य पदप्रयोगवैशिष्ट्यम् **डॉ. सुदेष्णादाशः**	**116-123**

18.	रसास्वादनहेतवः समासाः **डॉ. बसन्तकुमारमुद्रा**	**124-135**
19.	पाणिनीयव्याकरणे सांस्कृतिकदृष्टिः **डॉ. मनीषशर्मा**	**136-140**
20.	वैलक्षण्यगुणोपेता भ्राजते व्यासभारती **डॉ0 त्रिपुरसुन्दरी**	**141-143**
21.	वाक्यपदीयस्थब्रह्मकाण्डवैशिष्ट्यविमर्शः **शिवप्रसादपाण्डेयः**	**144-150**
22.	श्री अरविन्दः साम्प्रतिकसमाजे तदीयदर्शनस्य दार्शनिकविचारस्य प्रासङ्गिकता च **नवकुमारपण्डा**	**151-153**
23.	अधिशाकुन्तलं सौन्दर्यम् **श्वेता**	**154-163**
24.	Visible Scars, Invisible Wounds: Women and Acid Violence in India **Swati Sucharita Nanda, Hasan Bano**	**164-172**
25.	Culture of Varanasi: A Psychological Analysis **Rajesh Kumar Jha**	**173-177**
26.	Indian Knowledge System: A Comprehensive Exploration **Dr. Sanjay Kumar Singh**	**178-185**
27.	Some Reflection on Indian Philosophy: Reference to K. Satchidananda Murty **Dr. Sanjeev Veer Singh Priyadarshi**	**186-191**
28.	Influence of Equal Employment Opportunity on Employee's Performance: An Inquisitive Review **Dr. Satyarth Bandhal**	**192-199**
29.	The Power of Education: Assessing the Role of Beti Bachao Beti Padhao on Female Education and Health Outcomes **Dr. Shruti Agrawal, Dr. Sonal kapoor**	**200-206**
30.	Digital Entrepreneurship & Digital Business **Mitin Ahuja**	**207-215**
31.	The role of Artificial Intelligence in Investment Management: Emerging Trends and Future Prospects **Dr. Priyanka Wahal**	**216-225**
32.	Analysing the Philosophy of Integral Humanism by Pandit Deendayal Upadhyaya Ji **Dr. Gaurav Kumar Mishra**	**226-231**
33.	Fostering Economic Growth Through Entrepreneurship: Key Determinants And Policy Interventions **Ved Prakash Singh**	**232-242**
34.	Role of Corporate Social Responsibility as a means of fostering Future Skilled Workforce via Vocational Education and Training **Tanu Mazumder, Dr. Mayank Kumar Singh**	**243-248**
35.	Science & Religion **Dr. Sunita Barman**	**249-252**
36.	'प्रभा' शोध-निबन्ध प्रकाशन सम्बन्धी नियम एवं निर्देश	**253-254**

आचार्य मम्मटप्रणीत काव्यप्रकाश का वैलक्षण्य

प्रो0 पूनम सिंह*

अलंकारशास्त्र के इतिहास में काव्यप्रकाश ही एक ऐसा प्रौढ़ ग्रन्थ है, जो स्वीयोत्कर्ष के कारण पौर्वात्य काव्यशास्त्र और काव्यतत्व की आत्मा स्वरुप है। यदि उसका मूल विषय हृदयंगम हो जाये, तो परवर्ती प्रायः सभी आचार्यों ने मम्मट का ही अनुसरण किया है। काव्य ज्ञान एवं निर्माण में नैपुण्य प्राप्त करने के लिए ही 'अलंकारशास्त्र' विधा का प्रारम्भ हुआ। इस विधा का प्रादुर्भाव कब से हुआ यह निश्चित करना अत्यन्त कठिन है। वर्तमान में काव्यशास्त्र से सम्बन्धित उपलब्ध ग्रन्थ भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' है, लेकिन यह विशुद्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ नहीं है। इसके बाद आचार्य भामह कृत काव्यालंकार है, भरत के पूर्व यास्क रचित 'निरुक्त' में भी उपमादि का किञ्चित् विवेचना प्राप्त होती है। पाणिनि की अष्टाध्यायी तथा पतञ्जलि के महाभाष्य में भी काव्यशास्त्र विषयक कुछ विचार प्राप्त होते हैं। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में काव्यशास्त्र के उद्गम पर प्रकाश डाला है। लेकिन आशैशव सरस्वती की क्रोड क्रीडित पुत्तलिका शब्दब्रह्म की साधना में सिद्ध–प्रसिद्ध विद्यार्णव की अतल–स्पर्शिनी गहराइयों में निरन्तर निमग्न, भारतीय काव्यशास्त्रीय लाक्षणिक मेघा धुरीण महामनीषी आचार्य मम्मट संस्कृत साहित्य जगत् के वो देदीप्यमान सितारे हैं। जिनकी किरणें न कभी धूमिल हुई, ना ही होने वाली हैं। अक्षुण्य प्रकाश से प्रकाशित रहने वाला यह नक्षत्र संस्कृत साहित्य जगत् का वो अलौकिक रत्न है जिसके विषय में यह सूक्ति चरितार्थ होती है– **न भूतो न भविष्यति।**

आचार्य मम्मट कश्मीर निवासी थे इसमें सन्देह नहीं है, और लगभग 11वीं शताब्दी के अन्तभाग में इनका प्रादुर्भाव हुआ था। प्रायः संस्कृत साहित्य जगत् में आचार्य मम्मट से पूर्व जितने भी आचार्यों ने अपना महनीय योगदान दिया था, साहित्य विषय के अन्वेषण, निरूपण और विवेचन में इन सभी को संग्रहीत करके आचार्य मम्मट ने अपनी मनन एवं विवेचन प्रक्रिया से उस सागर को मथकर जो नवनीत निकाला, वो नवनीत उन्होंने काव्यप्रकाश नामक ग्रन्थ में भर दिया। भीमसेन ने काव्यप्रकाश की सुधासागर टीका में मम्मट को **'वाग्देवतावतार'** की उपाधि से विभूषित किया।[1]

शब्दब्रह्म सनातनम् न विदितंशास्त्रैः क्वचित् केनचित्
तद्देवी हि सरस्वती स्वयमभूत् काश्मीरदेशे पुमान्।
श्रीमज्जैयटगेहिनीसुजठराज्जन्माप्य युग्मानुजः
श्रीमन्मम्मट्संज्ञयाश्रीततनुं सारस्वतीं सूचयन्।।
मर्यादाम् किल पालयन् शिवपुरीं गत्वा प्रपठ्यादरात्

* संस्कृत विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कालेज, वाराणसी।

शास्त्रम् सर्वजनोपकाररसिकः साहित्यसूत्रम् व्यधात्।
तद्वृत्तिं च विरच्य गूढ़मकरोत काव्यप्रकाशं स्फूटं
वैदग्ध्यैकनिदानमर्थिषु चतुर्वर्गप्रदं सेवनात्।।[2] (भीमसेनकृत सुधा सागर टीका)

ये पंक्तियाँ मम्मट की प्रशंसा में आचार्य भीमसेन द्वारा सुधा सागर टीका में लिखी गयी हैं। उनके विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि ये अभिनवगुप्त भी स्वयं मम्मट ही थें क्यों? तो कुछ टीकाकारों का तर्क था कि गुप्तपाद होता है–गुप्तौ पादौ यस्य असौ गुप्तपादः सर्पः। मम्मट के छात्र जीवन में जब भी कोई शास्त्रार्थ होता था, तो इनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा इतनी तेज थी कि वो अपनी मेधा शक्ति से ऐसा तर्क उपस्थित कर देते थे, जिसका उत्तर तत्कालीन आचार्यों के पास नहीं होता था। इसलिए समकालीन गुरुओं और छात्रों ने यह कहना शुरू कर दिया था कि, भाई अन्य जो कोई प्रश्न करेगा, उसका तो जवाब है, लेकिन मम्मट जब प्रश्न करेगें तब उसका कोई जवाब नहीं है इनके काँटे का कोई इलाज नहीं, इसलिए इनका नाम कर दिया था गुप्तपाद। चूँकि गुप्तपाद प्रसिद्धि है सर्प में, इसलिए ये हो गये अभिनवगुप्तपाद। आचार्य मम्मट के विषय में एक और किंवदन्ती प्रचलित है कि नैषधीयचरितम् के लेखक महाकवि श्रीहर्ष के मामा थे मम्मट। श्रीहर्ष ने जब अपनी रचना मामा को दिखाया, आचार्य मम्मट ने महाकाव्य पढ़ा, पढ़ते ही उन्होंने कहा–भान्जे ये पुस्तक तूने बहुत बाद में लिखी, अगर काव्यप्रकाश से पहले लिखा होता तो सातवें उल्लास में दोष प्रकरण का उदाहरण ढूढने के लिए मुझे अन्य ग्रन्थ न देखने पड़ते। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि आखिर उनकी प्रतिभा कितनी ऊँची रही होगी। दूसरी बात उनके समय के विषय में आती है आचार्य पद्मगुप्त विरचित ''नवसाहसाङ्कचरित'' का उद्धरण काव्यप्रकाश में है और पद्मगुप्त का समय 1005 ई0 के लगभग है। इससे यह प्रमाणित होता है कि 11वीं शदी में आचार्य मम्मट थे। आचार्य माणिकचन्द्र द्वारा 1160 ई0 में काव्यप्रकाश की पहली टीका संकेत टीका के नाम से लिखी गयी। इसका मतलब है कि 1160 ई0 से पहले काव्यप्रकाश आ चुका था और इतनी प्रसिद्धी उसकी जरूर हो गयी थी कि आचार्य माणिक्यचन्द्र ऐसे व्यक्ति ने टीका लिखी। दूसरी एक भ्रांति और है कि काव्यप्रकाश में उदात्तालंकार का जो उदाहरण दिया गया है वो भोजराज की दान प्रशंसा में लिखा गया श्लोक है इससे कहा जाता है कि क्या भोजराज के बाद हुए मम्मट?

मुक्ताः केलिविसूत्रहारगलिताः सम्मार्जनीभिर्हृताः
प्रातः प्रांङ्गणसीम्नि मन्थरचलद्बालाङ्घ्रिलाक्षारुणाः।
दूराद्दाडिमबीजशङ्कितधियः कर्षन्ति केलीशुकाः
यद्विद्वद्भवनेषु भोजनृपतेस्तत् त्यागलीलायितम्।।

– (काव्यप्रकाश दशम उल्लासः उदात्तालङ्कार उदा0 506)

यह तो तय है कि यह श्लोक भोजराज की प्रशंसा में लिखा गया है। लेकिन आचार्य मम्मट भोज के बहुत बाद में हुए हों ये जरूरी नहीं है। ये भी हो सकता है

कि आचार्य मम्मट भोज के समकालीन ही हों। क्योंकि राजा भोज तो राजा थे, उनकी प्रशंसा में लिखा हुआ श्लोक स्वतः प्रसिद्धि को प्राप्त करता होगा। और यह श्लोक काव्यप्रकाश के 10वें उल्लास में बहुत पीछे जा करके उदाहरण में है। तीसरी समस्या यह आती है कि काव्यप्रकाश कारिका भी है और वृत्ति भी है। तो क्या आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश की कारिका और वृत्ति दोनों लिखा है या नहीं? तो इस ग्रन्थ को लिखने में किसने सहयोग दिया, इसका स्पष्ट उत्तर 'काव्यप्रकाश निदर्शन' के टीकाकार राजानक आनन्द (1684 ई0) ने दिया है–

कृतः श्री मम्मटाचार्यवर्यैः परिकरावधिः।

प्रबन्धः पूरितः शेषो विधायाल्लटसूरिणा।।[4] (राजानक आनन्द निदर्शन टीका)

अन्येनाप्युक्तम्, काव्यप्रकाशदशकोऽपि निबन्धकृद्भ्यां द्वाभ्यां कृतोऽपि कृतिना रसवत्वलाभः''।

इससे स्पष्ट है कि मम्मट ने दशम उल्लास में परिकर अलङ्कार तक ही लिखा तथा शेष अंश को कश्मीर के ही विद्वान् अल्लट सूरि या अलट सूरि ने पूर्ण किया। दूसरी शङ्का यह है कि काव्यप्रकाश की कारिकाओं का निर्माण मम्मट ने नहीं किया। 'साहित्य कौमुदी' के रचयिता विद्याभूषण तथा काव्यप्रकाश की 'आदर्श' टीका के रचयिता महेश्वर आदि का मत है कि कारिकाओं का निर्माण भरत मुनि ने किया तथा वृत्ति मम्मट द्वारा लिखी गई।

परन्तु यह सत्य नहीं है। कारिकाओं का निर्माण मम्मट द्वारा ही किया गया है क्योंकि काव्यप्रकाश की कोई भी कारिका भरत के नाट्यशास्त्र में नहीं है। मम्मट ने रस प्रकरण में 'कारणान्यथ कार्याणि' कारिका लिखकर उसकी वृत्ति में 'तदुक्तं भरतेन' यह लिखकर भरत का इस विषयक सूत्र 'विभावानुभाव' इत्यादि लिखा है। काव्यप्रकाश के प्राचीन टीकाकारों माणिक्यचन्द्र, जयन्तभट्ट, नरहरि सरस्वती आदि ने भी कारिका तथा वृत्ति मम्मट कृत ही मानी है।

अब बात आती है काव्यप्रकाश की–काव्यं प्रकाशयति तत्पदेन बोधयति यो ग्रन्थः स काव्यप्रकाशः। अर्थात् काव्य को जो प्रकाशित करे। अब किम् नाम काव्यम? कस्तत्र हेतुः? किं तत्र कारणम्? कति भेदाः, के के भेदाः, अत्र के दोषाः, अत्र के गुणाः, तत्रकोनाम अङ्लकारः? इत्यादि, सभी का समिश्रण करते हुए जो काव्य का एक समुचित, सुगठित और सुदृढ़ परिभाषा अपने परवर्ती लोगों के ज्ञान के लिए उपस्थित करे वो ग्रन्थ है काव्यप्रकाश। इसलिए काव्य प्रकाश केवल काव्य से शुरू हुआ और अलंकार पर समाप्त हो गया, इससे इतर इसमें कुछ नहीं है।

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनङ्लकृती पुनः क्वापि।[6] ये इन्होंने काव्य परिभाषा किया, यानि आज की भाषा में कहें तो यह एक अद्भुत् थिसिस है, जो एक सूत्र पर टिका हुआ है। दस उल्लासों में विभक्त काव्यप्रकाश के प्रथम उल्लास में काव्य प्रयोजन, हेतु लक्षण और काव्य भेद बतलाया, यानि तत् पद में इन्होनें प्रथम उल्लास समाप्त

किया 'एतत्काव्यम्'। अब जब आप काव्य पढ़ेगे तो शब्द शक्तियों की आवश्यकता होगी क्योंकि जब तक हम शब्द की शक्तियों को नहीं जानेगें तब तक हम काव्य को समझ ही नहीं सकते है। तो काव्य जो हमारे सामने उपस्थित है वह तो शब्द रूप में उपस्थित है शब्द की मूर्ति है काव्य। शब्द शक्तियाँ द्वितीय उल्लास में। व्यञ्जना विवेचन में तृतीय उल्लास, चौथे में काव्य के रस का विवेचन है, क्योंकि काव्य है, तो काव्य की आत्मा है रस, तो आत्मा पद के विवेचन में चौथा उल्लास, इसमें ध्वनि के भेद, प्रभेद पर भी चर्चा है। पाँचवे में गुणीभूतव्यंग्य काव्य का विवेचन और साथ ही यह प्रमाणित भी किया कि ध्वनि को मानना क्यों आवश्यक है? इसलिए इनको ध्वनिप्रतिस्थापनपरमाचार्य भी कहते हैं। षष्ठ में अधमकाव्य भेद सातवें में काव्यदोष निरूपण जिसमें पददोष, वाक्यदोष, रसदोष का निरूपण है, क्योंकि परिभाषा में इन्होंने अदोषौ शब्दार्थौ काव्यम्। अर्थात् दोष अगर हो गया तो वह सत्काव्य ही नहीं होगा। दोष के बाद सगुणौ कहा है, इसका विवेचन इन्होंने आठवें उल्लास में किया है। अब गुण विवेचन में इन्होंने जो सिद्धान्त दिया है वो आज तक के लिए काल के भाल पर अमिट लकीर है, इसको कोई नहीं मिटा सकता इसके पहले दस शब्दगुण और दस अर्थगुण माने जाते थे, गुणों के नाम तो दस ही थे लेकिन परिभाषाएं बदल जाती थीं, जब शब्दगुण की व्याख्या होती थी तो परिभाषा अलग और अर्थगुण में परिभाषा अलग हो जाता था लेकिन नाम केवल दस ही थे, परिभाषा में 20 हो जाते थे। आचार्य मम्मट ने नई परिभाषा दी और कहा–**"त्रयस्ते न पुर्नदशः।"**[7] यह वस्तुतः गुण तीन ही होते हैं लेकिन यह जानना आवश्यक है कि आखिर मम्मट ने तीन गुण ही क्यों बतायें। इसके लिए आचार्य मम्मट का जो मनोवैज्ञानिक अध्ययन है वह वास्तविक में काबिले तारीफ है जितनी प्रशंसा की जाय व सारी की सारी कम ही है। क्यों? तो जानते हैं, कि काव्य की आत्मा रस है और गुण को कहा गया है अचलस्थितयःगुणः[8], यह गुण जो है वह शरीर का धर्म नही है, बल्कि गुण जो है आत्मा का धर्म है, अगर आत्मा का धर्म है, तो आत्मा की जो स्थिति है, उस स्थिति को देखकर ही उसके गुण का भी विवेचन होगा, तात्पर्य यह है कि जब चित्त जो है सहृदयों का वह रस रूप में परिवर्तित होता है स्वप्रकाश होने पर, तो वो चित्त जितना रूप बदल सकता है, गुणों की संख्या भी उतनी ही होनी चाहिए। शरीर बहुत प्रकार के हो सकते हैं छोटे, बड़े, मोटे, पतले, काले, गोरे लेकिन चित्त की जो अवस्था है वो छोटा, नाटा, ऊँचा, मोटा, काला, गोरा सबमें एक ही है अगर उसको हम अलग–अलग कर दें तो आत्मा का विवेचन ही समाप्त हो जायेगा **एकोऽहं बहुस्याम** की प्रथा ही समाप्त हो जायेगी। **अहं ब्रह्मास्मि** खत्म हो जायेगा। इसलिए आत्मा परमात्मा का चिन्तन करने वाले आत्मा और परमात्मा दो ही है और बाद में दोनों एक ही हो जाते हैं तो अगर एक हैं तो उसकी स्थिति जब जैसी होती है व्यावहारिक अवस्था में, तो व्यावहारिक अवस्था में उन्होंने देखा–कि या तो चित्त द्रुतिकारक होता है, द्रुत हो जाता है या ठोस हो जाता है, कठोर हो जाता है या प्रफुल्लित हो जाता है जैसा कि भौतिक विज्ञान भी कहता है कि–द्रव है, ठोस

है और गैस है, तीन ही चीजें हैं। अब अगर तीन ही चीजें हैं तो निश्चित रूप से आत्मा की भी तीन ही अवस्था है द्रुति, दिप्ति और विकास। एक गुण का प्रभाव चित्त को द्रुत करता है दूसरा दिप्त करता है तो वहीं तीसरा विकसित करता है। इस तरह अवस्थाएं तीन हैं इसलिए गुण भी तीन ही होगा। और स्पष्ट रूप से उन्होंने बिना लागलपेट बिना किसी सन्देह स्पष्ट सिद्धान्त दिया **माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश**। इनका प्रभाव ये रहा कि इनके बाद जितने भी आचार्य आये उन्होंने परिभाषा तो ठीक दस गुण के अनुकुल दिखाई लेकिन माना सबने तीन ही। इस प्रकार आठवें उल्लास में गुण समाप्त हो जाता है। चूँकि इन्होंने शब्दार्थौकाव्यं बताया है और अलंकार को बताया है कि हो भी सकता है नहीं भी हो सकता है। तो जब काव्य में शब्द और अर्थ दोनों का मिला हुआ रूप विद्यमान है इसलिए शब्द शोभाधायक धर्म अलग होगा और अर्थ की शोभा बढ़ाने वाला धर्म अलग होगा। शब्दालंकार और अर्थालंकार अलग होगें। नवम और दशम उल्लास में अलंकार विवेचन किया गया है। इस प्रकार काव्यप्रकाश में कुल 10 उल्लास, 142 कारिकाएँ, 603 उदाहरण और 70 टिकाएँ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. भीमसेनकृत सुधासागर टीका
2. भीमसेनकृत सुधासागर टीका
3. काव्यप्रकाश दशम उल्लास उदात्तालंकार उदा0 505
4. काव्यप्रकाश निदर्शना (आनन्द) टीका
5. काव्यप्रकाश संङेक्त टीका माणिक्यचन्द्र
6. काव्यप्रकाश प्रथम उल्लास सूत्र संख्या–01
7. काव्यप्रकाश अष्टम उल्लास सू. संख्या–89
8. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास–काणे तथा डे।

❐

कार-ए-जहाँ दराज़ है : एक मुताला

डॉ. हबीबुल्लाह*

क़ुर्रतुलऐन हैदर ने अपने बेश्तर नॉविलों में वक़्त के बहाव और तारीख़ व तमद्दुन को अपना मौज़ू बनाया है। हक़ीक़त यह है कि इन्होंने अपनी फ़नकाराना सलाहियत, तख़्लीक़ी हुनरमन्दी और अदबी-व-फ़न्नी बारीकबीनियों के सहारे अपने मौज़ू का हक़ भी अदा किया है। शुरू से ही इन्होनें तारीख़ व तहज़ीब से दिलचस्पी का इज़हार किया। "मेरे भी सनम ख़ाने", "आग का दरिया", "आख़िर शब के हमसफ़र", "कार-ए-जहाँ दराज़ है" और "गर्दिश-ए-रंग-ए-चमन" इनके ऐसे नॉवेल हैं जिनमें वाक़्यात-व-हादसात को दास्तान का रंग व आहंग देने की कोशिश की गई है। तहज़ीबों के तसादुम को एक जहान-ए-ताज़ा की नमूद की शक्ल में दिखाया गया है।

"कार-ए-जहाँ दराज़ है", हक़ीक़त में क़ुर्रतुलऐन हैदर के ख़ानदानी हालात और बुज़ुर्गों के वाक़्यात पर मबनी नॉवेल है। इसे बेहतरीन सवानेही नॉवेल कहा जा सकता है मगर यह नॉवेल सादिक़ हुसैन और नसीम हेजाज़ी की तारीख़ी नॉवेल निगारी के मुमासिल नहीं है। इसमें सिर्फ़ अश्ख़ास-व-अफ़राद के हालात या क़ौमों और मुल्कों के दरमियान जंगों के वाक़्यात की खतौनी तैयार करके और कुछ लफ्ज़-व-बयान की चाशनी में डुबो कर क़ारी के सामने पेश कर दी जाए बल्कि यह नॉवेल तारीख़-व-तहज़ीब का मोरक़्क़ा है। इस वजह से फ़न की हैयत में इसका अंदाज़ एक इमरानी मुताला जैसा है।

"कार-ए-जहाँ दराज़ है", की नॉवेल निगार ने अपनी जड़ों की तलाश और अपने आबा-व-अजदाद के आसार की खोज में फ़रात से जैजूँ तक का सफर कर डाला है। और तहज़ीब-व-तमद्दुन व तारीख़ के नवादिरात और अजायबात की दर्याफ़्त ही नहीं की बल्कि अपने असरी शऊर और समाजी तसव्वुरात की बाज़याफ़्त भी की है। इससे उनकी ख़ानदानी वजाहत के साथ उनके अदबी उसलूब को भी क़ाबिल-ए-ज़िक्र हद तक शिनाख़्त मिली है। वह "कार-ए-जहाँ दराज़ है" के बारे में लिखती हैं:

> *"1961 ई० की बरसात में मोहल्ला सादात सह दरी नहटूर ज़िला बिजनौर (यू.पी.) के वीरान ढनडार आबाई मकानात बारिश की झड़ी में धड़ाधड़ गिरते जा रहे थे। जब कमतरीन वक़ाय'नवीस के ज़ेहन में मुनदर्जाबाला ख़्यालात आये जिनका मल्फ़ूज़ात-ए-कमालिया में कहीं ज़िक्र न था।"*

इस नॉवेल की तस्वीद-व-तबवीब में क़ुर्रतुलऐन हैदर ने अपने ख़ानदानी शजरे, तज़किरे

* एसोसिएट प्रोफ. व विभागाध्यक्ष, उर्दू विभाग, डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, वाराणसी।

और तवारीख़ की मदद से एक ऐसी फ़न्नी दस्तावेज़ तैयार की है जो अदबी खुसूसियत की हामिल बन गयी है और यह साबित करती है कि अगर सलाहियत हो तो तारीख़ से अदबपारा भी तैयार हो सकता है।

मुसन्निफ़ा का सिलसिला-ए-नसब हज़रत ज़ैद शहीद से मिलता है। जब कूफ़ा में इमाम ज़ैद की शहादत के बाद उनकी औलाद जाए अमाल की तलाश में कूफ़ा से निकली और बारहवीं सदी में मुसन्निफ़ा के मूरिस-ए-आला सूफ़ी सय्यद कमालुद्दीन ज़ैदी हदूद तिरमिज़ (तुर्कमानिया) से तन-ए-तन्हा हिंदुस्तान में तशरीफ़ लाए और क़स्बा कैथली (हरियाणा) के सब्ज़ा'ज़ार पर ख़ेमाज़न हो गए। फिर कमालुद्दीन ज़ैदी के बेटों में सय्यद ज़ियाउद्दीन तिरमज़ी के बेटे मीर हसन ने बिजनौर के क़स्बा नहटूर को आबाद किया। मुसन्नीफ़ा के पेदर-ए-बुज़ुर्गवार सज्जाद हैदर यल्दरम उन्हीं के ख़ानदान से तअल्लुक़-ए-नसबी रखते थे।

इस नॉवेल में तज़केरा-व-सवानेह से हटकर भी बहुत कुछ है। वह बात जिसका ज़िक्र सारे सवानेही लिटरेचर में कहीं भी रास्त और वाशगाफ़ अंदाज़ में नहीं। मुसन्निफ़ा ने इसी को इस रंग-व-आहंग और तर्ज़-ए-अदा से बयान किया है कि यह ज़मान-व-मकान की गिरफ़्त से आज़ाद हो गया है। गुमशुदा ज़मानों की तलाश में तज़केरों, मलफ़ूज़ात, रुक़आत और शजरों की छान-फटक कर के वह अपने अजदाद की कहानी ऐसे क़राइन-व-आसार की मदद से तैयार करती हैं जो मलफ़ूज़ात व दस्तावेज़ात और ख़ानदानी शजरों के बैनुस्सुतूर में मख़फ़ी थे और हक़ीक़त में यही मख़फ़ी तहज़ीब-व-तारीख़ का हक़ीक़ी ताना बाना हैं जिनसे इंसानियत के इस्तेआरा की दुनिया में नई मानवियत पैदा हुई है।

"कार-ए-जहाँ दराज़ है" की पूरी कहानी मुसन्निफ़ा के वालिद-ए-बुज़ुर्गवार सय्यद सज्जाद हैदर यल्दरम के गिर्द घूमती है और वह ही इस नॉवेल के बुनियादी व हक़ीक़ी किरदार हैं। इसमें उन्होंने अहद-ए-तिफ़्ली से लेकर 1961 तक के वाक़्यात का एहाता किया है। नॉवेल में होश बिजनौरी का किरदार अलामती हैसियत से बहुत ख़ूबी के साथ आया है। मुबारक हुसैन की ख़स्ताहाली बर्र-ए-सग़ीर, हिन्द-व-पाक की ज़हनी पस्ती और मफ़्लूक-उल-हाली की ऐसी मिसाल है जो हम सब की ज़िन्दगी, तारीख़-व-सक़ाफ़त और मिल्ली तशख़्ख़ुश की ट्रेजेडी है।

"कार-ए-जहाँ दराज़ है" का आग़ाज़ सूफ़ी सय्यद कमालुद्दीन ज़ैदी तिर्मिज़ी की हिंदुस्तान में आमद से होता है और उनकी औलाद-व-अहफ़ाद का तहज़ीबी सफ़र टेढ़े, तिरछे रास्ते से आगे बढ़ता है। कहानी का इख़्तिताम उस जगह होता है जहाँ मुस्तक़बिल आगे बढ़ने की इजाज़त नहीं देता। इस पेच-दर-पेच और ख़म-ब-ख़म में तवील पहाड़ियों के सिलसिले, शोर मचाते नदी नाले, हौसलों का इम्तेहान लेतीं वादियां, कटीले रास्ते, पगडंडियां और शाहराहें, फूल, फल और बाग़ों की लम्बी-लम्बी कतारें, इंसानों की बस्तियों से दूर रेगज़ार, छोटी-छोटी बस्तियां, गांव, मैदान,

क़ब्रिस्तानों और इंसानी मदफ़नों के इबरतनाक आसार, खेत-खलियान, जंगल-झाड़ी, आबशार, बोसीदा और मैले-कुचैले चीथड़ों में लिपटे मेहनतकशों की औरतें और बच्चे, झुग्गी-झोंपड़ी की ऊंची-नीची आवाज़ें, चीख़ें और सिसकियां सभी कुछ अपने लवाज़मात के साथ मौजूद हैं। यह एक ख़ानदान के हौसलों, उमंगों, ख़्वाबों, तमन्नाओं की रुमानीं और तरीकी तारीख़ है जिसके हवाले में हिंदुस्तान की मशरिक़ी, समाजी, सियासी, तमद्दुनी और इल्मी-व-मज़हबी झलकियां पेश कर दी गई हैं। इस तरह यह नॉवेल तारीख़-व-अक़ायद के ऐतबार से हमआहंगी-व-रवादारी की शमऐं रौशन कर रहा है। इस दास्तान का वक़ायनवीस वक़्त है जो एक बूढ़े ताजिर की शक्ल में पेश किया गया है। यह दास्तानगो एक बोसीदा फ़रग़ुल में मलबूस अपना बस्ता संभाले वक़्फ़े-वक़्फ़े से नज़र आ जाता है। क़ुर्रतुलऐन हैदर फ़रमाती हैं:

"चौ'गोशिया टोपी ओढ़े बोसीदा फ़रग़ुल में मलबूस ताजिक'नज़ाद बूढ़ा फूंस क़िस्सा'गो अब क़ब्र में पांव लटकाए बैठा है मक़बरा-ए-मुबारिज़ुल्लाह खां के गुम्बद और मीर बंद-ए-अली तिर्मिज़ी के फाटक के साए तवील हो चले। दहशतज़दह होकर झील पार कर शहर-ए-खमोशाँ पर नज़र डालता है। इसके क़द्रदान मह्वे'ख़्वाब हुए, औरों ने दुनिया संभाली, अपने भी, अब अजनबी से नज़र आते हैं, यह पीर-ए-मर्द इसी जहान-ए-गुज़रां के एक मुख़्तसर से दौर यानी सिर्फ बारह सौ साल की एक कहानी सुना रहा था लेकिन दफ़अतन उसने महसूस किया कि नए लोग इससे उक्ता गए, किसी को इसकी हिकायत की मुतलक़ ज़रुरत नहीं। लिहाज़ा किर्म'खूर्दा शजरों का बस्ता लपेट कर अदम की तारीकी में लामकां में दाख़िल हो जाएगा, जहाँ न गुफ़्तगू है न जुस्तजू।"

लेकिन दास्तानगो कुछ भी महसूस करे और अपने कीड़े खाए हुए बोसीदा शजरों को समेट कर उस जीती-जागती दुनिया से दिलबर्दाश्ता होकर अलग-थलग हो जाना चाहिए। यह इतना दिलचस्प और पुरलुत्फ़ क़िस्सागो है कि आसानी से उसको अपनी महफ़िल से जाने भी नहीं दिया जा सकता। इस क़िस्सागो को हमारी मजलिस और बज़्म की ज़रुरत नहीं, ख़ुद हमारी बज़्म को इसकी ज़रुरत है। क़ुर्रतुलऐन हैदर ने पहली जंग-ए-अज़ीम के पसमंज़र में बहुत इल्मी और फ़न्नी रंग में क़लम के फूल खिलाए हैं। उन्होंने जंग-ए-अज़ीम के वाक़यात-व-वारदात को महसूसात का जामा पहनाते वक़्त इस बात का ख़ास ख़्याल रखा है कि इससे वह तमाम अंदरूनी कैफ़ियात आश्कारा हो जाएँ जो इसकी तह में छुपी हुई थीं और हर कस-व-नाकस की आँख से सुझाई नहीं दे रही थीं। इन्होंने यहाँ पर जुज़ईयात निगारी का तजज़िया करने में अपनी सलाहियतों का सुबूत फ़राहम किया है। वाक़्यात के बत्न में हक़ायक़ के कितने और किस रंग के मोती छिपे हुए हैं, इन पर से पर्दा हटाकर क़ारी की निगाहों के सामने कर दिया है। इन्होंने अपनी बात में वज़न पैदा करने के लिए और अपनी नस्री ख़ूबी में रूह फूकने के लिए जगह-जगह इक़बाल के मसारी-व-अशआर से भी इस्तेफ़ादा किया है। क्योंकि अल्लामा इक़बाल मशरिक़-व-मग़रिब की कश्मकश में सबसे

अहम तख़लीक़कार समझे गए हैं। और मज़ाक़-ए-सलीम को इन्हीं के हवाले से तस्कीन-व-इन्बेतास की कैफ़ियत हासिल होती है। चंद इक़तेबास पेश किए जाते हैं:

"1914-1920 हो गई, सिवा ज़माने में कुलाह-ए-लाला'रंग, बाब-ए-आली के जगमगाते फ़ानूस एक-एक करके बुझते जा रहे हैं। जो सरापा'नाज़ थे, हैं आज मजबूर नियाज़। गिर्द-ए-सलीब, गिर्द-ए-क़मर हल्क़ा'ज़न हुई। हवाएं उनकी, फ़िज़ाएं उनकी। समुन्दर उनके, जहाज़ उनके

बेचता है हाशमी नामूस-ए-दीन-ए-मुस्तफ़ा

ले गए तसलीस के फ़रज़न्द या मुक़तदी-ए-तातार"

इस इक़तेबास से पता चलता है कि क़ुर्रतुलऐन हैदर को अपनी बात को संवारने और इबारत को सजाने में दूसरों से इस्तेफ़ादा करने की कितनी अच्छी महारत हासिल है। उन्हें ज़बान पर इतना क़ाबू है कि वह जैसे चाहती हैं लफ़्ज़ों से काम ले लेती हैं। उनके अल्फ़ाज़ मुरस्सा'साज़ी का कारनामा अंजाम दे रहे हैं।

"कर-ए-जहाँ दराज़ है" से पहले उनका नॉवेल "आग का दरिया" छपा था। यह नॉवेल भी वक़्त और तारीख़ की मदद से तश्कील के मराहिल से गुज़रा है। "आग का दरिया" दरअस्ल वक़्त के दरिया का इस्तेआरा है और इसमें भी अक़वाम-व-मिलल की ज़ेहनी-व-फ़िक्री जेहत तलाश करने की कोशिश की गई है। मगर दोनों नॉवेलों के किरदार में फ़र्क़ है। "आग का दरिया" तख़्लीक़ी किरदार को पेश करता और "कर-ए-जहाँ दराज़ है" में हक़ीक़ी किरदार आए हैं। आग का दरिया में उन्होंने हिंदुस्तान की ढाई हज़ार साला तहज़ीबी तसलसुल को पेश किया है। और इसके हवाले से उन्होंने बसीरत-अफ़रोज़ बातें कहीं हैं। "कर-ए-जहाँ दराज़ है" को अपनी जड़ों की तलाश का ज़रिया बनाया है और इस तरह इन्होंने तारीख़-व-सक़ाफ़त के आइना'ख़ानों में झाकने का हौसला दिखाया है और ज़ात से कायनात का क्या तअल्लुक़ होता है, उसकी वज़ाहत की है। किस तरह और किस माइने में फ़र्द अपने ही समाज का एक हिस्सा होता है और उसकी यह हिस्सेदारी किस ऐतबार से तहज़ीब-ए-इंसानी की तौसी' का सबब बनती है। इन सब सवालों को इन्होने अपने किरदारों में समेटने की कोशिश की है। इस नॉवेल में फ़लसफ़ा की गहराईयों को सहल बनाने और आवामी ज़िन्दगी से उसका रिश्ता जोड़ने की ख़्वाहिश का इज़हार किया है। ज़िन्दगी का पैमाना-ए-सूद-व-ज़ियां और वक़्त की गर्दिश-ए-इमरोज़-व-फ़र्दा समाज के नुमायां इंसानों से ख़ुसूसी रब्त रखता है। इसलिए इंसान की ज़ात इस कायनात में मरकज़ी हैसियत रखती है। इस नॉवेल में यही एहसास मुख़्तलिफ़ मक़ामात पर जगाया गया है। ज़ात का इर्तेक़ा, ख़ानदान, ख़ानदान के बाद शहर-व-दयार, इसके बाद मुल्क फिर पुरे ख़ित्ता-ए-अर्ज़ से वाबस्ता रहता है। इसलिए अच्छे और बलन्द इंसान की सोच अपने मआसिर ख़्यालात-व-तजरबात के हिसार को तोड़ कर मुस्तक़्बिल के वसी' मंज़रनामे तक पहुँच जाती है। जैसा कि सय्यद सज्जाद हैदर यल्दरम की मोतनव्वे, हमागीर और

हुस्नकार शख़्सियत अपने ज़माने से आगे निकल गई थी और उसने मुस्तक़्बिल के इमकानात को अपनी निगाह से देख लिया था।

"कर-ए-जहाँ दराज़ है" का ताल्लुक़ हिलाल-व-सलीब और काबा-व-कलीसा की कश्मकश से भी है। इस कश्मकश के मराहिल की मोरक़्क़ा'कसी उसके किरदारों के तवस्सुत से अदबी-व-फ़न्नी तरीक़ों पर हो रही है। अहमद अली का किरदार एक ऐसे सरफ़रोश और जज़्बा-ए-हुर्रियत से सरशार मुजाहिद का है जो शौक़-ए-शहादत में फांसी के फंदे पर झूल जाने को अपनी इंसानी सरबलन्दी समझता है। मगर इसी के साथ वह अपने अफ़राद-ए-ख़ाना को एक नज़र देख लेने की ख़ातिर सख़्त ख़तरात की भी परवाह नहीं करता। दूसरा किरदार मीर बंद-ए-अली का है जो अंग्रेज़ों से भी वफ़ादारी करते हैं और तहख़ाने के एक कमरे में उन्हें हिफ़ाज़त से रख कर जोश-ए-हुर्रियत से सरशार क़ौम परस्तों से लाहक़ अंदेशे का सद्द-ए-बाब करते हैं। और इसी मकान के दूसरे गोशे में अंग्रेज़ों के बाग़ी और फांसी की सज़ा के मुल्ज़िम मीर अहमद अली को पनाह देते हैं। यह तज़ाद, यह दोरंगी, और यह मुनाफ़िक़त उन्नीसवीं सदी की मआशरत का ख़ास्सा है और इसके बाक़ियात आज की हमअस्र ज़िन्दगी में ख़ूब मिल जाते हैं। इस नॉवेल में बीसवीं सदी की उस मजबूरी का नक़्शा बहुत अच्छे अंदाज़ में पेश किया गया है कि लोगों में हालात का मुक़ाबला करने की हिम्मत नहीं रह गई थी। वह पनाह और जा-ए-अमां की तलाश में लखनऊ, मसूड़ी, अल्मोड़ा, देहरादून, देहली, लाहौर, और कराची की तरफ़ भाग-दौड़ मचाते हैं। उन्हें साफ़ दिखाई दे रहा है कि

"रस्ते बंद हैं सब कूचा-ए-क़ातिल के सिवा

लेकिन उनकी निगाह ने उस नविश्ता-ए-दीवार को नहीं पढ़ा कि,

काम आया है, न आएगा कोई दिल के सिवा"

इन वाक़्यात को सुनाते-सुनाते क़ुर्रतुलऐन हैदर हाल से गुज़र कर मुस्तक़्बिल की जबीन-ए-सुबह पर लिखी इबारत की तरफ़ ज़हनों को फेर देती हैं। उन्होंने इस नॉवेल का तार्रुफ़ पेश करते हुए इब्तिदा में लिखा है:

"अल्लाह के नेक बन्दों ने हम्द-व-मुनाजात, इबादत-व-ख़िदमत-ए-ख़ल्क़ में ज़िंदगियाँ तेज़ कर दीं। न दुनिया-ए-दूं बदली न सिलसिला-ए-इल्लत-व-मालूल और फ़रिश्ते हैं कि लिखे चले जाते हैं, नाहक़ पकड़वाते हैं। पलट कर बन्दा-ए-ख़ाक़ी से नहीं पूछते कि मियां तुम अश'अरिय्या थे या मोतज़िला या ला-अद्री जबरिया हो या क़दरिया, मोमिन हो या मुशक्किक। क्यूंकि कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, एक मूंगफंगर है जो लिखकर कर आगे बढ़ जाती है।"

उन्होंने ने इस इक़्तिबास में इंसानी ज़िन्दगी को वक़्त के बहाव में मामूली तिनके की तरह बहने की तरफ़ इशारा करके यह बताने की कोशिश की है कि इंसान सूद-व-ज़ियां से बेनियाज़ रह

कर सच्चाई को अज़ीज़ रखे। इसमें उसको तल्ख़ी भी सहनी पड़े तो गवारा करे। इंसान नतायज से बेपरवा होकर इखलास-ए-अमल इख़्तियार करे।

"कार-ए-जहाँ दराज़ है" इंसान की तकमील-ए-कायनात के जज़्बा का इस्तेआरा है। कहने को यह स्वानेही उस्लूब का हामिल नॉवेल है मगर इसको पढ़ने के बाद महसूस होता है कि इंसान की ज़िन्दगी जो माज़ी, हाल और मुस्तक़्बिल के ख़ानों में बटी होती है वह दरअस्ल कायनात'साज़ी का वह तसलसुल है जो कभी ख़त्म होने वाला नहीं है मगर ख़त्म न होने के अहसास की वजह से ज़िंदगी से फ़रार नहीं करना चाहिए बल्कि नए आदम का ज़हूर अपना मत्म-ए-नज़र और मक़सद-ए-हयात क़रार दे देना चाहिए और ज़िन्दगी की यही मानवियत है।

❐

उच्च–शिक्षा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भूमिका

डॉ0 प्रतिमा गुप्ता*

सारांश

शिक्षा जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह मनुष्य को बौद्धिक रूप से तैयार करने के साथ–साथ किसी भी समाज और राष्ट्र के विकास की धुरी होती है। यह एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति, समाज या देश का मूल्यांकन किया जा सकता है। यह नागरिकों में आत्मविश्वास, आत्म गौरव और आत्मसंतोष जैसे भावों को भरने के साथ–साथ समाज सेवा जैसे सद्गुणों को विकसित करने की अलौकिक शक्ति है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति स्वतंत्र भारत की तीसरी तथा 21वीं सदी की पहली 'शिक्षा नीति' है जिसे भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई 2020 को घोषित किया गया। यह शिक्षा नीति अंतरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता वाली समिति की रिपोर्ट पर आधारित है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारत–केन्द्रित शिक्षा प्रणाली की परिकल्पना की गई है, जो इसकी परंपरा, संस्कृति और मूल्यों में परिवर्तन लाने में अपना बहुमूल्य योगदान देने में समर्थ होगी। नई शिक्षा नीति का उद्देश्य बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक व्यक्ति को बढ़ने और विकसित होने के लिए एक समान अवसर प्रदान करना है तथा विद्यार्थियों में ज्ञान, कौशल, बुद्धि और आत्मविश्वास का सर्जन कर उनके दृष्टिकोणों का विकास करना है। प्रस्तुत शोध पत्र में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उच्च शिक्षा का समीक्षात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। यह शोध पत्र उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में एन. ई. पी. 2020 की मुख्य विशेषताओं एवं भूमिका को संदर्भित करता है।

कूटशब्दः *राष्ट्रीय शिक्षा नीति, उच्च शिक्षा, आत्मविश्वास, आत्म गौरव, आत्मसंतोष, परंपरा और संस्कृति।*

प्रस्तावना :–

समय के अनुसार शिक्षा के तरीकों और पाठ्यक्रमों में परिवर्तन आवश्यक होते हैं। इसी को देखते हुए भारत सरकार ने पिछले 34 सालों से चली आ रही शिक्षा नीति में बदलाव करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 को मंजूरी दे दी है। बदलते विश्व और वैश्वीकरण के साथ कदम से कदम मिला के चलने के लिए ऐसे परिवर्तनों और सुधारों की आवश्यकता लंबे समय से महसूस की जा रही थी। शिक्षा नीति, देश और समाज का आने वाला कल कैसा होगा ये निर्धारित करने में अहम् भूमिका निभाती है। यह नीति स्कूली शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा

* असिस्टेंट प्रोफेसर,, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.वी. पीजी कॉलेज, वाराणसी।

तक के सभी प्रकार के सुधारों पर ध्यान आकर्षित करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में उच्च शिक्षा से सम्बंधित अनेक परिवर्तनों और सुधारों को सुझाया गया है। अब महत्वपूर्ण कदम ये होगा कि शिक्षा मंत्रालय और राज्य सरकारें इसे लागू कैसे करती हैं। चूंकि शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करने में राज्यों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है।

अध्ययन का उद्देश्य :– इस शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 की भूमिका पर प्रकाश डालना है। इसके अन्य मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है।

1. नई शिक्षा नीति 2020 को पेश करना।
2. नई शिक्षा नीति, 2020 में उच्च शिक्षा के मुख्य विशेषताओं को दिखाना।
3. उच्च शिक्षा संस्थान की समस्याओं को दर्शाना।
4. एनईपी 2020 के जरिए उच्च शिक्षा में सुधार के लिए किए गए प्रस्ताव की जानकारी देना।
5. उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के महत्व को दर्शाना।

उच्च शिक्षा के लिए एनईपी 2020 की मुख्य विशेषताए :–

1. अन्तर्राष्ट्रीयकरण :– विदेशी विश्वविद्यालयों के साथ साझेदारी स्थापित करके, अंतर्राष्ट्रीय छात्रों को आकर्षित करके तथा छात्र और संकाय आदान–प्रदान की सुविधा प्रदान करके, एनईपी 2020 अंतर्राष्ट्रीयकरण को आगे बढ़ाने का प्रयास करता है।

2. वर्ष 2035 तक जीईआर को 50% तक बढ़ाना :– वर्ष 2018 तक सकल नामांकन अनुपात 26.3% था। एनईपी 2020 में वर्ष 2035 तक जीईआर को 50% तक बढ़ाने की योजना है। इस योजना को वास्तविक बनाने के लिए उच्च शिक्षण संस्थानों को लगभग 3.5 करोड़ या इससे भी अधिक सीटें आवंटित की जाएंगी।

3. समग्र एवं बहुविषयक शिक्षा :– छात्रों को उनकी इच्छानुसार सीखने में मदद करने के लिए, नई नीति ने एक समग्र और बहु–विषयक स्नातक शिक्षा दृष्टिकोण पेश किया है। यह छात्रों को बहु–विषयक विषयों को व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के एकीकरण के साथ जोड़ने की सुविधा देता है। यूजी कार्यक्रम 3 या 4 साल तक चल सकते हैं । नया तत्व यह है कि छात्रों को 'कई निकास विकल्प' दिए जाएंगे और उन्हें स्नातक अवधि के भीतर उचित 'प्रमाणन' दिया जाएगा।

उदाहरण के लिए, छात्रों को एक वर्ष पूरा करने के बाद प्रमाणन मिलेगा, दूसरे वर्ष के बाद उन्नत डिप्लोमा, तीन वर्ष सफलतापूर्वक पूरा करने के बाद स्नातक की डिग्री तथा चौथे वर्ष के अंत तक अनुसंधान बुद्धिमत्ता दर्शाने वाली

डिग्री मिलेगी।

4. स्वायत्तता और जवाबदेहीः– उच्च शिक्षा की क्षमता और प्रभावकारिता को बढ़ाने के लिए, एनईपी 2020 में संस्थागत स्वायत्तता और निर्णय लेने के विकेंद्रीकरण का सुझाव दिया गया है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि संस्थान गुणवत्ता मानकों को बनाए रखें, रणनीति जवाबदेही, पारदर्शिता और नियामक प्रणालियों के महत्व को भी रेखांकित करती है।

5. समावेशिता और समानता :– लड़कियों, कम आय वाले परिवारों और विकलांग छात्रों सहित हाशिए पर रहने वाली आबादी की जरूरतों के अतिरिक्त, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 उद्देश्य सभी सामाजिक–आर्थिक स्तरों के बच्चों को समान अवसर प्रदान करना है।

6. अनुसंधान और नवाचारः– एनईपी 2020 विश्वविद्यालयों को अनुसंधान को प्राथमिकता देने के लिए प्रोत्साहित करती है और भारत को वैश्विक स्तर पर नवाचार और अनुसंधान का केंद्र बनाने के लक्ष्य के साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी में निवेश बढ़ाती है। सरकार आईआईएम और आईआईटी की तरह ही वैश्विक शैक्षिक मानकों के साथ बहुविषयक शिक्षा और अनुसंधान विश्वविद्यालयों (एमईआरयू) की स्थापना की दिशा में भी कदम उठा रही है। अनुसंधान और विकास गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए एक राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन भी बनाया जाएगा।

7. पाठ्यक्रम लचीलापन और क्रेडिट स्थानांतरणः– एनईपी 2020 एक लचीले पाठ्यक्रम की सिफारिश करता है जो छात्रों को उनकी व्यक्तिगत रुचियों और कैरियर के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों और विषयों में से चुनने की अनुमति देता है। इस शिक्षा नीति में क्रेडिट–ट्रांसफर सिस्टम का भी प्रस्ताव है। छात्रों की पूरी शिक्षा यात्रा के दौरान अर्जित क्रेडिट का हिसाब रखने के लिए अकादमिक प्रगति का क्रेडिट बैंक भी बनाया जाएगा।

8. शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का डिजिटलीकरण– छात्रों की आवश्यकताओं को पूरा करने और सीखने के परिणामों को अधिकतम करने के लिए ई–सामग्री, डिजिटल पुस्तकालय आदि सहित डिजिटल बुनियादी ढांचे के विकास के लिए एक समर्पित टीम शुरू की जाएगी।

9. 'यूजीसी' और 'एआईसीटीई' को खत्म करनाः– चिकित्सा और कानूनी क्षेत्र को छोड़कर शिक्षा क्षेत्र में सर्वोत्तम प्रथाओं को सुनिश्चित करने के लिए भारतीय उच्च शिक्षा आयोग (एचईसीआई) नामक एक नया शासकीय निकाय अस्तित्व में आएगा। भ्म्ब् के पास गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का पालन न करने वाले संस्थानों को

दंडित करने का अधिकार होगा।

10. कौशल विकास और व्यावसायिक शिक्षाः– छात्रों को नौकरी के लिए तैयार करने के लिए, NEP 2020 व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास के महत्व को स्वीकार करता है। यह छात्रों को आवश्यक कौशल प्राप्त करने में सहायता करने के लिए नियमित स्कूली शिक्षा में प्रशिक्षुता और कार्य–एकीकृत शिक्षण गतिविधियों को शामिल करने का सुझाव देता है।

11. छात्रों की सहायता के लिए वित्तीय सहायताः– सरकार यह सुनिश्चित करने का प्रयास करेगी कि एसटी, एससी, ओबीसी और एसईडीजी से संबंधित छात्रों को उनकी योग्यता के अनुसार छात्रवृत्ति मिले। अधिकारी उच्च शिक्षा संस्थानों को प्रतिभाशाली छात्रों का समर्थन करने के लिए छात्रवृत्ति प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित करेंगे।

12. भारतीय भाषाओं के उपयोग के लिए प्रोत्साहनः– भारतीय भाषाओं के संरक्षण और संवर्धन को सुनिश्चित करने के लिए, एनईपी ने विभिन्न निकायों की स्थापना की सिफारिश की है, जैसे पाली, प्राकृत और फारसी के लिए राष्ट्रीय संस्थान अनुवाद एवं व्याख्या संस्थान (आईआईटीआई) उच्च शिक्षा संस्थानों के विद्यार्थियों को अवधारणा को बेहतर ढंग से समझने में मदद करने के लिए उनकी मातृभाषाध्क्षेत्रीय भाषा या स्थानीय भाषा का उपयोग करने की अनुमति है।

13. शिक्षा में प्रौद्योगिकीः– एनईपी 2020 शिक्षा में प्रौद्योगिकी के महत्व को स्वीकार करते हुए शिक्षा के लिए एक व्यापक डिजिटल बुनियादी ढांचे के निर्माण का सुझाव देता है। यह कॉलेजों तक अधिक छात्रों तक पहुँचने और शैक्षिक पहुँच को आगे बढ़ाने के लिए ऑनलाइन और मिश्रित शिक्षण पाठ्यक्रम प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

शिक्षा में प्रौद्योगिकी के उचित एकीकरण को सुनिश्चित करने के लिए सरकार राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच (NETF) नामक एक स्वायत्त इकाई बनाएगी। संस्थान आईसीटी–सक्षमता के माध्यम से कक्षा प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करके अपने संकाय के साथ–साथ छात्रों को भी सशक्त बनाने में सक्षम होंगे।

14. तर्कसंगत शिक्षा वास्तुकलाः– विश्वविद्यालयों का मूल ढांचा नये तरीके से बनाया जाएगा। शैक्षिक संस्थानों के विजन और मिशन के अनुसार, विश्वविद्यालयों की विभिन्न श्रेणियां, जैसे शिक्षण–गहन विश्वविद्यालय, अनुसंधान–गहन विश्वविद्यालय और स्वायत्त डिग्री प्रदान करने वाले कॉलेज, अस्तित्व में आएंगे।

कॉलेज संबद्धता प्रक्रिया को 15 वर्षों में चरणबद्ध तरीके से समाप्त कर

दिया जाएगा और संस्थानों को स्वायत्तता प्रदान की जाएगी।

15. दूरस्थ शिक्षाध्मुक्त शिक्षाः– सरकार खुली शिक्षा सुविधाओं के द्वार खोलकर उच्चतम गुणवत्ता वाली शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए कई उपाय करेगी, जैसेः ऑनलाइन पाठ्यक्रम परिचय डिजिटल रिपोजिटरी अनुसंधान कार्य के लिए धन क्रेडिट आधारित शिक्षा

16. व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करनाः– व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के लिए सक्रिय कदम उठाए जाएंगे। स्वतंत्र तकनीकी विश्वविद्यालय, कृषि विश्वविद्यालय, स्वास्थ्य विज्ञान विश्वविद्यालय और विधि विश्वविद्यालय बहु–विषयक संस्थान बनने की ओर अग्रसर होंगे।

उच्च शिक्षा संस्थान की समस्याएंः

1. नामांकनः–

उच्च शिक्षा पर अखिल भारतीय सर्वेक्षण (AISHE) रिपोर्ट 2019–20 के अनुसार, भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सकल नामांकन अनुपात (GER) मात्र 27.1% है, जो विकसित देशों के साथ ही अन्य विकासशील देशों की तुलना में बहुत कम है। विद्यालय स्तर पर नामांकन में वृद्धि के साथ उच्च शिक्षा संस्थानों की आपूर्ति देश में शिक्षा की बढ़ती माँग को पूरा करने में अपर्याप्त है।

2. गुणवत्ताः–

उच्च शिक्षा में गुणवत्ता सुनिश्चित करना वर्तमान में सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है।

भारत में बड़ी संख्या में कॉलेज और विश्वविद्यालय UGC यानी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित न्यूनतम शर्तों को पूरा करने में असमर्थ हैं। स्थानीय भाषाओं में शिक्षा देने वाले उच्च शिक्षा संस्थानों की संख्या कम है।

3. राजनीतिक हस्तक्षेप :

उच्च शिक्षा के प्रबंधन में राजनेताओं का बढ़ता दखल उच्च शिक्षा संस्थानों की स्वायत्तता को खतरे में डालता है। इसके अलावा, विभिन्न अभियानों में संलग्न छात्र शिक्षा संबंधी अपने उद्देश्यों को भूल जाते हैं और राजनीति में अपना कॅरियर विकसित करना शुरू कर देते हैं।

4. आधारभूत संरचना और सुविधाओं की बदतर स्थिति :

भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली के लिये बदतर बुनियादी ढाँचा एक और चुनौती है, विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा संचालित संस्थानों में अवसंरचना

तथा भौतिक सुविधाओं की स्थिति अच्छी नहीं है।

शिक्षकों की कमी और योग्य शिक्षकों को आकर्षित करने तथा उन्हें बनाए रखने की राज्य शिक्षा प्रणाली की असमर्थता ने कई वर्षों से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के मार्ग में चुनौतियाँ खड़ी की हैं।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक रिक्तियों के बावजूद बड़ी संख्या में नेट पीएच.डी. उम्मीदवार बेरोजगार बने हुए हैं।

5. अपर्याप्त शोधः

उच्च शिक्षा संस्थानों में शोध–अनुसंधान पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

संसाधनों एवं सुविधाओं की कमी है और छात्रों के मार्गदर्शन हेतु सक्षम शिक्षकों की संख्या भी सीमित है। अधिकांश शोधार्थी फेलोशिप से वंचित हैं या उन्हें समय पर फेलोशिप प्रदान नहीं की जा रही है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनके शोध को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त, अनुसंधान केंद्रों और उद्योगों के साथ भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानों का समन्वय कमजोर है।

6. कमजोर शासन संरचनाः

भारतीय शिक्षा प्रबंधन अति–केंद्रीकरण, नौकरशाही संरचनाओं और उत्तरदायित्व, पारदर्शिता एवं व्यावसायिकता की चुनौतियों का सामना कर रहा है। कई संस्थानों को स्वायत्तता की कमी का सामना करना पड़ता है।

एनईपी 2020 के जरिए उच्च शिक्षा में सुधार के लिए किए गए प्रस्तावः

1. समान निधीकरणः

केंद्र एवं राज्य दोनों को उच्च शिक्षा में सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूहों (SEDG) को समर्थन प्रदान करने के लिये पर्याप्त धनराशि आवंटित करनी चाहिये। उच्च शिक्षा तक पहुँच में वृद्धि सुनिश्चित करने हेतु SEDG के लिये सकल नामांकन अनुपात के स्पष्ट लक्ष्य निर्धारित किये जाने चाहिये।

2. लैंगिक संतुलनः

उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश हेतु लैंगिक संतुलन बढ़ाने के प्रयास किये जाने चाहिये।

3. समावेशी प्रवेश और पाठ्यक्रमः

छात्रों की विविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये प्रवेश प्रक्रियाओं और पाठ्यक्रम को अधिक समावेशी बनाया जाना चाहिये।

4. क्षेत्रीय भाषा पाठ्यक्रमः

क्षेत्रीय भाषाओं और द्विभाषी रूप से पढ़ाए जाने वाले अन्य डिग्री पाठ्यक्रमों के विकास को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

5. दिव्यांगों के लिये पहुँचः

उच्च शिक्षण संस्थानों को दिव्यांग छात्रों के लिये अधिक सुलभ बनाने के लिये विशिष्ट कदम उठाए जाने चाहिये, जिनमें ढाँचा आधारित कदम महत्त्वपूर्ण हैं।

6. भेदभाव–विरोधी उपायः

सुरक्षित एवं समावेशी वातावरण सुनिश्चित करने के लिये भेदभाव–रहित और उत्पीड़न–विरोधी नियमों को सख्ती से लागू करने की सिफारिश की जानी चाहिये।

7. विविधीकरणः

उच्च शिक्षा वित्तपोषण एजेंसी को सरकारी आवंटन से परे अपने निधीकरण स्रोतों में विविधता लानी चाहिये। वित्त पोषण के लिये निजी क्षेत्र के संगठनों, परोपकारी फाउंडेशनों और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों के साथ साझेदारी के विकल्प तलाशने चाहिये।

उच्च शिक्षा में एनईपी 2020 क्यों महत्वपूर्ण है?

पिछले कुछ वर्षों में भारत में उच्च शिक्षा संस्थानों ने खराब प्रशासन और अप्रभावी प्रबंधन का बोझ उठाया है। छात्रों के नामांकन अनुपात में गिरावट के साथ राज्यों में उच्च शिक्षा संस्थानों की स्थिति और भी खराब है। नई शिक्षा नीति के लागू होने से, सशक्त प्रशासन, अकादमिक स्थान और शोध संस्थानों को अधिक स्वायत्तता को बढ़ावा देने वाली "भारतीय मूल्यों" पर आधारित शिक्षा प्रणाली के पुनरुद्धार की उम्मीद है। NEP 2020 देश के लिए एक मजबूत भविष्य के निर्माण में अनुसंधान और नवाचार की महत्वपूर्ण भूमिका को पहचानता है। यह भारत में 'शिक्षा के व्यावसायीकरण' की समस्या को दृढ़ता से संबोधित करता है और सभी के लिए 'शिक्षा प्रणाली के लाभों को अधिकतम करने' के उद्देश्य से परोपकारी प्रयासों को बढ़ावा देता है। इस तरह के समग्र दृष्टिकोण के साथ, NEP 2020 भारतीय शिक्षा प्रणाली में क्रांति लाने के लिए तैयार है, जिससे यह दुनिया की कुछ सर्वश्रेष्ठ शिक्षा प्रणालियों के बराबर खड़ी हो सकेगी। NEP 2020 का उच्च शिक्षा के लिए केवल रोजगार के अवसर पैदा करने से कहीं बड़ा उद्देश्य है। यह सभी हितधारकों को अधिक जीवंत, सामाजिक रूप से संलग्न और

सहयोगी समुदायों तथा अधिक खुशहाल, सुसंस्कृत, उत्पादक, नवीन, प्रगतिशील और समृद्ध राष्ट्र के निर्माण के लिए प्रोत्साहित करता है।

एनईपी 2020 की परिकल्पना है कि आने वाले वर्षों में सभी मौजूदा और नए उच्च शिक्षा संस्थानों को तीन अलग–अलग समूहों में विभाजित किया जाएगा, अर्थात् अनुसंधान–गहन विश्वविद्यालय (आरयू), शिक्षण विश्वविद्यालय (टीयू), और स्वायत्त डिग्री देने वाले कॉलेज (एसी)। यह विशेष रूप से आईआईटी और आईआईएम और राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन के बराबर एमईआरयू (बहु–विषयक शिक्षा और अनुसंधान विश्वविद्यालय) बनाकर अनुसंधान और नवाचार से संबंधित मुद्दों को संबोधित करता है। राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन (एनआरएफ) की स्थापना संसद के एक अधिनियम द्वारा 20000 करोड़ रुपये के वार्षिक अनुदान (धीरे–धीरे बढ़ाई जाएगी) के साथ की जाएगी। एनआरएफ सभी प्रमुख विषयों में वित्त पोषण प्रदान करके, अनुसंधान क्षमता का निर्माण करके, शोधकर्ताओं, सरकार और उद्योग के बीच संबंध स्थापित करके अनुसंधान संस्थानों की शोध विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करेगा, जिससे एक अधिक मजबूत अनुसंधान प्रणाली स्थापित करने के लिए काम किया जा सके इतना ही नहीं, बल्कि एनईपी उन सभी तत्वों पर ध्यान केंद्रित करके उच्च शिक्षा क्षेत्र को काफी बढ़ावा देता है जो हमारे सिस्टम के भीतर अछूते रहे हैं या उनके पास मौजूद अपार अवसरों के बावजूद उन्हें महत्वपूर्ण रूप से मान्यता नहीं दी गई है – उदाहरण के लिए, शिक्षा के हर स्तर पर भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देना और एक माध्यम के रूप में अंग्रेजी पर 'अत्यधिक' ध्यान देने के औपनिवेशिक बोझ को त्यागना वयस्क शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा और शिक्षा में प्रौद्योगिकी आदि को उचित महत्व देना, जो इतने लंबे समय से समय की मांग रही है और नई शिक्षा नीति के माध्यम से पर्याप्त रूप से निपटा गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. https//www.educationgovin/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_EngliSh_0-pdf.
2. https%//en-wikipedia-org/wiki/National_Education_Policy_2020.
3. Puri] Natasha 430 August 2019½- A Review of the National Education Policy of the Government of India & The Need for Data and Dynamism in the 21st Century- SSRN.
4. ओड़, एल.के (2007): शैक्षिक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्रीमियर प्रन्टिंग प्रेस, जयपुर।
5. अग्रवाल, पवन (2009): श्रम बाजार के अनुरूप उच्च शिक्षा, योजना, अंकः 09 सितम्बर, 2009।

6. चन्सौरिया, मुकेश (2009): भारत में उच्च शिक्षाः समस्याएं एवं समाधान, योजना, अंकः 09, सितम्बर, 2009।
7. पाण्डेय, हरेश (2007): भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्ववित्त पोषित पाठ्यक्रम का विकास, परिप्रेक्ष्य, शैक्षिक योजना एवं प्रशासन, वर्ष 14 अंक–1, अप्रैल 2007, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान, 17 श्री अरविदों मार्ग, नई दिल्ली।
8. फांसिस, सौदंराराज, (2001): रोल ऑफ प्राइवेट सेक्टर इन हायर एजुकेशन इन इण्डिया, यूनिवर्सिटी न्यूज, 39(29), ए0आई0यू0 नई दिल्ली।
9. भटनागर, आर0 पी0 एवं विद्या अग्रवाल, (2007): शैक्षिक प्रशासन, इण्टरनेशनल पब्लिकेशन हाउस, लायल बुक डिपो, मेरठ।
10. रहमान, सफी, (2008) राष्ट्रीय ज्ञान आयोग, इंडिया टुडे 25 जून 2008।
11. सिंह, एल0सी0, (2003): सेल्फ फाइनेसिंग हायर एजुकेशन, यूनिवर्सिटी न्यूज 40,(40), ए0आई0यू0, नई दिल्ली।
12. सारस्वत, मालती एवं बाजपेयी.बी.एल (1996): भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें, आलोक प्रकाशन।

❐

श्रीमन्त शंकरदेव का भक्ति विषयक चिन्तन

डॉ. दीपक कुमार शर्मा*

भारतवर्ष अनादिकाल से ही आध्यात्मिक ज्ञानपुंज के रूप में सम्पूर्ण विश्व को अलोकित कर रहा है, यह ऋषिभूमि त्याग, तपस्या, दानशीलता, परोपकार तथा विश्वबन्धुत्व की प्रतिमूर्ति के रूप में युग–युगान्तर से प्रतिष्ठापित है। इस पावनभूमि पर जन्में महापुरुषों ने स्वार्थपरता से परे होकर लोक–कल्याण के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन न्यौछावर किया है यहाँ कि ऋषि–परम्परा का यह दृढ़ विश्वास है कि मानव–जीवन यदि पारिवारिक–दायित्वों की पूर्ति तथा आत्म–उदरपूर्ति मात्र के लिए ही है तब तो इस कार्य में पशु की भी सहज–प्रवृत्ति होती है। अतएव मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य मोक्ष अथवा ईश्वरप्राप्ति को माना गया है, जिसकी प्राप्ति हेतु वैदिक यज्ञ, पौराणिक व स्मृतिपरक अनुष्ठान, षड्शास्त्रों में वर्णित विज्ञान तथा विभिन्न आचार्यों के द्वारा प्रतिष्ठापित सम्प्रदाय का अनुसरण किया जाता है।

जनसामान्य की बौद्धिक क्षमता तथा आर्थिक सुदृढ़ता के साथ–साथ वैदिक नियमों का परिपालन सभी के लिए सौकर्य–पूर्ण नहीं होता है तथा वैदिकयाग के कठोर अनुशासन भी इसके प्रति कारण हैं, जिसमें सभी की सहज–प्रवृत्ति नहीं होती। अतएव आदिकाल से ही भारतवर्ष में जन–सामान्य के कल्याण हेतु भक्तिमार्ग का सहज–सरल मार्ग को आचार्यों ने राजमार्ग की संज्ञा दी है। पौराणिक–विमर्श के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय ऋषि–मनीषा 'भक्ति' के समतुल्य किसी भी साधन को तुच्छ मानती है, एक मात्र भक्ति के प्राप्त होने पर सब कुछ प्राप्त हो गया ऐसा भाव रखते हैं। भागवत के माहात्म्य में भक्ति–नारद के संवाद में महर्षि नारद कहते हैं –

त्वं तु भक्तिः प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका।
त्वयाऽऽहूतस्तु भगवान् याति नीचगृहेष्वपि।।[1]
सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ।
कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी।।[2]
अङ्गीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोभूद्धरिस्तदा।
मुक्तिं दासी ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ।।[3]

तात्पर्य यह है कि भक्ति को भगवान् की वल्लभा माना है जो जिस पर कृपा कर दे तो भगवान् को स्वयं आना पड़ता है। भारतीय ऋषि–परम्परा में 'धर्मार्थ–काम मोक्ष' को पुरुषार्थ चतुष्टय की संज्ञा प्राप्त है, जिसमें अन्तिम पुरुषार्थ ''मोक्ष'' अथवा मुक्ति है। प्रकृत प्रसंग में मुक्ति को भी भक्ति की दासी के रूप में दर्शाया गया है अतएव आत्म–कल्याण के लिए इस भूमि के महापुरुषों ने भक्ति को परमोत्कृष्ट साधन माना

* सहायकाचार्य (संस्कृत विभाग), डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी (उ.प्र.)।

है।

भक्ति की भारतीय ऋषि परम्परा में श्रीमन्त शंकरदेव का प्रादुर्भाव देदीप्यमान सूर्य की भाँति हुआ, जिन्होंने भक्तिरत्नाकर, भक्ति प्रदीप, कीर्तन घोषा आदि ग्रन्थों की रचना के साथ ही विभिन्न जातियों, जनजातियों की गोष्ठियों के मध्य जाकर उन्हीं के मानसिक स्तर के अनुरूप विभिन्न सरल पद्धतियों के माध्यम से भगवन्नाम कीर्तन और कथाओं का गायन तथा अभिनय किया, जिसका एकमात्र लक्ष्य था भगवद्भक्ति का प्रचार तथा लोक कल्याण। प्रकृत पत्र में श्रीमन्त शंकरदेव के भक्ति विषयक चिन्तन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

भक्ति का महत्व –

श्रीमन्त शंकरदेव की भक्ति का आधार ग्रन्थ भागवत हे, जिसे वे पुराणसूर्य, वैकुण्ठरशास्त्र एवं वेदान्तरो इह परमतत्व मानते हैं। अपने सिद्धान्त ग्रन्थ 'भक्ति रत्नाकर' के विभिन्न माहात्म्यों में शंकरदेव ने क्रमशः भक्तिज्ञान, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, भक्ति योग, उत्तम भक्ति, उत्तम भक्त, मध्यम भक्त, प्राकृत भक्त प्रार्थनादि भगवद्–भक्ति के रूप और कलि के परम धर्म भक्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। श्रीशंकरदेव भक्ति को मुक्ति से भी श्रेयस्कर स्वीकार करते हैं वो कहते हैं –

मुकुति सुखतो करि भकति से बड।[4]

श्रीमन्त का दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य वेदों का ज्ञानी हो, निरन्तर वेदाभ्यास करने वाला हो, वेदान्त शास्त्र का पारंगत विद्वान् हो, अनेक जन्मों तक जिसने योग–साधना की हो तथापि उसकी मुक्ति में संदेह है परन्तु भक्त की मुक्ति में कथमपि संदेह नहीं है उसकी मुक्ति अवश्यम्भावी है, तात्पर्य यह है कि शंकर देव जी की दृष्टि में मुक्ति का निश्चित साधन भक्ति है –

तर्क बेद बेदान्तक यद्यपि जानोक।
कोटि कोटि जन्मे योग ज्ञान अम्भासोक।।
तथापितो नाहि मोक जानिते शकति।
कहो सत्य पावे मोक केवल भकति।।[5]

भक्ति का सहज स्वरूप (श्रीमन्त शंकर देव की दृष्टि में) –

श्रीमन्त शंकर देव ने न केवल कल्याण–मार्ग के साधनों में अतिशय सहज और सरल मार्ग भक्ति को माना है प्रत्युत उनकी मान्यता है कि भक्ति के अतिरिक्त जितने भी मार्ग हैं, जितने भी कृत्य हैं वे मायामय हैं और केवल ईश्वर भक्ति या कृष्ण भक्ति ही वेदवाक्य है –

''कृष्णर सेवात किछु नाहिके भागर।''[6]

श्रीमन्त कहते हैं कि भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है– **''सब तजि मोके मात्र भजि, तुमि हैबा कृतकृत्य''**[7] तीर्थ, व्रत, तप, जप, योग एवं अन्य धर्म–कार्य मुक्तिदातृ

नहीं[8], केवल भक्ति ही मुक्तिदातृ है। भक्तिमार्ग अत्यन्त सहज तथा सरल है, जिसके लिए अतिरिक्त प्रयास की किंचिदपि आवश्यकता नहीं है बिना किसी परिश्रम के भगवान् की शरणागति के द्वारा भक्ति की प्राप्ति हो जाती है और श्रीहरि हृदय में वास करने लग जाते हैं –

हरिर सेवात किछु नाहिकै प्रयास।
आपुनि सैवन्त हरि हृदयत बास।।[9]

भक्ति के सहज–सुगम मार्ग पर प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण स्वतंत्रता के साथ चल सकता है वर्ण, जाति, रूप, रंग आदि न तो इसमें बाधा उपस्थित करते हैं और न कठोर–तप–व्रत जैसे अन्य साधनों का कष्ट झेलना पड़ता है –

नचावै अजाति जाति पापा पुण्यवन्त।
भकतिते वश्य किनो प्रभु भगवन्त।।[10]

भक्ति का साधन–

श्रीमन्त शंकर देव का चिन्तन है कि श्रीकृष्ण के प्रसाद से समस्त कर्मों का सम्पादन तथा समस्त लाभों की प्राप्ति शक्य है, उन्होंने भक्ति का मूल निष्पादक तत्व आराध्य देव की कृपा को स्वीकार किया है –

कृष्णर प्रसादे समस्ते हुइ।

श्रीमन्त जी का कथन है कि भगवत् कथा का सश्रद्धा श्रवण, **''कृष्ण कथा अमृत पियो सावधाने''[11]**। भगवन्नाम का निरंतर संकीर्तन **''नाहि आन धर्म हरि कीर्तनत पर''**, स्तुतियों द्वारा भगवान् का स्त्वन ''पदमिच्छन गायति चामृतदेतोटय'' भगवान् के भक्तों और संतों की संगति **''संतर संगति निति बाढे भकतित प्रीति''[12]** समस्त प्राणियों के प्रति भगवद् दृष्टि रखना, **''कुकुर श्रृगाल गर्दभरो आत्माराम''[13]** सभी कर्मों और अपने को भगवदर्पण करना **''हुआ एकमत ईश्वर कृष्णागत''[14]** उपर्युक्त साधनों के द्वारा कल्याणमयी भक्ति को प्राप्त किया जा सकता है।

भक्ति के बाधक तत्त्व–

श्रीमन्त ने भक्ति के बाधक तत्त्व के रूप में अहंकार, संशय, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा कुतर्क, पाखण्ड आदि को स्वीकार किया है। स्व आराध्य के प्रति सम्पूर्णनिष्ठा के अभाव को बाधक तत्त्वों में सर्वोपरि ग्रहण किया गया है। **''तर्कप्रतिष्ठानात्''** एवं **''नैषा तर्केन गतिराय नेया''** जैसी घोषणाओं के अनुरूप श्रीमन्त ने **'विश्वासे मिलय हरि तर्के बहुदूर'** की मान्यता व्यक्त की है।

अनन्य निष्ठा के संदर्भ में श्रीमन्त ने उद्घोषणा की है कि समस्त प्रकार के कुतर्कों का त्याग करके अपने इष्ट के प्रति दृढ़–अनुराग परम आवश्यक है। अन्यान्य स्थानों पर यदि श्रद्धा या निष्ठा का विकरण होता रहा तो निश्चित ही आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण नहीं हो सकता –

अन्य देव–देवी नकरिबा सेव।
नकरिबा सेवा सखि आन देवतार।।

श्रीमन्त ने अभिमान को भी प्रमुख बाधक तत्त्वों में माना है। अभिमान सामान्य मनुष्यों को ही नहीं महान साधकों को भी व्यग्र कर सकता है, इसके संदर्भ में शंकरदेव जी ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, इन्द्र आदि का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। भक्ति के अन्य बाधक तत्वों में काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग इत्यादि का कथन भी अपने ग्रन्थों में किया है –

काम क्रोध मद मान मोह मेरि, ऐसब बैरी विशाल।
काम क्रोध कुत्ता खेदि खाइ।
लोभ मोह दुहो बाघ सतते नछाड़े लाग राखु राखु सदाशिव।

श्रीमन्त ने दुर्जनों की संगति को भी भक्ति में बाधक माना है उन्होंने कहा है – **''दुःसंग सर्वथैव त्याज्यः''** इसका विस्तृत वर्णन ''पाखण्ड मर्दन'' में किया है। 'पत्नी प्रसाद' में ब्राह्मणों के पाखण्ड का दुःसंगति का प्रत्याख्यान ही है। 'भक्ति–प्रदीप' में वर्णित नारद–चाण्डालिनी संवाद में आए अधिकांश तत्व भक्ति के बाधक हैं।

भक्ति के भेद –

श्रीमन्त शंकरदेव ने भक्ति के भेदों को श्रीमद्भागवत तथा गीता के आधार पर निरूपित किया है। भक्ति रत्नाकर में उन्होंने तामसी, राजसी, सात्विकी तथा उत्तमोतम भक्ति तथा सात्विकी भक्ति के अंतर्गत सप्रेम भक्ति, अंतरंग भक्ति, उत्तम भक्ति तथा निर्गुण भक्ति का ग्रहण किया है। इसी संदर्भ में अन्य रूपों में निष्काम, प्रेमा, मोक्षतम, रहस्य, अव्यभिचारी भक्ति के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

श्रीमन्त ने भक्ति की दो मुख्य श्रेणियाँ मानी हैं – गुणमयी तथा निर्गुणा। निर्गुणा प्रधानतः दो अंशों में विभक्त है – ऐश्वर्य ज्ञान–मिश्र या प्रधानीभूता और केवला अथवा रागात्मिका। ऐश्वर्य ज्ञान–मिश्रा निर्गुणा भक्ति की अपरिपाक दशा गुणमय तथा परिपाक दशा निर्गुणा होती है। केवला भक्ति प्रारंभ से ही निर्गुणा होती है, जिसकी अपरिपाक दशा रागानुगा और परिपाक दशा रागात्मिका होती है। शंकरदेव की उत्तमोत्तम भक्ति निर्गुणा है जो परिपाक दशा में रागात्मिका प्रेम भक्ति में परिणत हो जाती है यथा –

गुणमय ज्ञान कर्म सबे परिहरि।
निर्गुण भक्ति धरि सखि सुखे तरि।।
गुणेसे करिछै सबे संसारर क्लेश।
ताक तरिवाक सखि शुना उपदेश
मोर कथा शुना निते गावा गुण यश।
तात हन्ते अति उपनिबे प्रेमरस।।[15]

अन्यत्र भी इस सन्दर्भ में कहा है –

प्रेम भकतिर चिह्न शुनियो उद्धवे।
हरि हरि बोलन्ते तोतक जार स्रवे।

मोर कथा शुनते शरीर रोमांचित।
जाना तार परम पवित्र भैल चित्त।।[16]

निःसंदेह रूप से हम कह सकते हैं कि श्रीमन्त के अनुसार निर्गुण भक्ति उत्तमोत्तम तभी होती है, जब वह परिपाक स्थिति में रागात्मिका प्रेम–रस या प्रेमा–भक्ति के स्वरूप को प्राप्त करे।

भक्ति साधन सोपान–

श्रीमन्त ने भक्ति के साधन क्रम में भागवत के अनुसार नवधा भक्ति को स्वीकार किया है जो कि श्रीमद्भागवत महापुराण में हिरण्यकश्यपु प्रह्लाद संवाद में निम्न रूप में वर्णित है –

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।[17]

उपर्युक्त नवधा भक्ति का वर्णन करते हुए आपने श्रवण, कीर्तन स्मरण तथा अर्चन को अधिक महत्व दिया है भक्ति रत्नाकर में उपर्युक्त की स्वतन्त्र व्याख्या उपलब्ध है।[18]

श्रवण–कीर्तन तथा स्मरण –

आराध्य का यश गुण, लीला, नाम उन्हीं का सश्रद्धा श्रवण इन्हीं का कीर्तन तथा इन्हीं का स्मरण ही भक्ति है। नाम जप के संदर्भ में द्रष्टव्य है –

नामे तप जप यज्ञ नामे योग ध्यान।
नामे दान पुण्य नामे कोटि तीर्थ–स्नान।।
नामे धन–जन बन्धु नामे पिता–माता।
नामे निज सुहृद् नामे से गति दाता।।[19]

पादसेवन–अर्चन–वन्दन –

भक्ति के इन प्रकारों का सम्बन्ध आराध्य के स्वरूप से है अपने आराध्य को स्वामी तथा स्वयं को दास के रूप में स्थापित करके उनकी प्रसन्नता हेतु कर्म में प्रवृत्त होना पादसेवन तथा श्रद्धापूर्वक अर्चन करना सुंदर स्तुतियों के द्वारा उनको प्रसन्न करना ही वन्दन भक्ति है।

शंकरदेव के सिद्धान्तों में वंदन तथा अर्चन का सम्बन्ध मात्र इष्ट से ही नहीं है अपितु गुरु तथा भक्त से भी है, जिसे श्रीमन्त ने ओरेषा वर्णन, रुक्मिणी हरण में प्रतिपादित किया है।

दास्य भक्ति –

इस भक्ति में आराध्य के प्रति उनके ऐश्वर्य तथा महत्व की भावना तथा स्व के प्रति लघुता, दीनता का व्यवहार ही दास्य भक्ति है, दृढ़ता से दास्य भाव की स्वीकृति

ही इसका आधार है। श्रीमन्त कहते हैं –

तोमार अकाम भृत्य आमि।
तुमियो निष्काम मोर स्वामी।।[20]
कृष्ण किंकर शंकर भाण।
राम बिने नाहि गति आन।।[21]

सख्य भक्ति –

सख्य भक्ति में आराध्य तथा आराधक के मध्य अत्यंत समीपता होती है, वह मित्र भाव की प्राप्ति के कारण गुह्यतम स्वरूप को भी जान सकता है अतएव इसे प्रेयस रति भी कहते हैं। इस संदर्भ में श्रीमन्त शंकर देव द्वारा वर्णित कृष्ण और गोप सखाओं का वर्णन तथा दामोदर आख्यान द्रष्टव्य है।

आत्म निवेदनम् –

स्व–आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण को आत्मनिवेदन कहा गया है इसके पूर्व के भक्ति–क्रम में भौतिक–पदार्थों का समर्पण भी था, परन्तु ''आत्मनिवेदनम्'' में स्व का सर्वतोभावेन समर्पण ही आवश्यक है। पूर्व में वर्णित भक्ति के आचरण के फलस्वरूप उपर्युक्त भक्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है तथा इन्हीं का फल यह भक्ति है। आत्मनिवेदन भक्ति की प्राप्ति के उपरान्त जीव अथवा साधक जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर श्रीमन्त शंकरदेव निश्चित ही उत्तम भक्त होने के साथ–साथ राष्ट्र तथा समाज के पथ–प्रदर्शक ऋषि भी थे, जिनका जीवन स्वार्थपरता से सुदूर लोक–कल्याण के प्रति समर्पित था।

।। इति शम्।।

सन्दर्भ –

1. श्रीमद्भागवत माहात्म्य 2/3.
2. श्रीमद्भागवत माहात्म्य 2/4.
3. श्रीमद्भागवत माहात्म्य 2/7.
4. भागवत प्रदीपिका 22.
5. नि.न.स.– 7.
6. भागवत 1/949.
7. भ.प्र., 130.
8. बर 09, कीर्तन 318.
9. कीर्तन 379.
10. कीर्तन 130, भाग– 10/686.
11. भाग. 2/12/9.
12. भाग. 1/1039.
13. कीर्तन 1823, भा. 1/253.
14. नि.न.सं.– 653.
15. भाग. 11/233–34.
16. भाग. 11/165.
17. श्रीमद्भागवत, 07/05/23.
18. भक्ति रत्नाकर माहात्म्य 06,09.
19. भागवत 10/564.
20. कीर्तन 452.
21. बर 06.

शाङ्करभाष्य पद्धति विमर्श
(ब्रह्मसूत्र चतुस्सूत्री पर्यन्त भाष्य के आलोक में)

डॉ. घनश्याम मिश्र*

ब्रह्मसूत्र पर आचार्य शङ्कर का अद्वैतपरक शारीरकभाष्य उपलब्ध होता है। 'ब्रह्मसूत्र' में दो पद हैं- 'ब्रह्म' और दूसरा 'सूत्र'। सर्वत्र व्याप्त एवं सबसे बड़ा होने के कारण सृष्टि के मूलकारण जगन्नियन्ता परमात्मा को 'ब्रह्म' कहा गया है। दूसरा पद 'सूत्र' है, जो अल्प अक्षरों में ही संदेह रहित अभिष्ट अर्थ का पूर्णरूप से प्रतिपादन करने वाला होता है। आचार्य शङ्कर के अनुसार 'ब्रह्मसूत्र' का तात्पर्यार्थ है- *'ब्रह्मण: सूचकानि वाक्यानि ब्रह्मसूत्राणि... ब्रह्मसूत्रपदै: आत्मा ज्ञायते।'*[1] अर्थात् जो वाक्य ब्रह्म के सूचक हैं, उनका नाम 'ब्रह्मसूत्र' है। 'ब्रह्मसूत्र' द्वारा आत्मा का अवबोध होता है। ब्रह्मसूत्र को वेदान्त का आधार ग्रन्थ माना जाता है। ब्रह्मसूत्र इतने लघु एवं संक्षिप्त रूप में है कि बिना भाष्य की सहायता से उसका अर्थ समझना अत्यन्त कठिन है। अत: ब्रह्मसूत्र के स्पष्टीकरण एवं सहज रूप से अर्थावबोध के लिए एक भाष्य की आवश्यकता थी, जिस कार्य को आदि शङ्कराचार्य द्वारा प्राञ्जल, सरल, सुबोध, प्रवाहमयी भाषा में सूत्रों की सविस्तार व्याख्या किया गया। ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य का अध्ययन करने पर यह विदित होता है कि दार्शनिक गुत्थियों के निराकरण एवं गूढार्थ के प्रतिपादन हेतु आचार्य शङ्कर विविध पद्धतियों का प्रयोग करते हैं। अत: चतुस्सूत्री पर्यन्त शाङ्करभाष्य में प्रयुक्त भाष्य पद्धतियाँ अवलोकनीय हैं-

शाङ्कर भाष्य-पद्धति के विवेचन क्रम में सर्वप्रथम ब्रह्मसूत्र की संरचना पर विचार करें तो ब्रह्मसूत्र में कुल 4 अध्याय, 16 पाद और 189 अधिकरण है। ब्रह्मसूत्र को अधिकरणों में व्यवस्थापित किया गया है-

1. अधिकरण पद्धति में भाष्य का प्रणयन

यहाँ अधिकरण का अर्थ 'प्रकरण' है। एक प्रकरण अथवा एक विषय का प्रतिपादन जितने सूत्रों में मिलकर परिपूर्ण होता है, उन सब सूत्रों को मिलाकर एक 'अधिकरण' बनता है। ये अधिकरण कहीं एक सूत्रात्मक होते हैं और कहीं अनेक सूत्रात्मक। ब्रह्मसूत्र प्रथम अध्याय के प्रारम्भिक चार अधिकरण -

---

* सहायकाचार्य, दर्शन विद्याशाखा, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, श्री रणवीर परिसर, जम्मू।

[1] श्रीमद्भगवद्गीता, शां.भा. 13/4

- जिज्ञासाधिकरण
- जन्माद्यधिकरण
- शास्त्रयोनित्वाधिकरण
- समन्वयाधिकरण

एकसूत्रात्मक अधिकरण हैं और शेष सारे अधिकरण अनेक सूत्रात्मक हैं। अधिकरण का लक्षण क्या है? तथा यह शास्त्रीय पद्धति किस प्रकार व्याख्यान एवं शोध-कार्य के लिये उपयोगी है? इस जिज्ञासा के समाधान हेतु अधिकरण का लक्षण एवं शास्त्र में उसका प्रयोग द्रष्टव्य है -

विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्।
सङ्गतिश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्॥

- (ब्र.सू.शां.भा. भाषाटीका, पृ. 9)

अर्थात् 'अधिकरण-पद्धति' के पाँच अवयव बताये गये हैं-

1. **विषय-** किसी तथ्य विशेष को आधार बनाकर अर्थ का प्रतिपादन किया जाये, तो उस तथ्य विशेष को 'विषय' कहते हैं।
2. **विशय-** 'विशय' का अर्थ है - 'संशय'। जहाँ एक वस्तु के स्वरूप निर्धारण में एक साथ कई विकल्प समुपस्थित होते हैं, वह 'संशय' कहलाता है।
3. **पूर्वपक्ष-** सिद्धान्त के विरूद्ध कोटि को 'पूर्वपक्ष' कहते हैं। इसी को **प्रतिपक्ष** भी कहते हैं।
4. **उत्तरपक्ष- पूर्वपक्ष** की युक्ति का खण्डन करके **सत्पक्ष** में युक्ति दिखलाने वाला वाक्य 'उत्तरपक्ष' अथवा 'सिद्धान्तपक्ष' कहलाता है।
5. **सङ्गति-** चार अवयवों के अनन्तर सम्पूर्ण विवेचन का **फल** बताया जाता है, जिसे '**सङ्गति**' भी कहते हैं।

ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य अधिकरण पद्धति में निबद्ध होने के कारण इसे प्रत्येक अधिकरण में घटाया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप जिज्ञासाधिकरण द्रष्टव्य है-

'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'(ब्र.सू.1/1/1) यह एकसूत्रात्मक अधिकरण है।

1. **विषय** - 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' इस जिज्ञासाधिकरण का **विषय** 'ब्रह्म' है।
2. **संशय** - ***-'तत्पुनर्ब्रह्म प्रसिद्धमप्रसिद्धं वा। यदि प्रसिद्धं न जिज्ञासितव्यम्। अथाप्रसिद्धं नैव शक्यं जिज्ञासितुमिति।*** (ब्र.सू.शा.भा. 1/1/1) अर्थात् ब्रह्म प्रसिद्ध है अथवा अप्रसिद्ध। यदि प्रसिद्ध है तो उसकी जिज्ञासा की आवश्यकता नहीं है, यदि अप्रसिद्ध है, तो उसकी जिज्ञासा हो ही नहीं सकती, इस प्रकार ब्रह्म के विषय में **'संशय'** उपस्थापित किया गया है।

3. **पूर्वपक्ष** यह है कि 'ब्रह्म' में न तो जगत् का अध्यास बनता है, न जगत् में 'ब्रह्म' का अध्यास। अत: अध्यास का निरूपण सम्भव न होने से 'ब्रह्म' का विचार व्यर्थ है।
4. इस पूर्वपक्ष के समाधान के लिये **उत्तरपक्ष** के रूप में यह युक्ति प्रस्तुत की गयी है कि विषय और विषयी अर्थात् जगत् और ब्रह्म का और उनके धर्मों का अध्यास 'अहंबुद्धि' से सिद्ध होता है। बिना अध्यास के उसमें 'अहंबुद्धि' बन नहीं सकती। अत: आत्मा में 'अहं करोमि' के आधार पर अध्यास की सिद्धि होती है। यह **उत्तरपक्ष** 'अधिकरण-पद्धति' का चतुर्थ अवयव है।

पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष प्रस्तुत करने के सन्दर्भ में आचार्य शङ्कर की विशेषता यह है कि भाष्य में सर्वप्रथम विषय के रूप में अपने मन्तव्य की स्थापना करते है, पुन: पूर्वपक्षी की ओर से अनेकानेक सम्भावित आरोप सिद्धान्त पर उपस्थापित करते हैं । भाष्यकार पूर्वपक्ष की स्थापना निष्पक्षता पूर्वक करते हैं। किसी स्थापित सिद्धान्त पर जितनी शंकाएँ सम्भावित होती हैं, उन्हें पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थापित करते हैं, पुन: उत्तरपक्ष की ओर से क्रमश: उसका समाधान करते हुए सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं।

5. ब्रह्म का सामान्य रूप से ज्ञान होने पर भी उसका विशेष ज्ञान न होने से उसमें सन्देह बना रहता है- ***'देहमात्रं चैतन्यविशिष्टमात्मेति प्राकृता जना लौकायतिकाश्चप्रतिपन्ना:। विज्ञानमात्रं क्षणिकमित्येके। शून्यमित्यपरे।'*** (ब्र.सू.शा.भा. 1/1/1) अत: **ब्रह्म के विशेष ज्ञान हेतु** तथा ब्रह्म ज्ञान का फल **मोक्ष प्राप्ति हेतु** ब्रह्म विचार करना आवश्यक है। इस प्रकार जिज्ञासाधिकरण के सम्पूर्ण विवेचन का फल मोक्षप्राप्ति है। यह **फल** अधिकरण पद्धति का पाँचवां अङ्ग है, जिसे **सङ्गति** कहते हैं ।

इस प्रकार भाष्य में आदि शङ्कराचार्य द्वारा 'अधिकरण-पद्धति' का प्रयोग करते हुए सम्पूर्ण ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य का तात्पर्यार्थ 'तत्त्वमसि' और 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्यों द्वारा 'अद्वैत' में बताया गया है।

2. उपोद्घात-पद्धति में भाष्य का प्रणयन

'प्रकृतसिद्ध्यनुकूलचिन्ताविषयत्वमुपोद्घात:' [1] अर्थात् जहाँ **सन्दर्भ या प्रसंगात्मक** भाष्य लिखकर **विषयवस्तु** का आरम्भ किया जाता है, उसे 'उपोद्घात' कहते हैं। ग्रन्थारम्भ में ही वर्ण्य-विषयवस्तु का सारांश रूप में **"सम्बन्ध-भाष्य"** के द्वारा अथवा **उपोद्घात** के माध्यम से परिचयात्मक भाष्य प्रस्तुत करना भाष्य-पद्धति की प्रमुख विशेषता है, जिससे विषयावगति में

[1] साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद की विमलाख्या हिन्दी व्याख्या में उद्धृत ।

अत्यन्त सहायता मिलती है। शाङ्करभाष्यों में सर्वत्र परिचयात्मक 'उपोद्घात-पद्धति' का प्रयोग किया गया है। भाष्य ग्रन्थों के आरम्भ में ग्रन्थ की विषयवस्तु का परिचय उपलब्ध होता है। **सन्दर्भ (वर्ण्यविषय) का ज्ञान हो जाने से** पाठकों का ध्यान उस विषय पर केन्द्रित हो जाता है। जैसे- ब्रह्मसूत्र के आरम्भ में **'युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयो:' से लेकर 'शारीरकमीमांसायां प्रदर्शयिष्याम:'** यहाँ तक **"अध्यास भाष्य"** लिखा है। भाष्यकार ने इस अध्यास भाष्य में स्पष्ट कर दिया है कि **जगत् का मिथ्यात्वप्रदर्शन** एवं **जीवब्रह्मैक्य** ब्रह्मसूत्र का प्रतिपाद्य विषय है। पाठक की ग्रन्थ में प्रवृत्ति अथवा ग्रन्थ से निवृत्ति उपोद्घात रूप में वर्ण्य विषयवस्तु को पढकर के ही हो जाती है। अत: यह उपोद्घात पद्धति अध्येता एवं शोधार्थियों के लिये अत्यन्त उपकारक है।

3. शास्त्रार्थ-पद्धति में भाष्य का प्रणयन

ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि उन्होंने भाष्य का प्रणयन 'शास्त्रार्थ-पद्धति' में किया है। पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि मानो पूर्वपक्षी तथा उत्तरपक्षी दोनों आमने- सामने बैठकर संवाद कर रहे हों।

4. अनुव्याख्यान-पद्धति में भाष्य का प्रणयन

'अनुव्याख्यानानि मन्त्रविवरणानि, अथवा वस्तुसङ्ग्रहवाक्यविवरणान्यनुव्याख्यानानि।' ***(बृ.उ.२/४/१०)*** यहाँ मन्त्रविवरण का अर्थ मन्त्र व्याख्यान है। मन्त्र सम्बन्धी विवरण, व्याख्यान, अर्थवाद अथवा वस्तुसंग्रह वाक्य के विवरण को 'अनुव्याख्यान' कहा गया है। अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य शङ्कर अपनी भाष्य-पद्धति में आख्यानों का प्रयोग करते हैं। बहुविध आख्यानों के माध्यम से आचार्य शङ्कर ने अद्वैत वेदान्त के क्लिष्ट एवं दार्शनिक-गुत्थियों से युक्त सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करके उसको सरल-सुबोध एवं स्पष्ट रूप से जन-सामान्य के लिए बोधगम्य बनाने का प्रयास किया है।

5. व्याख्या-पद्धति में भाष्य का प्रणयन -

पदच्छेद: पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।
आक्षेपश्च समाधानं व्याख्या षड्विधा स्मृता॥[1]

अर्थात् पदच्छेद, पदार्थोक्ति, विग्रह, वाक्ययोजना, आक्षेप एवं समाधान- व्याख्या के इन षड्विध घटक तत्त्वों का उपयोग करते हुए आचार्य शङ्कर भाष्य रचना में दार्शनिक गुत्थियों का निराकरण कर गूढ़ार्थ का प्रतिपादन करते हैं।

[1] ब्र.सू.शां.भा. ब्रह्मतत्त्वविमर्शिनी हिन्दीव्याख्योपेतम्, पृ.9 की टिप्पणी

6. निर्वचन-पद्धति में भाष्य का प्रणयन

'निर्वचन-पद्धति' द्वारा शब्द को उसके अर्थ तक पहुँचाने में सहायता मिलती है। निर्वचन का शाब्दिक अर्थ है- *'निष्कृष्य विगृह्य वचनं निर्वचनम्।'* अर्थात् किसी शब्द में निहित अर्थ को विग्रह के द्वारा प्रकट करना। आचार्य शङ्कर ने भाष्य में **निर्वचन-पद्धति** के माध्यम से क्लिष्ट शब्दों का विश्लेषण किया हैं। 'ब्रह्मसूत्र' अत्यन्त गम्भीर होने के कारण जिज्ञासु जनों के लिए दुर्विज्ञेय था। अत: भाष्यकार द्वारा 'ब्रह्मसूत्र' को आधार बनाकर युक्तियुक्त, श्रुति, स्मृति प्रमाणों से समन्वित तथा व्यावहारिक दृष्टान्तों के प्रयोग द्वारा बोधगम्य भाष्य का प्रणयन किया गया, जिसमें सुकुमार मति भी अर्थावबोध कर सकता है।

7. प्रश्नोत्तर-पद्धति में भाष्य का प्रणयन

प्रतिपाद्य विषय का प्रश्नोत्तर रूप में स्पष्टीकरण करना आदि शङ्कराचार्य की प्रमुख विशेषता है। ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य के अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि भाष्यकार गूढ़ातिगूढ़ दार्शनिक रहस्यों को प्रश्नोत्तर पद्धति के माध्यम से लघु लघु वाक्यों द्वारा विवेचन करते हैं।

8. श्रुति-प्रामाण्य की प्रधानता

आचार्य शङ्कर अपनी भाष्य-पद्धति में श्रुति प्रामाण्य को सर्वोपरि मानते हुए अद्वैत विषयक सिद्धान्त के समर्थन एवं पूर्वपक्ष के खण्डन में अनेकानेक श्रुतियों को उद्धृत करके स्वसिद्धान्त की प्रामाणिकता की पुष्टि करते हैं। विविध सम्प्रदायों द्वारा वैदिक वाङ्मय पर की जाने वाली समस्त आपत्तियों का निराकरण श्रुति को ही उद्धृत करके किया। आदि शङ्कराचार्य भाष्य लेखन में श्रुति प्रामाण्य को स्मृति, युक्ति, पुराणादि समस्त प्रमाणों से सबल एवं स्वतन्त्र प्रमाण मानते हैं।

9. तर्क-पद्धति में भाष्य का प्रणयन

आदि शङ्कराचार्य की पद्धति वैदिक-पद्धति पर आधारित है। तर्क यथार्थ ज्ञान के निश्चय में सहायक होता है। यहाँ तर्क तत्त्वज्ञान नहीं है, अपितु तत्त्वज्ञान प्राप्ति का साधन है। तर्क से निश्चयात्मक ज्ञान न होने से तथा तर्क की कोई सीमा रेखा न होने के कारण आचार्य शङ्कर तर्क को सबल प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। आत्मतत्त्व विमर्श में आचार्य शङ्कर तर्क का प्राय: निषेध करते हैं। वे शुष्क तर्क या कुतर्क द्वारा सिद्धान्त निर्णय के पक्षपाती नहीं हैं। श्रुत्यनुमोदित तर्क (युक्ति) को वे सिद्धान्त की पुष्टि में आवश्यक मानते हुए दार्शनिक गुत्थियों का विश्लेषण कर अर्थ निर्धारण करते हैं।

10. लक्षण-परिभाषा-पद्धति में भाष्य का प्रणयन

व्याख्या के क्रम में आचार्य शङ्कर क्लिष्ट शब्दों तथा परस्पर सूक्ष्म भेद रखने वाले शब्दों को परिभाषित करते हैं। इनके द्वारा दी गयी परिभाषाएँ इतनी युक्तियुक्त हैं कि तत्-तत् शब्दों के अर्थ सम्बन्धी समस्त संशयों को दूर कर देती हैं।

11. आलोचनात्मक-पद्धति में भाष्य का प्रणयन

आचार्य शङ्कर के प्रादुर्भाव काल में अनेकानेक मत-मतान्तर एवं दर्शनविषयक भ्रान्त धारणाएं प्रचलित हो गयी थीं। अत: उनके गुण-दोषों का विवेचन किये बिना स्वमत की स्थापना करना कठिन था। गुण-दोषों के मूल्यांकन हेतु 'आलोचनात्मक-पद्धति' का आश्रय अनिवार्य था। आचार्य शङ्कर को तत्त्वाभिनिवेशी आलोचकों की श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि इनके भाष्यों में जो सैद्धान्तिक आलोचना है, वह पूर्वपक्ष की पूर्ण परीक्षा के पश्चात् स्वमत का प्रतिपादन करने वाली है।

12. दृष्टान्त-पद्धति में भाष्य का प्रणयन

सिद्धान्त के स्पष्टीकरण तथा जन-सामान्य के लिए ग्राह्य बनाने हेतु दृष्टान्त का प्रयोग आवश्यक होता है। यदि पूर्ण रूप से भाष्य को जन सामान्य का विषय बनाना अभिष्ट हो तो सामान्य जनों के दैनिक व्यवहार की अनुभूतियों को सिद्धान्त प्रतिपादन में साधनता प्रदान करना परमावश्यक है। आचार्य शङ्कर भाष्य में दैनिक जीवन के अनेकानेक अनुभूत तथ्यों को दृष्टान्त रूप में उद्धृत करके स्वसिद्धान्त को जन सामान्य के लिए बोधगम्य बनाने का प्रयास किये हैं। सामान्य जन भी दिन प्रतिदिन के व्यवहार में जिन तथ्यों की अनुभूति करता है, उन अनुभव के विषयभूत रज्जु-सर्प, शुक्तिका-रजत, तन्तु-पट, घटाकाश-महाकाश, मृत्तिका-घट इत्यादि बहुविध दृष्टान्तों के माध्यम से वेदान्त के गम्भीर तथा गूढ़रहस्यों को जन- सामान्य के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार ब्रह्मसूत्र चतुस्सूत्री शाङ्कर भाष्य के अध्ययन के अनन्तर उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आदि शङ्कराचार्य द्वारा वेदान्त के अत्यन्त क्लिष्ट दार्शनिक गुत्थियों का निराकरण एवं विश्लेषण बहुविध शास्त्रीय व्याख्या-पद्धतियों के प्रयोग द्वारा किया गया है। अत: शाङ्कर भाष्य में प्रयुक्त उपर्युक्त व्याख्या-पद्धतियाँ (Research Method) शोधप्रबन्ध निर्माण में शोधार्थियों के लिये उपयोगी एवं सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

❒

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वैदिक कृषिकर्म की प्रासङ्गिकता

डॉ. सविता ओझा*

प्राचीन युग से ही भारत की समृद्धि कृषि पर आधारित रही है। वैदिककाल में जब आर्य अपनी खानाबदोश जीवनशैली से ऊपर उठकर संगठित एवं संस्कारित हुए तो उनकी अर्थव्यवस्था का आधारस्तम्भ कृषिकर्म ही था। वेदों, पुराणों एवं इनके परवर्ती ग्रन्थों में इसके दृष्टान्त बिखरे पड़े हैं। ऋग्वेद में आर्य कृषिबल समाज से युक्त वर्णित हैं। इनकी जीविका का प्रधान साधन मिश्रित कृषि थी। मिश्रित कृषि से तात्पर्य है– कृषि तथा पशुपालन अर्थात् मनुष्य के जीवन–निर्वहन में दोनो ही मुख्य धुरी की भूमिका में रहे हैं। यह भी कहा जा सकता है कि कृषि एवं पशुपालन दोनों का अपना–अपना महत्व था तथा एक–दूसरे पर आश्रित भी थे।इसे ही वर्तमान युग में हम 'संधारणीय कृषि (Sustainable agriculture) कहते हैं। वैदिक कृषि की संकल्पना एक चक्र के रूप में दिखायी पड़ती है। मनुष्य द्वारा गो , वृषभ, भेड़, बकरीयों का पालन–पोषण किया जाता था। इन पशुओं के गोबर या गवांश आदि के माध्यम से भूमि का पालन तथा इस भूमि पर उत्पन्न अन्नादि से मनुष्य का पालन–पोषण होता था। ऋग्वेद के दशम मण्डल का एक प्रसिद्ध वाक्य है–**''अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः''** अर्थात् जुआ छोड़कर कृषि का अभ्यास करो तथा सम्मान से धन प्राप्त करो।[1] कर्त्तव्य–पथ की ओर प्रेरित करने वाला यह वाक्य कृषि की महत्ता को भी प्रकट कर रहा है।

वेदों में खेत के लिए प्रायः 'क्षेत्र' शब्द का प्रयोग दिखायी पड़ता है। तत्कालीन युग में खेतों पर वैयक्तिक अधिकार न होकर परिवार का अधिकार होता था। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार ''वैयक्तिक अधिकार का यह तात्पर्य नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति उस समय अपने लिये अलग–अलग जोत रखता था, प्रत्युत उनके खेत पर एक कुटुम्ब का अधिकार समझना चाहिए।''[2] ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल के सन्तावनवें सूक्त में कृषिकर्म के वर्णन – सन्दर्भ में 'क्षेत्र स्वामी' की उपमा शिक्षित, अनुरक्त सेना से देते हुए उनके कृषिकर्म में दक्ष एवं सुख देने वाला कहा गया है।[3] इस सन्दर्भ में कृषिकर्म करने वाले क्षेत्रस्वामी से पौनः पुन्येन शुद्ध, मधुर एवं पुष्टवर्धक अन्न उत्पन्न करने का अनुनय किया गया है।[4]

जनसंख्यावृद्धि के कारण कृषि–उत्पादकता में वृद्धि की आवश्यकता हुई और 'हरित क्रांति' का प्रादुर्भाव हुआ। फलस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि तो हुई परन्तु 'अन्न' की गुणवत्ता में न्यूनता के परिणाम हमारे समक्ष आने लगे। हम कृषिविज्ञान के अत्याधुनिक प्रयोगों में अन्न को केवल क्षुधा–शान्ति या उदर–पूर्ति का माध्यम मान बैठे

* विभागाध्यक्ष संस्कृत, पूर्णियां कॉलेज,पूर्णियां विश्वविद्यालय।

हैं। वेदों–उपनिषदों में 'अन्न' को ब्रह्म, जीवनदायी, नाद–स्वरूप वाला, रसयुक्त आदि कई स्वरूपों में रूपायित किया गया है।[5] इसी कारण आर्यों का कृषिकर्म आध्यात्मिक कर्म भी था। ऋग्वेद में कृषि–उत्पादकता के सन्दर्भ में उसकी गुणवत्ता पर बल देते हुए 'क्षेत्र–स्वामी' से यह कामना की गयी है कि 'वह अपने भृत्य के साथ कृषिविद्या को प्रकाश में करने वाले जल एवं वाणी से भूमि को पहले सींचें।'[6] ताकि वह भूमि न केवल बीज–वपन हेतु योग्य हो सके अपितु सौभाग्यवर्धक एवं पुष्टवर्धक भी हो सके। यहाँ वाणी से सिञ्चित करने का तात्पर्य मंत्रोच्चारण से है। वर्तमान समय के सदृश वैदिक काल में भी कीड़ों, टिड्डों, चूहों आदि के द्वारा फसलों को क्षति पहुँचायी जाती थी। इसके लिए भी उपाय के साथ–साथ मंत्रो के भी दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं।[7] मंत्रोच्चारणादि कृत्य हमें सकारात्मकता की ओर प्रेरित करते हैं।

वैदिक काल में कृषिकर्म अत्यन्त समृद्ध कही जा सकती है। कृषिकर्म के प्रकारों में जुताई, बुआई, निराई, कटाई आदि विधियाँ प्रयोग में लायी जाती थी। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार–'' शतपथ ने कर्षण (जोतना), वपन (बोना), लवन (काटना) तथा मर्दन (माँड़ना)–चार ही शब्दों में कृषिकर्म की पूरी प्रक्रिया का वर्णन कर दिया है।[8] खेतों की जुताई हल से की जाती थी तभी खेत बीज बोने योग्य हो पाते थे। वेदों में हल के अन्य नाम भी दृष्टिगत होते हैं– लांगल या सीर।[9] इसके आगे निकले नुकिले भाग को फाल या फार कहते थे।(यहाँ सुमतित्सरु एवं सोमसत्सरु दोनो रूप मिलता है) हल खींचने के लिए बैलों को युक्त किया जाता था जिनकी संख्या छः, आठ, बारह या चौबीस तक होती थी।[10] ऋग्वेद में 'फाल' के लिए 'सीता' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसे लौह–निर्मित नुकीला बताया गया है। यत्र–तत्र भूमि के परीक्षण एवं उसके सौभाग्यवर्धक होने की बात पर बल दिया गया है।[11] अन्न के वपन के सन्दर्भ को तैत्तिरीय संहिता में देखा जा सकता है। जिसके अनुसार वर्ष में दो बार फसल बोई जाती थी। हेमन्त में 'जौ' का वपन होता था तो वह ग्रीष्मकाल में पककर तैयार होता था। वर्षाऋतु में धान का वपन होता था तो वह शरद् ऋतु में पककर तैयार हो जाता था। आज भी फसल एवं ऋतुओं के सम्बन्ध की यही परिपाटी है। पूर्व में खेत में बीज बोने तथा उसके अन्न के रूप में पक कर तैयार हो जाने पर उसे तीक्ष्ण दाँत वाले 'हँसुए' से काटने का विधान था।[12] खलिहान में उन फसलों की पुली बनाकर उन्हें माँड़ने के पश्चात् उसको भूसे से अलग किया जाता था। इसे करने वाले व्यक्ति को 'धान्यकृत' कहा जाता था।[13] उस समय खेत उपजाऊ होते थे। आवश्यकता पड़ने पर खाद के रूप में गाय के गोबर का प्रयोग होता था।

वैदिक कृषि में सिंचाई के सन्दर्भ में वेदों में कई दृष्टान्त मिलते हैं। आर्य, कृषि के लिए वृष्टि पर ही निर्भर थे। जल के दो प्रकार के स्रोंतों का उल्लेख मिलता है– खनित्रिमा (कुआँ, तालाब आदि) तथा स्वयंजा (नदी)।[14] प्रथम प्रकार के सन्दर्भ में कुआँ के लिए 'अवतम्' पद का प्रयोग हुआ है। भूमि को खोदकर सिंचाई के लिए ऐसे कुएँ का निर्माण किया जाये, जिसका पानी कभी कम न हो (अक्षितम्)। कुएँ से जल निकालने

के लिए दो बराबर रस्सियों को परस्पर जोड़ने की बात कही गयी है। यह जल उत्तम प्रकृति का जल होता था जो मनुष्यों तथा पशुओं के भी पीने योग्य होता था।[15] कुएँ से निकाला गया जल सिंचाई के लिए बड़ी–बड़ी नालियों के माध्यम से खेत तक पहुँचाया जाता था। 'कुओं से जल निकालने का यह ढंग अब तक पंजाब तथा दिल्ली के आस–पास प्रचलित है।'[16] बाँधों एवं जलाशयों द्वारा सिंचाई का उल्लेख यजुर्वेद में प्राप्त होता है। ऋग्वेद में सिंचाई के लिए नदियों का महत्व परिलक्षित होता है। इसमें सिन्धु नदी तथा उसकी दो धाराओं को 'भोजन का अवतार' कहा गया है। इसके अतिरिक्त सरस्वती नदी के भी महत्व को बताया गया है कि यह किस प्रकार से मृदा की उर्वरकता में वृद्धि करती है।

भारत की प्राचीन कृषिकर्म के वैदिक साक्ष्य तो उपलब्ध होते ही हैं। साथ ही साथ हम देखते हैं कि भारतवर्ष में कृषि–अनुसंधान की लिखित परम्परा भी काफी पुरानी है। ऋषि पराशर द्वारा रचित 'कृषिपराशर' एवं छठी शताब्दी के वराहमिहिर (505–587ई.) द्वारा लिखित 'बृहत्संहिता' कृषिकर्म पर आधारित दो ऐसे अन्यतम ग्रन्थ हैं जो वर्तमान समय में जैविक कृषि या सतत् कृषि के लिए आधारस्तम्भ हैं। कृषिपराशर ग्रन्थ के तीन खण्डों में वृष्टि ज्ञान, कृषिभूमि के भेद, कृषिकर्म के उपयोग में आने वाले यंत्रों का स्वरूप एवं वर्गीकरण, वर्षाजल को मापने की विधियाँ, बीजों का रक्षण, जल रक्षण की विधियाँ, कृषि में उपयोगी वाहक पशुओं की देखरेख पोषण आदि की विविध एवं विस्तृत जानकारी उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त पाणिनि कृत 'अष्टाध्यायी'(500ई.) एवं चाणक्य कृत 'अर्थशास्त्र' (400 ई.पू.) में 'वृष्टि विज्ञान' विषयक विस्तृत ज्ञान द्रष्टव्य है। 'अष्टाध्यायी' को 'वृष्टि विज्ञान' विषयक सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। 'इसमें वर्षा, वर्षा के भेद, पूर्व वर्षा, अपर वर्षा, वर्षा की माप, उसकी विधि, अनावृष्टि(अकाल, सूखा पड़ना), वर्षा से होने वाली फसलों (सस्य) आदि का विस्तृत विवरण दिया गया है।'[17] उसी प्रकार अर्थशास्त्र में इसके अतिरिक्त वर्षा में बोये जाने वाले अन्न का भी विस्तृत वर्णन हुआ है। प्राचीन विधियों में कृषि हेतु मिट्टी को योग्य बनाने के लिए कई प्रकार की विधियाँ बतायी गयी हैं – जैसे– 'अंगारा प्रविधि' जिसमें केचुओं का बीजारोपण होता है। इसकी वृद्धि के लिए कई उपाय बताये गये हैं। बरगद के पेड़ के नीचे की मृदा या केचुओं से युक्त मृदा को अत्यन्त उर्वरक बताया गया है। चाणक्य द्वारा उक्त है–

कांडबीजानाम् छेदलेपो ,मधुघ्रितेन।
क्रन्दनमस्ति बीजानाम् शकुदलीपः।।[18]

इसके अतिरिक्त 'अमृतपानी' (जैविक साधनों द्वारा तैयार किया गया विशेष तरल) की प्रविधि बतायी गयी जो सभी फसलों के लिए लाभकारी तो है ही हल्दी, गन्ना, अदरख आदि के लिए विशेष रूप से लाभ देने वाला है। उसी प्रकार से फसलों को रोगमुक्त तथा सांप–बिच्छूओं से दूर रखने की प्रविधि का भी उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार से ये सभी ग्रन्थ वैदिक कृषि, मुख्य रूप से जैविक कृषि पर ही आधारित

हैं। इन ग्रन्थों में गोवांशों तथा पौधों के अर्क से निर्मित जैविक उर्वरकों का उपयोग बताया गया है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक भी नहीं होते।

भारत में हरित क्रांति का प्रारम्भ 1960 के दशक में हुआ, जिसका अभिप्राय था– सिंचित एवं असिंचित कृषि के क्षेत्रों में अधिक उत्पादन वाले शंकर एवं बौने बीज से अन्नोत्पादकता में वृद्धि करना। परिणामतः ग्रामीण कृषि–परिवेश में भी यूरिया, पोटाशियम आदि रसायनिक पदार्थों एवं कीटनाशक दवाओं का प्रयोग बहुतायत होने लगा है। जिस कारण से न केवल शहरों बल्कि गाँवों में भी समस्यायें उत्पन्न हो रही है। आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि 1973–74 ई0 में सर्वाधिक कीटनाशक दवाओं का प्रयोग हुआ। बाजारवाद एवं स्वार्थपरक प्रवृत्ति ने प्रत्येक क्षेत्र में नैतिक मूल्यों का ह्रास किया। यहाँ भी कृषकों को जहाँ 1 मि.लि. कीटनाशक रसायन की आवश्यकता थी उन्हें 10 मि.लि. की आवश्यकता बताते हुए विक्रय किया गया। परिणामतः उत्पादकता भले बढी हो परन्तु मिट्टी की उर्वरकता में कमी, मिट्टी का क्षरण, जैविक तथा अजैविक पदार्थों के चक्र का असंतुलित होना, भूमिगत जल प्रदूषणादि की वृद्धि के साथ–साथ मानव एवं पशुधन जनित रोगों की अधिकता हुई है। रसायनिक आधारित कृषि के द्वारा कृषक को आर्थिक लाभ भले हुआ हो परन्तु इससे एकफसली (मोनोक्रॉपिंग) प्रथा को बढावा मिला है। इसी का परिणाम है कि जैव–विविधता, मृदा एवं जल पर संकट गहराता जा रहा है। अब तो यह भी यत्र–तत्र द्रष्टव्य है कि कृषक अपने एवं परिवार के लिए अन्य और विक्रय हेतु अन्य विधि से फसल उत्पन्न करता है। इस भावना में संपूर्ण लोक का कल्याण कदापि नहीं हो सकता। ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल में ही कृषिकर्म के संदर्भ में सकारात्मक विचार का उत्कृष्ट दृष्टान्त मिलता है–'' सभी मनुष्यों को चाहिए कि वे जैसा अपने लिए उत्तम पदार्थ की इच्छा करते हैं, वैसे ही अन्य जनों के लिए भी करें।[19] कृषि की वैज्ञानिकता एवं आधुनिकता के साथ ऐसी सार्वभौमिक एवं सर्वकल्याण की भावना का होना अत्यावश्यक है।

ऋषि –कृषि विज्ञान तथा आधुनिक कृषि विज्ञान को समानांतर रखने की महती आवश्यकता है। सभी प्राचीन ग्रन्थों में कृषिविज्ञान के सन्दर्भ में देखें तो उत्पादन से अधिक भूमि एवं पशुधन को प्रमुखता मिली है क्योंकि प्राचीन कृषि में फसल की गुणवत्ता पर अधिक बल था। वर्तमान कृषक, कृषिकर्म में रसायनिक उर्वरकादि अत्याधुनिक कृषि प्रयोगों से उत्पादकता–वृद्धि की श्रेणी में तो आ खड़े हुए परन्तु उन्हें मृदा–क्षरण, प्रदूषित वायुमंडल, आदि कई समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। अतः आज जैविक कृषि, सतत् कृषि की आवश्यकता है। माँग बढने से वर्तमान कृषकों में भी जैविक कृषि की ओर रूझान बढ़ रहा है और जैविक कृषि के कारण मिश्रित कृषि की ओर भी उन्मुखता बढ़ रही है। सन् 1990 के बाद संपूर्ण विश्व में जैविक उत्पादों के बाजार में वृद्धि हुई है। जैविक प्रक्रिया में मनुष्य, पशु, पेड़–पौधे एवं भूमि सभी के एकसूत्र में बँधने की सम्भावनायें प्रबल हैं। वेदाश्रित मिश्रित कृषि या 'संधारणीय कृषि' प्रणाली से मनुष्य के वर्तमान तथा भावी पीढ़ी के लिए न केवल अन्न बल्कि वस्त्र, ईंधन

की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में मदद होगी। इस कृषि–प्रणाली में भूमि पर दबाव कम पड़ता है, रसायनिक उर्वरक का प्रयोग नही ंके बराबर या प्राकृतिक उर्वरक का प्रयोग होता है, जल एवं मृदा प्रबन्धन पर विशेष ध्यान होता है। इससे जैव–विविधता भी नष्ट नहीं होती है। मिश्रित कृषि ही नहीं मिश्रित फसल भी वर्तमान समय की माँग है। इससे मिट्टी के पोषक तत्वों का क्षय नहीं होता तथा पर्यावरण–संतुलन में भी लाभकारी है। आज वैदिक कृषि की महत्ता को संज्ञान में लेकर पूरे भारतवर्ष में नवीन प्रयोग हो रहे हैं। मध्यप्रदेश के नीमखेड़ा में 250 एकड़ में वैदिक खेती करायी जा रही है। जिसमें देशी गाय के गोबर, गोमूत्र एवं गुड़ को मिलाकर 8–10 दिनों तक सड़ाया जाता है, फिर उसे गन्ने की खेती में प्रयोग में लाया जाता है। इसी प्रकार गोवांश एवं अन्य प्राकृतिक उर्वरकों के कई सफल प्रयोग कृषि के लिए किये जा रहे हैं। वेदों में मानवीय संवेदना को फसलों के संवेद्य कहा गया अर्थात् उनके संवर्धन में मृदुल स्पर्श एवं वाणी का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। आज वैदिक कृषि (जैविक कृषि में) का अनुकरण करने वाले वैज्ञानिक भी सूर्योदय, मंत्रोच्चारण की ऊर्जा के सकारात्मक शक्ति के प्रभाव को सहर्ष स्वीकार करते हुए प्रयोग करते हैं।

भारत में हरित क्रान्ति का अग्रदूत कहे जाने वाला गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के निदेशक, प्रसार शिक्षा डॉ. अनिल कुमार शर्मा के अनुसार जैविक कृषि में हमें अग्नि–प्रज्वलन, मन्त्रोच्चारण एवं सूर्योदय के ऊर्जा–संरक्षण के संचय का अभ्यास करना चाहिए। इन्होंने उन्नत फसल के लिए मिट्टी एवं वातावरण की शुद्धता हेतु खेतों में हवन एवं मंत्रोच्चारण के प्रयोग पर बल दिया। वैदिक कृषि को ऊर्जा के श्रोत पर आधारित मानते हुए कहा कि हमें प्रकृति के विरूद्ध न जाकर पारिस्थितिक तंत्र के अनुकूल खेती करनी चाहिए। इनके कथनानुसार वैज्ञानिकों को वैदिक कृषि – मंत्रों में किसप्रकार की प्रभावशाली ध्वनितरंगें है? ताँबे के पिरामिड, राखादि किसप्रकार से और क्यों प्रभावशाली हैं? इसका पता करना होगा।[20] इस विश्वविद्याालय में वैदिक कृषि पर आधारित कृषि के विविध प्रयोग एवं परीक्षण हो रहे हैं जैसे – पंचगव्य, जीवामृत ,घनजीवामृत, कम्पोस्ट आदि को उपयोग में लाकर जैविक कृषि की जा रही है।

इसप्रकार प्राचीन मनीषियों ने न केवल ''अन्नं वै ब्रह्म'' कहा बल्कि उसकी महत्ता का विचार कर वैदिक कृषि के अन्तर्गत मृदा प्रबन्धन, खेत की जुताई, सिंचाई, वपन क्रिया, अन्न की कटाई, मड़ाई, बीजों का भंडारण आदि विविध विधानों का विस्तार से उल्लेख किया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आधुनिक कृषिविज्ञान के लिए वैदिक कृषिकर्म अत्यंत प्रासंगिक है। नयी शिक्षानीति 2020 का उद्देश्य भी यही है कि हमारी आधुनिक परम्परा, प्राचीन परम्पराओं का अवगाहन करते हुए विकास की ओर अग्रसर हों। अतः सुझाव के रूप में यह कहना उचित जान पड़ता है कि वैदिक–ग्रंथों का समुचित पठन–पाठन हो। इसमें वर्णित कृषिकर्मों के अनुसार कृषकों को समुचित रूप से शिक्षित किया जाये। तभी आज के कृषक इन प्रविधियों का भली–भाँति उपयोग कर

लाभान्वित हो सकेंगे।

सन्दर्भ –

1. ऋग्वेद १०/३४/७
2. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति/चतुर्थ परिच्छेद/पृ.सं. ४५१
3. क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
   गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे।। (ऋ.४/५७/१)
4. क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
   मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ।। (ऋ..४/५७/२)
5. (क) इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेवी पाहि जिह्वया यजत्र (ऋ. ३/३५/१०)
   (ख) तैत्तिरीयोपनिषद्/भृगुवल्ली/द्वितीय अनुवाक्/पृ.सं.१०७७
6. शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः।
   तेनेमामुप सिञ्चतम्।। (ऋ./४/५७/५)
7. (अथर्व./६/५०/१–३)
8. वै. सा. एवं सं./चतुर्थ परिच्छेद/पृ.सं. ४५१
9. सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।(ऋ. १०/१०१/४)
10. (क) लांगलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु।
    उद्दिवपतु गाववि प्रस्थावद् रथवाहनं पीबरीं च प्रफर्व्यम्।। (अथर्व. ३/१७/३)
    (ख) वै. सा. एवं सं./चतुर्थ परिच्छेद/पृ.सं. ४५१
11 ऋ. ४/५७/६–८
12. युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
    गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात्।।(ऋ. १० /१०१/३)
13. (क) खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि (ऋ. १० /४८/७)
    (ख) वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः(ऋ. १० /९४/ १३)
14. या आपो दिव्या उतः याः स्रवन्ति।
    खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः। (७/४९/२)
15. (क) निरावहान्कृणोतन सं वरत्रा दधातन।
    सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुशेकमनुपक्षितम्।। (ऋ. १० / १०१ /५)
    (ख) उद्रिणे सिञ्चे अक्षितम्।। (ऋ. १० / १०१ /६)
16. वै. सा. एवं सं./चतुर्थ परिच्छेद/पृ.सं.४५३
17. प्रा. भा. में वि./पृ. सं. १०६

१८ http://agri.uttamkheti.org/prepare-land-vedic-krishi /

१९ क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिश्यन्तो अन्वेनं चरेम।। (ऋ. ४/५७/२–३)

२० https://youtu.be/ROXgWyQCDA

❒

वेदों में वर्णित औषधियों द्वारा समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा

डॉ. अमित भार्गव*

भारत वर्ष प्राचीन काल से ही विशिष्ट ज्ञान परम्परा, संस्कृति एवं कला के लिए सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। हमारे ऋषि महर्षि प्राचीन काल से ही विविध प्रकार के ज्ञान प्राप्ति हेतु सर्वदा समर्पित व अनुसंधानरत रहे हैं। जिसके फलस्वरूप अनेकानेक भारतीय विद्वानों ने अपनी अविरल ज्ञानधारा से भारत ही नहीं अपितु अखिल विश्व को अपने ज्ञान से अभिषिञ्चित किया है। भारतीय ज्ञान परम्परा में समस्त मानव समाज के कल्याण हेतु वेदों में वर्णित औषधियों के माध्यम से अनेकानेक प्रकारों से मानव स्वास्थ्य के लिये महत्वपूर्ण विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

वेदों में वर्णित औषधियों के सिद्धान्तों का पालन करने से मानव जीवन सुखमय एवं रोगरहित हो सकता है। प्राचीन काल से ही समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा का उल्लेख प्रमुख रूप से वेदों में प्राप्त होता है। जिसका उद्देश्य उत्तम स्वास्थ्य की भावना से मानव समाज के कल्याण के लिये है। उपनिषद्, आयुर्वेद, योग के सिद्धान्तों के अनुसार मानव जीवन का मूल ध्येय स्वास्थ्य शरीर के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इसलिये समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा के लिये वेदों में वर्णित आयुर्वेदशास्त्र का ज्ञान परम आवश्यक है। क्योकि उपनिषदों में वर्णित पञ्चकोशीय ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति समग्र स्वास्थ्य के प्रति आवश्यक साधना कर सकता है उपनिषद् के अनुसार शारीरिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य से है और मानसिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध आध्यत्मिक स्वास्थ्य से है। अतः उपनिषद् मुख्य रूप से आध्यात्मिक स्वास्थ्य का तथा योग मानसिक स्वास्थ्य का तथा आयुर्वेद शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति विशेष रूप से प्रेरित करता है।

उपरोक्त लेख में मुख्य रूप से वेदों में वर्णित औषधियों के प्रयोग से मानव कल्याण एवं मनुष्य के समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा का विवेचन करने का प्रयास किया जा रहा है।

विषय प्रवेश – आयुर्वेद अर्थात् **आयुषो वेदः आयुर्वेदः** जिस शास्त्र में मानव जीवन की आयु और मानव जीवन के विज्ञान का ज्ञान निहित हो उस शास्त्र को आयुर्वेद कहते है। आचार्य चरक के अनुसार

– **शरीरेन्द्रिय सत्त्वात्म संवेगोधारिजीवितम्। नित्यगश्च अनुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते ॥**[1]

सत्वमात्माशरीरञ्च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्। लोकस्तिष्ठति संयोगात् तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥[2]

---

* सहायक प्राध्यापक, कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक।

[1] चरक संहिता १.४२

[2] चरक संहिता १.४६

अर्थात् मानव के शरीर में आत्मा (अर्थात् कारणशरीर), मन (अर्थात् सूक्ष्म शरीर), शरीर अर्थात् स्थूल शरीर इन तीनों मानव जीवन में शरीर के आधारस्तम्भ बताये गये है, इनके माध्यम से समग्र प्राणि, जगत आश्रित है।

विश्व के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थों वेदो में विभिन्न औषधियों का वर्णन प्राप्त होता है। आचार्य यास्क औषधि शब्द का निर्वचन करते हुये लिखते है – **ओषधयः ओषद्धयन्ति दोषं धयन्तीतिवा।**[1] इसी क्रम में मैत्रायणीसंहिता के मन्त्रों में भी औषधि का वर्णन – **ओषधयः रोगनिवारकाः वनस्पतयः।**[2] अर्थात् औषधि वह है जिसके प्रयोग से रोगों का निवारण किया जा सके। शतपथ ब्राह्मण में भी औषधि का वर्णन प्राप्त होता है – **रेवत्याः आपः जगत्यः ओषधयः।**[3] अर्थात् जल को औषधियों में मिलाया जाता है। इसी क्रम में यजुर्वेद में कहा गया है **मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्**।[4] अर्थात् मधुर स्वाद से युक्त जलों को दिव्य स्वाद युक्त औषधियों के साथ सम्मिश्रण करना चाहिये। क्योकिं तैत्तरीय संहिता में औषधियों एवं वस्पतियों की देवता के रूप में स्तुति की गई है – **देवो वनस्पतिरूर्ध्वोमापाहि।** जैसा कि गीता में कहा गया है – **देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः । परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्सथ।।**[5] **अर्थात् –** परस्पर दो देवों के मेल से परम श्रेय की प्राप्ति होती है। मैत्रायणी शाखा में भी वनस्पतियों को स्थावर जङ्गम प्राणियों के लिये हितकारी बताया गया है – **चराचरा हि वनस्पतयः, वायुगोपाः वै वनस्पतयः।**[6] इसी क्रम में यजुर्वेद में उल्लेख प्राप्त होता है - **माऽपोमौषधीर्हिंसीः।**[7] इस वेदवाक्य में बताया गया है कि औषधि एवं वनस्पतियों को नष्ट न करने एवं केवल प्राणरक्षा के लिये ही औषधियों का प्रयोग करना चाहिये। वह जन जो अनावश्यक रूप से औषधियों को नष्ट करते है इस प्रकार के मनुष्यों के लिये उपरोक्त मन्त्र में बताया गया है कि औषधियों को अनावश्यक रूप से नष्ट नहीं करना चाहिये। शुक्लयजुर्वेद में औषधियों के प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है – **ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसुवरीः** ।[8] अर्थात् हे औषधी आप अपने फलों के द्वारा या पुष्पों के द्वारा संग्राम में हमारी रक्षा करों। वेदों में औषधियों एवं वनस्पतियों को नमस्कार किया गया है, क्योकिं जिन औषधिय वृक्षों पर सूर्य की तीव्र किरणों के माध्यम से उन्हे क्षति न हो इस भावना से प्राचीन काल में ऋषियों के द्वारा पर्यावरण संरक्षण की सद्भावना को प्रस्तुत किया गया है **- नमो**

---

[1] निरुक्तम् ९.७

[2] मैत्रायणीसंहिता १.८.९

[3] शतपथ ब्राह्मण १.२.२.२

[4] शुक्लयजुर्वेद संहिता १.२१

[5] श्रीमद्भगवतगीता ३.११

[6] मैत्रायणी संहिता ३.९.४

[7] शुक्लयजुर्वेद संहिता ६.२२

[8] शुक्लयजुर्वेद संहिता १२.७७

वृक्षेभ्यः हरिकेशेभ्यः, वनानां पतये नमः, ओषधीनां पतये नमः, वृक्षाणां पतये नमः, अरण्यानां पतये नमः।[1] वस्तुतः प्राचीन काल में वनस्पति, वन तथा औषधियों के संरक्षण पालन एवं संवर्धन हेतु हमारे प्राचीन ऋषियों के द्वारा उन औषधियों की स्तुति की क्योकिं प्राचीन काल से ही हमारे ऋषि महर्षि उन औषधियों का प्रयोग मानव कल्याण हेतु करते आये है। अतः हम सभी को भी प्रकृति का संरक्षण एवं संवर्द्धन करना चाहिये। अथर्ववेद में भी जिन वनस्पतियों में आहार एवं पोषण संबन्धित गुणों का उल्लेख प्राप्त होता है - **तिस्त्रो दिवस्तिस्त्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक्। त्वयाहं सर्वाभूतानि पश्यानि देव्योषधे।**[2] वस्तुतः प्राचीन काल में ऋषियों के द्वारा वेदों में अनेकानेक प्रकार के औषधियों का वर्णन प्राप्त होता है। अतएव प्राचीन काल से ही वनों के संरक्षण के माध्यम से वनोषधियों का संरक्षण संवर्धन का क्रम चला आ रहा है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है - **वर्षवृधा वा ओषधयः**[3] अर्थात् वर्षा के जल से औषधियों का संवर्धन अच्छे प्रकार से होता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में भी कहा गया है कि मनुष्य के शरीर की रक्षा करने एवं रोगप्रतिरोधक क्षमता के लिये औषधियों का प्रयोग बताया गया है। क्योंकि जैसे मनुष्य शरीर में माता के दुग्ध के सेवन करने से बल प्राप्त होता है उसी प्रकार औषधियों के उपयोग करने से होता है। वेदों में औषधीय गुणों से युक्त वृक्ष, वनस्पतियों का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है – **वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्**[4] अर्थात् परमेश्वर के द्वारा पृथिवी पर मनुष्य के कल्याण हेतु वृक्ष एवं वनस्पतियों की उत्पत्ति का वर्णन प्राप्त होता है।

वनस्पतियों के प्रकार से संबन्धित उल्लेख अमरकोश में भी प्राप्त होता है - **वानस्पतयः फलैः पुष्पात्तैरपुष्पाद्वनस्पतिः। ओषधयः फलपाकान्ताः।**[5]

वेदों में भी वनस्पतियों का प्रयोग हवि के रूप में उसका वर्णन प्राप्त होता है – **देवो वनस्पतिर्जुषतां हविर्होतर्यज**[6] **मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा।**[7]

अर्थात् प्राचीन काल से ही औषधियों के प्रयोग एवं संरक्षण तथा यागादि में हवि के रूप में अर्चन की परंपरा का उल्लेख वेदों में प्राप्त होता है। वेदों में वर्णित यक्ष्मा नामक प्रबल रोग

---

[1] शुक्लयजुर्वेद संहिता १६.१७ - १८

[2] अथर्ववेद ४.२०.२

[3] तैत्तिरीयब्राह्मण ३.३.३.५

[4] ऋग्वेद १०.१०१.११

[5] अमरकोष २.४.६

[6] शुक्लयजुर्वेद संहिता २१.४६

[7] शुक्लयजुर्वेद संहिता २२ .२८

उल्लेख प्राप्त होता है – **अयक्ष्मा**[1] अर्थात् यक्ष्मा नामक रोग से वह रहित हो। इस रोग के उपचार के लिये औषधियों के प्रयोग का वर्णन भी हमें वेदों से प्राप्त होता है -

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः।
ततो यक्ष्मं विवाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव॥[2]

उपरोक्त मन्त्र में कहा गया है कि हे औषधियों आप जिस रोगी के शरीर में तुम उसके अंग प्रत्यङ्ग में प्रसारित होती हो , आप उस – उस स्थान से यक्ष्मा नामक रोग को विनिष्ट करके उस मनुष्य को आरोग्य प्रदान करों। **साकं यक्ष्म प्रपत चाषेण**[3] अर्थात् हे यक्ष्मा रोग औषधियों के प्रयोग से तुम मेरे शरीर से नष्ट हो जाओं। औषधियों से रोग निवारण का उल्लेख उपरोक्त मन्त्र में प्राप्त होता है –

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्प्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वं हसः॥[4]

अर्थात् – वह औषधि जो फल देने वाली है , एवं जो फल नही देती है। तथा जो बिना पुष्पों से युक्त है या पुष्प युक्त है। वह सभी औषधियां बृहस्पतिदेव के द्वारा उत्पन्न की गई है, वे सभी औषधियां मुझे रोगों से शीघ्रमुक्त करें। हमें वेदों में औषधियों के प्रयोग करने के पूर्व उनके खनन करके के विषय मे उपरोक्त मन्त्र में वर्णन मिलता है –

मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥[5]

अर्थात् हे औषधियों ! मै आपको रोग के उपचारार्थ आपका खनन कर रहा हू और मेरे द्वारा खनन करने के पश्चात् आप नष्ट मत होता और आपके प्रभाव से मै जिस रोग के उपचार के लिये आपका प्रयोग करूं वह शीध्र समाप्त हो एवं द्विपाद – मनुष्य चतुष्पाद – पशुओं की रक्षा करों। इसी क्रम में उपरोक्त मन्त्र में उल्लेख प्राप्त होता है –

दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।
अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरो हतात् ॥[6]

अर्थात् हे औषधियों ! मै जिस कार्य हेतु आपका खनन कर रहा हू। एवं जिस व्यक्ति के

---

[1] शुक्लयजुर्वेद संहिता १.१
[2] शुक्लयजुर्वेद संहिता १२.८६
[3] शुक्लयजुर्वेद संहिता १२.८७
[4] शुक्लयजुर्वेद संहिता १२.८९
[5] शुक्लयजुर्वेद संहिता १२.९५
[6] शुक्लयजुर्वेद संहिता १२. १००

रोग के निवारण के लिये आपका प्रयोग कर रहा हु वह दीर्घायु को प्राप्त करें। तथा मेरे खनन करने के पश्चात् हे औषधि आपकी भी आयु में वृद्धि हो जिससे हम मनुष्यों को आपके द्वारा अनादेकाल पर्यन्त स्वास्थ्य लाभ प्राप्त हो। इस प्रकार से प्राचीन काल से ही औषधियों के प्रयोग करने के पूर्व प्रार्थना का उल्लेख वेदों के द्वारा हमें प्राप्त होता रहा है।

उपरोक्त शोधपत्र में मानव कल्याण के लिये वेदों में वर्णित औषधियों के प्रयोग का वर्णन करने का प्रयास किया गया है। जैसे कि हम जानते है कि मानव जीवन प्रायः १०० वर्ष का होता है । इस जीवन में मनुष्य अनेक प्रकार के दुःख पीडा आदि का सामना करता है। रोगादि से ग्रसित हो जाता है परन्तु वह औषधियों के प्रयोग से अपने शारीरिक मानसिक कष्टों के मुक्त होकर उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकता है। जैसे कि महाकवि कालिदास कहते है कि - **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्** ।[1] अर्थात् जब यह शरीर स्वस्थ्य होगा तब ही व्यक्ति मानसिक शान्ति को प्राप्त कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. चरक संहिता
2. निरुक्तम्
3. मैत्रायणीसंहिता
4. शतपथ ब्राह्मण
5. शुक्लयजुर्वेद संहिता
6. श्रीमद्भगवतगीता
7. अथर्ववेद
8. तैत्तिरीयब्राह्मण
9. ऋग्वेद
10. अमरकोष
11. कुमारसंभवम्

❒

[1] कुमारसंभवम् ५.३३

आहार एवं पोषण

डॉ० पुष्पा कुमारी*

परिचय :–

भोजन हमारे दैनिक जीवन का एक अनिवार्य अंग है जिसके द्वारा शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यों को पूरा किया जाता हैं शरीर को कार्य करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। शरीर को ऊर्जा प्रदान करने वाले भोज्य पदार्थ कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा प्रोटीन है। उत्तम स्वास्थ्य के लिए पौष्टिक एवं संतुलित भोजन की आवश्यकता होती है। प्रोटीन जल तथा खनिज लवण शरीर की वृद्धि एवं मरम्मत का कार्य भी करते हैं।

भोजन के शारीरिक कार्य

भोजन के शारीरिक कार्य को चार वर्गों में बाँटा गया है :–

A ऊर्जा प्रदान करना :–

ऊर्जा भोजन में उपस्थित पौष्टिक तत्वों के माध्यम से प्राप्त होती है। शारीरिक क्रियाएं दो प्रकार की होती है। वाह्य शारीरिक क्रियाएँ तथा आंतरिक शारीरिक क्रियाएँ वस्त्र, घोल, सीढ़ी, चढ़ना, चलना आदि। आंतरिक शारीरिक क्रियाओं में श्वसन तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र, उत्सर्जन तथा पाचन तंत्र आती है। शरीर को ऊर्जा प्रदान करने का कार्य निम्नलिखित पौष्टिक तत्व करते हैं।

1) कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) – कार्बोहाइड्रेट हमें स्टार्च तथा शर्करा दोनो पदार्थों से प्राप्त होता है। अनाज जैसे– गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा हमें स्टार्च प्रदान करते हैं तथा शर्करा, ग्लूकोज, शक्कर, गुड़ तथा शहद से प्राप्त होते हैं। जिसमें 4 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।

2) प्रोटीन (Protein) – जब शरीर को पर्याप्त रूप से कार्बोहाइड्रेट प्राप्त नहीं होता है तो प्रोटीन ऊर्जा प्रदान करने का कार्य करने लगता है। मांस, मछली, दूध, अण्डा तथा दाले, फलियाँ एवं सोयाबीन से प्रोटीन होते हैं।

प्रोटीन निम्न स्थिति में ऊर्जा देने का कार्य करती है।

(i) जब शरीर में प्रोटीन की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो।

(ii) जब शरीर में कार्बोहाइड्रेट की कमी हो।

(iii) जब प्रोटीन निम्न कोटि की हो। एक ग्राम प्रोटीन जलकर 4 कैलोरी ऊर्जा प्रदान करती है।

3) वसा (Fats) – वसा से सबसे अधिक मात्रा में ऊर्जा मिलती है। एक ग्राम वसा 9 कैलोरी ऊर्जा देती है।

4) तन्तुओं का निर्माण करना– जीवन काल में तन्तुओं का निर्माण होता रहता है।

---

* पूर्णियाँ।

कार्य करने के लिए कुछ तन्तुओं की क्षति रहती है। इन तन्तुओं की मरम्मत का कार्य प्रोटीन करती है। शारीरिक वृद्धि एवं विकास के लिए प्रोटीन की आवश्यकता होती है।

हमारे शरीर में तन्तुओं का निर्माण निम्नलिखित पौष्टिक करते हैं।

(1) प्रोटीन :– प्रोटीन वह पौष्टिक तत्व है जो नए ऊतकों का निर्माण करते हैं, तथा टूटे–फूटे ऊतकों की मरम्मत करता है। प्रोटीन हमें मांस, मछली, अण्डा, दूध से प्राप्त होती है जबकि निम्न कोटि की प्रोटीन हमें दालों, फलियों तथा सोयाबीन से प्राप्त होती है।

(2) खनिज–लवण :– खनिज, लवण नए तन्तुओं का निर्माण करते हैं। कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा तथा आयोडीन खनिज लवणों में आते हैं जो दांत तथा रक्त निर्माण में योगदान देते हैं। खनिज लवण दूध, दही, हरी सब्जियों से प्राप्त होता है।

स्वास्थ्य मानव की अनमोल निधि है। एक स्वस्थ व्यक्ति की अपनी तथा अपने सर्वांगीण उन्नति कर सकता है। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वास्थ्य आवश्यक है। स्वस्थ रहने के लिए भोजन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भोजन में शारीरिक मनोवैज्ञानिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्रिया करने की योग्यता होती है। उत्तम स्वास्थ्य के लिए उत्तम पौष्टिक भोजन आवश्यक होता है। पोषण एक विज्ञान की प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत सभी आयु वर्गों के स्वास्थ्य एवं रोग की स्थिति में भोजन के अनुभवों को देखा जा सकता है। भोजन ठोस या द्रव रूप में हो सकता है तथा पौष्टिकता के लिए उसे खाना आवश्यक है।

मानव जीवन में स्वास्थ्य का सर्वोपरि स्थान है। स्वस्थ व्यक्ति ही संसार के समस्त सुखों का उपभोग कर सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति विशेष की पूर्ण शारीरिक मानसिक व सामाजिक निरोगता की स्थिति है। केवल रोग की अनुपस्थिति नहीं है। स्वास्थ्य से अभिप्राय रोग रहित शरीर ही नहीं है, बल्कि व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक रूप से स्वस्थ रहने से है। स्वास्थ्य जीवन का विशेष गुण है जिसके अनुसार व्यक्ति सुखी जीवन व्यतीत करता है तथा शारीरिक कार्य करने में समर्थ होता है। शारीरिक रूप से स्वस्थ होते हुए भी यदि कोई व्यक्ति मानसिक रूप से असंतुलित है तो उसे पूर्ण स्वस्थ नहीं कहा जा सकता है।

अच्छे स्वास्थ्य एवं स्वस्थ व्यक्ति के प्रमुख लक्षण :–

1) शरीर की मांसपेशियों का सुविकसित तथा सुसंगठित होता है।
2) व्यक्ति का शारीरिक भार उसकी लंबाई के अनुपात में होना।
3) आँखों की स्वभाविक चमक होना।
4) शरीर का तापमान 98.4F° होना।
5) संवेगात्मक रूप से स्थिर होना।
6) मानसिक रूप से स्वस्थ होना।
7) शरीर के समस्त संस्थान पाचन, परिसंचरण, श्वसन तथा उत्सर्जन का सुचारू रूप से क्रियाशील होना।

स्वास्थ्य के आयाम :–

शारीरिक स्वास्थ्य से अभिप्राय शरीर के समस्त अंगों का सुचारू पूर्ण ढंग से कार्य करना है। अत्यधिक चिंता, तनाव, कुण्ठा से मानसिक खराब हो जाता है। सामाजिक से ही व्यक्ति समूह में रहने योग्य बनता है तथा उसमें लचीलापन आता है जिससे प्रत्येक स्थिति में वह रह सकता है। आध्यात्मिक से तात्पर्य धार्मिक कट्टरता से नहीं है बल्कि हमारे देश के संदर्भ में धर्म निरपेक्षता से है जिससे एक देश में रहने वाले विभिन्न धर्मों के बीच अच्छा सामंजस्य बना रहे और देश प्रगति कर सके।

आहार का अर्थ एवं परिभाषा :–

भोजन वह पदार्थ जिससे शरीर का पालन–पोषण होता है। कोई भी ऐसा पदार्थ जिसके खाने से शरीर में कार्य करने की शक्ति आती है, उसकी क्षतिपूर्ति और वृद्धि होती है तथा मानसिक संतुष्टि होती है, भोजन कहलाता है।

संतुलित आहार वह आहार है जिसमें सभी पोषक तथ्व उतनी मात्रा तथा अनुपात में हों जिनमें ऊर्जा, अमीनों एसिड, विटामिन्स, खनिज लवण, वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा अन्य तत्वों की आवश्यकता शरीर की जैविक क्रियाओं तथा स्वास्थ्य को संतुलित बनाए रखने के लिए सही अनुपात में मिल जाए तथा साथ ही पोषक तत्वों का बहुत बड़ा–सा भाग शरीर में एकत्रित हो सके जिससे भूखा रहने पर शरीर को कुछ समय तक चलाया जा सके।

पोषण का अर्थ एवं परिभाषा :–

पोषण बहु क्रिया है जिसके द्वारा ग्रहण किया गया भोजन शरीर में सूक्ष्म इकाई में परिवर्तित होता है व उपयोगी बनकर कार्य को संपादित करता है।

धमार्थकाममोक्षाणामं आरोग्यं मूलभुत्तभम्

महर्षि चरक ने लिखा है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों का मूल आधार स्वास्थ्य ही है। यह बात अपने में नितांत सत्य है। मानव जीवन की सफलता धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करने में निहित है, परन्तु सबकी आधारशिला मनुष्य का स्वास्थ्य है उसका निरोग जीवन है। रूग्ण और अस्वस्थ मनुष्य न धर्मचिंतन कर सकता है, न अर्थोपार्जन कर सकता है न काम प्राप्ति कर सकता है, और न ही मानव–जीवन के सबसे बड़े स्वार्थ मोक्ष की ही उपलब्धि कर सकता है।

शरीरमाद्यम खलु धर्मसाधनम्।''

अस्वस्थ व्यक्ति न अपना कल्याण कर सकता है न अपने परिवार का, न अपने समाज की उन्नति कर सकता है और न देश की। जिस देश के व्यक्ति अस्वस्थ और अशक्त होते हैं वह देश न आर्थिक उन्नति कर सकता है और न सामाजिक। सम्य और अच्छा नागरिक वही हो सकता है जो तन, मन धन से देशभक्त हो और मानसिक और आत्मिक स्थिति में उन्नत हो। इन दोनों ही स्थिति में शरीर का स्थान प्रथम है। अस्वस्थ विद्यार्थी कभी श्रेष्ठ विद्यार्थी नहीं हो सकता अस्वस्थ अध्यापक कभी आदर्श अध्यापक नहीं हो सकता। अस्वस्थ वकील कभी अच्छी बहस नहीं कर सकता।

पोषण की दो स्थितियां है :–

(1) सुपोषण (Good Nutrition) :– सुपोषण का मतलब होता है कि व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक रूप से संतुलित रहे तथा उसकी कार्य क्षमता उसकी उम्र के अनुसार हो। जब भोजन द्वारा मनुष्य को अपनी आवश्यकतानुसार सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में मिलते हैं तो उस स्थिति को सुपोषण अथवा उत्तम स्थिति की स्थिति कहते हैं। उत्तम पोषित व्यक्ति ने निम्नलिखित लक्षण है :–

1) गहरी बिना टूटने वाली निद्रा
2) व्यक्ति का भार, आकार तथा अनुपात सामान्य होता है।
3) व्यक्ति के बाल चिकने, चमकीले तथा स्वस्थ होते हैं।
4) व्यक्ति की आंखे चमकीले, आशाबान तथा स्वस्थ होती है।
5) व्यक्ति सदैव प्रसन्ताचित तथा ऊर्जावान होता है।
6) व्यक्ति किसी भी कार्य को एकाग्रचित तथा उत्साह पूर्वक करता है।
7) व्यक्ति में पर्याप्त मात्रा में रोग प्रतिरोधक क्षमता पायी जाती है।

(2) कुपोषण (Malnutrition) :– कुपोषण का अभिप्राय है अत्यवस्थित पोषण प्रापत होना। जब व्यक्ति को उसकी शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार उपर्युक्त मात्रा में सभी पौष्टिक तत्व प्राप्त नहीं होते हैं तो आवश्यकता से कम मात्रा में मिलते हें।

कुपोषण की तीन स्थितियाँ है :–

अपर्याप्त पोषण :– अपर्याप्त पोषण में भोज्य तत्व मात्रा एवं गुणों की दृष्टि से शरीर की आवश्यकता के अनुपात में यथेष्ट नहीं होते तथाउनमें से किसी एक की भी न्यूनता होती है।

अपर्याप्त पोषण के लक्षण :–

1) शरीर का भार कम होना
2) शरीर में रक्त की कमी होना
3) त्वचा शुष्क खुरदरी एवं झुर्रीदार हो जाना
4) शीघ्रतापूर्वक थकान हो जाना
5) दांत जनित रोग हो जाना तथा दांतों का रोगग्रस्त हो जाना।
6) रतौंधी तथा पोषण हीनता अन्य रोग हो जाना।

भारत में कई स्थानों पर किए सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ कि निर्धन जनसंख्या के भोजन में प्रोटीन, खनिज लवण तथा विटामिन हीं नहीं बल्कि उर्ज उत्पादक भोज्य पदार्थों की भी कमी पायी जाती है।

अत्यधिक पोषण :– कभी–कभी व्यक्ति आवश्यकता से अधिक पोषण ग्रहण कर लेता है उससे भी उसका स्वास्थ्य खराब हो जाता है।

असंतुलन (Imbalance) :– पोषण की असंतुलन स्थिति उस स्थिति को कहते हैं। जब शरीर के समस्त पौष्टिक तत्व संतुलित अवस्था में प्राप्त नहीं हो पाते हैं। किसी भी

पोष्टिक तत्व की कमी या अधिकता शरीर को असंतुलित कर देती है। जैसे– वसा एवं कार्बोहाइड्रेट की अधिकता मोटापा उत्पन्न कर देती है। आयोडीन की कमी से घेंघा तथा विटामीन 'सी' की कमी से स्कर्वी रोग हो जाता है।

आहार का पाचन (Digestion of food) :– आहार का पाचन एक जटिल प्रक्रिया है। पाचन की प्रक्रिया भुख से प्रारंभ होती है तथा फिर आमाशय ग्रहणी या छोटी आंत के माध्यम से पूर्ण होती है।

यांत्रिक पक्ष :–

पाचन के यांत्रिक पक्ष में वे सभी कार्य आ जाते हैं जो कोमल बनाते हैं तथा लुग्दी के रूप में परिवर्तित करते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कुछ कार्य व्यक्ति द्वारा ग्रहण करने से पहले ही किए जाते है तथा अन्य कार्य शरीर के पाचन तंत्र द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। खाद्य सामग्री को काटना, कूटना, पीसना, भिगोना या घोलना तथा पाक–क्रिया पकाना आदि क्रियाएं वास्तव में आहार का स्वादिष्ट तथा सुपाच्य बनाने हेतु क्रिया आहार के पाचन का यांत्रिक पक्ष का ही भाग है। दांतो द्वारा आहार की चवा–चबाकर एक तरह की लुग्दी का रूप दे दिया जाता है। पाचन की प्रक्रिया के इस पक्ष के अन्तर्गत विभिन्न रसों का विशेष योगदान है। हमारे शरीर में विभिन्न प्रक्रिया की ग्रंथियाँ होती है जो पाचन तंत्र में विशेष योगदान देती है। इन रसों में अनेक एन्जाइम तथा पाचन रस पाये जाते हैं। ये सभी एन्जाइम एवं रस शीर में उपस्थित भोजन से अधिक जटिल रासायनिक क्रियाएं करते हैं। इन सभी रासायनिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप आहार क्रमशः सरल तथा घुलित अवस्था में आ जाता है। आहार का यह रूपांतरण ही वास्तव में आहार का पाचन है।

शारीरिक विकास हेतु ग्रहण किए गए आहार का न केवल पाचन आवश्यक है बल्कि अवशोषण भी अत्यंत आवश्यक है। जब आहार के पाचन की प्रक्रिया समाप्त होने लगती है तब अवशोषण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। शरीर के विकास के लिए आहार के पौष्टिक तत्वों का अवशोषण होता है। पोषक तत्वों का भोज्य सामग्री में विद्यमान भोज्य तत्वों को शरीर द्वारा ग्रहण कर लेना ही आहार का अवशोषण है। अवशोषण प्रक्रिया के फलस्वरूप विभिन्न पौष्टिक तत्व लसीका तथा रक्त के माध्यम से शरीर के सभी अंगों में पहुंच जाते हैं। शरीर में अवशोषण कार्य प्रमुख रूप से छोटी आंत द्वारा ही किया जाता है। छोटी आंत में असंख्य सूक्ष्मांकुर विद्यमान होते हैं। पौष्टिक तत्वों का अवशोषण करके लसीका संस्थान उसे रक्त में पहुँच देता है। इस प्रकार पोषक तत्वों के अवशोषण से शरीर का पोषण होता है। भोजन से प्राप्त होने वाले पौष्टिक तत्वों के द्वारा ही विभिन्न बीमारियों को रोका जा सकता है तथा जीवन आयु में वृद्धि की जा सकती है और सुविकसित शारीरिक ढ़ाचा प्राप्त किया जा सकता है। आवश्यकता से कम होते हैं या अधिक मिलते हैं तो उसे कुपोषण कहते हैं। भारत के सामान्य नागरिकों की भांति पुरुषों के समान कर्तव्यों और अधिकारों का निर्वाह कर सकती है। भारतीय संविधान में बालिकाओं को पुरूषों के समान ही अधिकार प्राप्त है। किसी भी व्यक्ति को नौकर या गुलाम बनाकर नहीं रखा जा सकता तथा गुलामी प्रत्येक दृष्टिकोण से निन्दनीय है। अतः उसे तत्काल बंद किया जाए। सरकार भी अब नारी शिक्षा के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं करती आ रही है। लड़कियों को शिक्षा प्राप्त

करने के लिए कभी–कभी काफी दूर जाना पड़ता है, जिससे उनके शिक्षा प्राप्त करने के उत्साह में कमी आ जाती है। स्वतंत्रता पूर्व स्त्री शिक्षा के संबंध में विभिन्न आयोगों एंव समितियों में सर्वप्रामि 'वुड के' घोषणा–पत्र में यह संस्तुति की गयी थी कि स्त्री शिक्षा के लिए उदारतापूर्वक सहायता अनुदान देकर प्रोत्साहित किया जाए। जीवन को शांतिप्रिय बनाने के लिए प्रदूषण मुक्त माहौल होना चाहिए। भविष्य को ध्यान में रखते हुए नए जेनरेशन के लिए आरामदायक जीवन यापन करना चाहिए। दुनिया की प्रसिद्ध सभ्यताओं के उद्भव, विकास एवं अवकास के लिए भी जलीय आपदाओं को ही उत्तरदायी माना जाता है। प्राकृतिक बदलावों के साथ मानव भी बराबर का सहभागी रहा है। प्राकृतिक बदलाव के कारन ही रहन–सहन, खाना–पीना में परेशानी आ रही है। शरीर के बनावट के अनुसार ही पाचन क्रिया कार्य करती है। शरीर एवं बुद्धि के विकास में आहार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जीवन में वास्तविक सुख और शक्ति आध्यात्मिक शक्ति से ही सम्भव है। शारीरिक विकास व्यक्ति को नैतिक और संयमी बनाने में सहायक होता है। आध्यात्मिक और भौतिक सभी प्रकार की उपलब्धियां शरीर से ही प्राप्त होता है। देश का निर्माण देश की उन्नति, बाह्य और आंतरिक शत्रुओं से रक्षा, देश का समृद्धिशाली होना वहां के नागरिकों पर आधारित होता है। सभ्य और अच्छा नागरिक वहीं हो सकता है। जो तन, मन, धन से देश भक्त हो और मानसिक और आत्मिक स्थिति से उन्नत हो। इन दोनों की क्रमों से शरीर का स्थान प्रथम ळें

''धमार्थकाममोक्षाणामं आरोग्यं मूलभुत्तमम्''

महर्षि चरक ने लिखा है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चानों का मूल आहार स्वास्थ्य ही है। यह बात अपने आप में नितांत सत्य है। एक दरिद्र, भूखा मनुष्य तो भौतिकवादी होता ही है, क्योंकि उसके लिए रोटी ही भगवान होती है। प्राण चिकित्सक द्वारा आज्ञा चक्र का मनोपचार करके और आज्ञाचक्र को बड़ा एवं सक्रिय करके अवसादी व्यक्ति की इच्छा शक्ति में वृद्धि की जा सकती है। इच्छाशक्ति में वृद्धि हो जाने पर विषादी का अपने मन पर नियंत्रण हो जाता है। चेतना के रूप में तो मस्तिष्क अथवा मन का कोई स्वरूप नहीं है कोई आकार नहीं है। उस समय देश में निजी पूंजी को विकसित होने के लिए राज्य प्रायोजित सार्वजनिक क्षेत्र की सख्त जरूरत थी। निजी पूंजी अपने स्वार्थ के लिए पूरी तरह सार्वजनिक क्षेत्र पर आधारित थी। सरकार का विश्वास बन चुका है कि शिक्षा और स्वास्थ्य निजी क्षेत्र के हवाले कर दिया जाना चाहिए। भोजन के पूरे शौकीन खासकर मछली तो सेहत के लिए बहुत ही फायदेमंद है। किसी बीमारी में तो डॉ0 भी मछली खाने की सलाह देते हैं।

रामलीला और रासलीला शुद्ध धार्मिक कथानकों को लेकर चलती है। इनके मूल में भक्ति भावना का गहरा फुट है। उस समय से आज तक उनके भोजन का ख्याल रखा जाता है कि उनके आवभगत में कोई दिक्कत न हो। धीरे–धीरे इनकी मंडलियों में भी विकृतियां आयी क्योंकि उनकी पेशेवर मनोवृति के लिए जनता का सस्ता मनोरंजन करना अनिवार्य हो गया था इसके लिए उनके विशेष आहार का भी ख्याल रखा जाता था।

योगाभ्यास के अनेक लाभ स्वामी सामदेव ने बतलाये, जिनमें हृदय, फेफड़े, मस्तिष्क आदि से संबंधित रोग, साथ ही मोटापा, मधुमेह, माइग्रंन, रक्तचाप जैसे कई

साध्य असाध्य रोग दूर हो सकते हैं।

संदर्भ–

1) College Botany By B.P. Pandey S Chand Publication पृ०– 283
2) पर्यावरण – डॉ0 नर्मदेश्वर प्रसाद, पृ०–138, 139
3) Anctomy and Physiology for Paramedical Students- Pinki Rajendra Wadia - पृ०–48
4) शिक्षा और समाज– आचार्य रामविलास– पृ०–23, 36, 74
5) राजहंस– डॉ0 आर0एन0गौड़– पृ०– 126
6) गाँव से शहर जाती सड़क– केदार नाथ पाण्डेय– पृ०–80
7) हमारे पथ प्रदर्शक– ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम– अरूण कुमार तिवारी– पृ०–48
8) सबके स्वामी जी– रामकृष्ण मिशन इन्स्टीट्यूट गोलपार्क कलकत्ता– पृ०–72

❐

महाकवि कालिदास के नाटकों में रमणीयता के प्रतिपादक तत्त्व

डॉ. रंगनाथ*

प्रकृति की रमणीयता एवं सरसता का अत्यन्त मनोरम वर्णन महाकवि कालिदास के नाटकों में प्राप्त होता है। साथ ही महाकवि ने अपने नाटकों में मानवीय सौंदर्य का अत्यधिक हृदयावर्जक वर्णन किया है।

महाकवि ने अपने नाटकों में नारी सौंदर्य का ऐसा संस्पर्श वर्णन किया है जो अभिरूपों (विद्वानों) के हृदय रूपी वीणा के सम्पूर्ण तारों को झङ्कृत कर देती है। महाकवि सौंदर्य के इस मिथ्या ज्ञान से पूर्णतः अभिभावित हैं। मानव और प्रकृति के इस भास्वित सौंदर्य को महाकवि ने दैवीय प्रसाद के रूप में स्वीकार किया है, जो रमणीयता प्रकृति के सभी पदार्थों में द्योतित होती है, वैसी ही लावण्यता नारी के शरीरावयव में भी प्रकाशित होती है। जिस प्रकार प्रकृति की यह रमणीयता सम्पूर्ण चराचर जगत को अपनी ओर आकर्षित करती है। उसी प्रकार नारी के शरीरावयव में प्रस्फुटित होने वाली लावण्यता सम्पूर्ण चराचर जगत के हृदय को आकृष्ट कर लेती है।

कालिदास सौंदर्य के इस रहस्य से पूर्णतः परिचित हैं। यही कारण है कि नारी रूप के वर्णन में उनकी दृष्टि प्रकृति-जगत् का अनुसंधान करने लगती है और प्रकृति रूपों के चित्रण में वह नारी रूप से अनुप्रमाणित हो जाती है। शकुन्तला के रूपश्री का मूल्यांकन करते हुए महाकवि ने लिखा है-

अधरः किसलयकोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम्।।[1]

अर्थात् शकुन्तला के लाल होंठ लता की कोपलों के समान सुन्दर हैं, दोनों भुजायें वृक्ष की कोमल शाखाओं के समान जान पड़ती है और इसके अंगों में खिला हुआ नया यौवन लुभावने फूल के समान सुशोभित होता है। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में वसन्त श्री के नव स्फुटित उल्लास का कथन करते हुए लिखा है-

मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये मधुश्रीः स्थिता।[2]

अर्थात् हे सखे! वसन्त श्री मुग्धा तथा युवती के मध्यवाली स्थिति में शोभा दे रही है। इस प्रकार महाकवि को यह अवश्य ज्ञात है कि मानव शरीर को आलोकित करने वाली प्रभा उसी व्यापक प्रभा की अंशीभूत है, जिससे विश्व के सम्पूर्ण पदार्थ चमक रहे हैं, यद्यपि वह उतना ही

* संस्कृत विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी।

क्षणभंगुर है जितना आकर्षक भी।

महाकवि नारी-पुरुष की कल्पना करते समय सौंदर्य समुच्चय का बारम्बार वर्णन करते हैं। सम्पूर्ण संसार के समस्त पदार्थों में सौंदर्य विद्यमान है और इनमें से एक भी पदार्थ अपनी सुन्दरता से हम दर्शकों को चकित एवं आकर्षित कर सकता है। महाकवि की सौंदर्य कल्पना महाकवि की स्वयं की धरोहर है तथा सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की मानसिक कल्पना की सर्वाधिक श्रेष्ठ प्रसूति है। महाकवि ने शकुन्तला की रूप-सम्पदा का वर्णन करते हुए लिखा है-

चित्ते निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।[3]

महाकवि कालिदास ने स्त्री सौंदर्य को एक विशिष्ट परिवेश में अवलोकित तथा चित्रित किया है। नवयौवन के प्रति उनका सहज आकर्षण देखते ही बनता है। महाकवि की दृष्टि में नारी सौंदर्य में वीर्यक्षोभ की क्षमता होनी चाहिए। इसलिए महाकवि ने अपने नायिकाओं के सौंदर्य का वीर्यक्षोभाकारित्व अत्यन्त स्पष्ट भाव से निरूपित किया है। उर्वशी के सौन्दर्य की सृष्टि के लिए महाकवि ने कान्ति के दाता चन्द्रमा, श्रृंगार गार रस के देवता कामदेव की क्षमता को ही स्वीकार किया है और वेदानुशीलन से जड़ीभूत तथा विषयोपभोग से पराङ्मुख रहने वाले वृद्ध ऋषि की एतादृश रूप रचना की शक्ति का स्पष्ट प्रत्याख्यान करते हुए लिखा है-

अस्याः सर्गविधौप्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
श्रृंगार ङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजड़ः कथं नु विषयाव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनेः।।[4]

अर्थात् महाकवि की रूपविजयिणी दृष्टि-सौंदर्य विषय प्रेरक और विषय प्रेरित दोनों है।

महाकवि की सौन्दर्य दर्शिनी दृष्टि साधारण है, परन्तु मन को विस्मय में डाल देने वाले रूप के उद्भव की कल्पना का विस्मय में डाल देने वाले रूप के उद्भव की कल्पना का प्रतिवाद करती है। महाकवि के रूपसौंदर्य में राजा अथवा देवता अथवा ऋषि अथवा अप्सराओं का सौंदर्य प्रतिस्फुटित होता है। सामान्य मनुष्य के रजवीर्य में प्रभा-तरल रूपज्योति के प्रसव की क्षमता असम्भव है। शकुन्तला के विषय में महाकवि ने अपने इसी मन्तव्य को व्यक्त करते हुए लिखा है-

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरूदिति वसुधातलात्।।[5]

अर्थात् वसुधातल से उत्कृष्ट सौन्दर्य की ज्योति प्रतिस्फुटित नहीं हो सकती। महाकवि सरल, निरलंकृत सौंदर्य का उपासक है। शकुन्तला तथा उसकी सखियों के मधुर दर्शन से चमत्कृत

होकर दुष्यन्त अत्यन्त विस्मय से स्वीकार करता है कि तपोवन में रहने वाली इन सहज सुन्दरियों की तुलना में राजप्रासाद में पलने वाली रम्य-अङ्गनायें कुछ भी नहीं हैं-

दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः।[6]

वही सौंदर्य, सौन्दर्य कहलाता जो सहज ही चमकता हो जो **''अक्लिष्कान्ति''**[7] हो। यह रूप सौंदर्य सभी अवस्थाओं में अनवद्य रहता है। सभी स्थितियों में शोभा का पोषण करता है-

अहो सर्वास्ववस्थास्वनवद्यता रूपस्य।[8]

अहो सर्वास्ववस्थासु चारुतां शोभां पुष्यति।[9]

समस्त अवस्थाओं में चेष्टाओं की रमणीयता माधुर्य कही गयी है-

''सर्वावस्थाविशेषेषु माधुर्ये रमणीयता।''[10]

जिस रूप में यह गुण वर्तमान रह जाता है, वह मधुर कहलाता है। शकुन्तला की आकृति ऐसी ही है। महाकवि के अनुसार- कमल का फूल शैवालजाल से अनुविद्ध होकर भी रमणीय बना रहता है, चन्द्रमा का धब्बा मलिन होकर भी शोभा का विस्तार करता है और उसी तरह तन्वी शकुन्तला वल्कलवेष्टिता होने पर भी मनोज्ञ बन गयी है-

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।[11]

भारतीय सौंदर्य अवधारणा ने आभूषणों को अवश्य नहीं माना है परन्तु रूप के सहज गुणों के आवर्जन को महत्व दिया है। महाकवि ने आभरणों की उपयोगिता स्वीकार करते हुए उन्हें रूप के निखार के लिए आवश्यक नहीं माना है। उर्वशी के रूप सौंदर्य वर्णन में अलंकारों का भूष्य-भाव ऐसे ही विवक्षित है-

आभारणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनाविशेषः।
उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः।।[12]

अर्थात् उसका शरीर आभरणों का आभरण है, श्रृंगार की सामग्रियों का भी शृंगार है और उपमा की वस्तुओं की भी उससे उपमा दी जा सकती है।

सौंदर्याधायक तत्त्वों में महाकवि कालिदास कान्ति, दीप्ति एवं माधुर्य के अतिरिक्त लावण्य से भी प्रभावित हैं। मोतियों में छाया की आन्तरिक तरलता के समान अंगों में चमकने वाली वस्तु को लावण्य कहा गया है-

मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं दिहोच्यते।।[13]

यह लावण्य ही क्षण-प्रतिक्षण नव्य आभा ग्रहण करता रहता है तथा इसकी पकड़ में बड़े से बड़े कलाकार भी असमर्थ सिद्ध होते हैं। महाकवि ने दुष्यन्त के माध्यम से लावण्य की उसी अग्राहयता की विवृति की है, उसे रेखाओं में बन्दी बनाकर चित्र में उतारा नहीं जा सकता है-

यद्यत्साधु न चित्रे स्यात् क्रियते तत्तदन्यथा।

तथापि तस्या लावण्यं रेखया किञ्चिदन्वितम्।।[14]

नवस्फुटित यौवन की श्री आपके अंगों से विच्छुरित हो रही है तो तपस्या का अब और फल क्या हो सकता है? अर्थात् त्रिलोक सौंदर्य एवं नववयस तप की प्रसूति है-

अनाघ्रातं पुष्पम किसलयमलूनं[15] के प्रसिद्ध श्लोक में **'अखण्डं पुण्यानां फलं'।**[16] का कथन करके नाटककार ने रूप सौन्दर्य को पूर्व जन्म के सञ्चित पुण्यों का परिणाम बताया है।

महाकवि ने यह माना है कि आकृति का सौन्दर्य अन्तरात्मा के सौन्दर्य से समन्वित होता है-

न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति।[17]

राजानक रूय्यक ने दस शोभा विधायी धर्मों में प्रथम को 'रूप' कहा है और अन्तिम को 'सौभाग्य'। सुभग उस व्यक्ति को कहते हैं जिसके भीतर प्रकृत्या वह गुण रहता है, जिससे सहृदय व्यक्ति स्वयमेव उसी प्रकार आकृष्ट होते हैं जिस प्रकार पुष्प के परिमल से भौंरे। ऐसे ही सुभग व्यक्ति के आन्तरिक वशीकरण धर्म को सौभाग्य कहते हैं। शकुन्तला के प्रथम प्रेम का प्रत्याख्यान उसी मङ्गल निरपेक्ष यौन आकर्षण का प्रतिवाद है।

बिना तप के ऐसा सौभाग्य ऐसा प्रेम ऐसा पति मिलना असम्भव है। कठोर तप से प्राप्त वह सौभाग्य धर्म जो विशुद्ध प्रेम द्वारा व्यञ्जित होता है। यही महाकवि के नाटकों में वर्णित रमणीयता का परम लक्ष्य है।

संदर्भ -

1. अभिज्ञानशाकुन्तल- 1.20
2. विक्रमोर्वशीय- 2.7
3. अभिज्ञानशाकुन्तल- 2.9
4. विक्रमोर्वशीय- 1.10
5. अभिज्ञानशाकुन्तल- 1.24
6. अभिज्ञानशाकुन्तल- 1.17
7. अभिज्ञानशाकुन्तल- 5.19
8. अभिज्ञानशाकुन्तल-
9. माल. - 2 अंक
10. सा.द. - 3.97
11. अभिज्ञानशाकुन्तल- 1.19
12. विक्रमोर्वशीय- 2.3
13. उज्ज्वलनीलमणि
14. अभिज्ञानशाकुन्तल- 6.14
15. अभिज्ञानशाकुन्तल- 2.10
16. अभिज्ञानशाकुन्तल- 2.10
17. अभिज्ञानशाकुन्तल- 2 अंक

❐

काव्य-भाषा और नागार्जुन की सामाजिक जीवन की कविता

डॉ0 नीलम सिंह*

नागार्जुन सामाजिक जीवन की कविता लिखते समय प्रायः व्यंग्य और आक्रोश से युक्त काव्य-भाषा का इस्तेमाल करते हैं।

"यह उन्मत्त प्रदर्शन | शीर्षक कविता में नागार्जुन ने साधन-सम्पन्न वर्ग की शादी के आयोजन और भुखमरी के शिकार लोगों के बीच की विडंबनात्मक स्थिति को विषय बनाया है।

'चाट रहे हैं कुछ प्राणी बाहर जूठन के दोने
चहक रहे हैं अंदर ये लक्ष्मी के पुत्र सलोने
कला गुलाम हुई इनके, कविता पानी भरती है
सौ-सौ की मेहनत इनकी मुसकानों पर मरती है।"[1]

इस कविता में'शादी क्या है' का जवाब कवि स्वयं देता है 'वैभव का है यह उन्मत्त प्रदर्शन इसमें 'कारों के जमघट देखो' जिन पर 'कुबेर के छौने' और 'लक्ष्मी के निजि लाडले' सवार हैं। इनके आगे जनकवि स्वयं के बारे में कहता है- 'हम लगते हैं बौने।'

क्रियाओं और विशेषणों के चमत्कारिक प्रयोग के कारण यह भाषा आकर्षित करती है। ऊपर की उद्धृत पंक्तियों में 'चाट रहे हैं' से 'चहक रहे हैं' को मिलाएँ तो विडम्बना की अभिव्यक्ति प्रभावशाली बन जाती है। 'दोने' और 'सलोने' की गुरुबंदी में सामाजिक विडम्बना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। नागार्जुन के विशेषण भाषा को अचूक बना देते हैं।

सामाजिक जीवन की कविताओं की काव्य-भाषा में भी नागार्जुन की विविधता मौजूद है। प्रायः यह कहा जाता है कि विडम्बनाओं पर व्यंग्य किया गया है। नागार्जुन के यहाँ व्यंग्य अग्रणी भूमिका में है, यह उनकी भाषा का केन्द्रीय स्वभाव है, परन्तु व्यंग्य की कोई तय प्रक्रिया नागार्जुन की काव्य-भाषा में नहीं दिखायी जा सकती। वे अनेक रास्तों से व्यंग्य करते हैं। शब्द की तीसरी शक्ति व्यंजना शक्ति से प्रायः धारदार व्यंग्य किए जाते हैं और सामान्य व्यंग्य प्रायः लक्षणा शक्ति से नागार्जुन शब्द की तीनों शक्तियों का उपयोग व्यंग्य के लिए करने की क्षमता रखते हैं। क्रिया और विशेषण के व्यंग्यात्मक उपयोग पर तो मानो नागार्जुन महारथ हासिल किए हुए हैं।'मन करता है' शीर्षक कविता की काव्य भाषा प्रायः आक्रोश भरा व्यंग्य लिए हुए है-

'मन करता है:

* असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि), DAV पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, वाराणसी, Email- nelulns@gmail.com

नंगा होकर कुछ घंटों तक सागर तट पर मैं खड़ा रहूं

यों भी क्या कपड़ा मिलता है?

धनपतियों की ऐसी लीला"[2]

कवि का आक्रोश है कि 'धनपतियों की लीला' के कारण अभावग्रस्त लोगों की इतनी तादाद है। ऐसी स्थिति में 'जनकवि' क्या करे? वह जनता को रास्ता दिखाता है, विद्रोह का--

****

ओ हालाहल तू कहाँ गया?"[3]

यहाँ भगवान् शंकर की धार्मिक-सांस्कृतिक सत्ता को सामने रखकर जनता को बगावत की प्रेरणा देने वाली भाषा नागार्जुन रच रहे हैं।

नागार्जुन सामाजिक जीवन के एक ही विषय को काव्य-भाषा के एकाधिक रुपों में व्यक्त करते हैं। अकाल एक ऐसा विषय है जिसका सम्बन्ध प्रकृति,सत्ता, समाज, परिवार एवं व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं से है। अकाल से सम्बन्धित नागार्जुन की तीन कविताओं को ध्यान में रखकर काव्य-भाषा की विविधता के विश्लेषण की कोशिश यहाँ की जा रही है।

ये तीन कविताएँ हैं- (i) वह तो था बीमार ! (ii) प्रेत का बयान (iii) अकाल और उसके बाद। इन तीनों कविताओं का विषय है- अकाल शासन और प्रशासन का रुख यही है कि अकाल को तो स्वीकार कर लो ताकि इसके नाम पर धन ख़र्च करने का अधिकार प्राप्त कर लिया जाए, किंतु यह मत स्वीकार करो कि भूख के कारण किसी व्यक्ति की मृत्यु हुई है। मृत्यु हो जाने की स्थिति में सिद्ध कर दो कि बीमारी अथवा अन्य कारणों से मृत्यु हुई है, न कि भूख से। यहाँ सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों की चर्चा प्रासंगिक होगी कि भूख से मृत्यु के लिए राज्य के मुख्य सचिव जिम्मेदार होंगे। नागार्जुन इस तिकड़म पर व्यंग्य करते हैं। एक ही बात को कहते हुए नागार्जुन की भाषा के बहुरंग को देखा जा सकता है।

'वह तो था बीमार " शीर्षक कविता की भाषा छंदोबद्ध है। जिलाधीश, मंत्री, हाकिम और थानेदार की भूमिका स्पष्ट शब्दों में व्यक्त की गयी है। व्यंग्य की स्थिति सामान्य है और प्रायः तुकबंदियों से प्रभाव उत्पन्न हो रहा है--

मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार
लिखवा लेगा घरवालों से-'वह तो था बीमार"
****
****
अंदर से धिक्कार उठेगी, बाहर से हुंकार
मंत्री लेकिन सुना करेंगे अपनी जय-जयकार

****

मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार
लिखवा लेगा घरवालों से- 'वह तो था बीमार"[4]

इस कविता में विषय को पद्यात्मक बनाकर प्रस्तुत किया गया है, काव्य-भाषा की दृष्टि से विशेष सर्जनात्मकता दिखायी नहीं पड़ रही है। इसकी भाषा प्रायः विषय को प्रस्तुत करने के लिए प्रयत्नशील है। कविता में भाषा का यह स्तर प्राथमिक तौर का माना जा सकता है। इसी विषय को भिन्न भाषा-स्तर पर प्रेत का बयान' कविता में उठाया गया है। यहाँ 'प्रेत और यमराज़ की बातचीत के सहारे कथात्मक संवादों के माध्यम से अकाल और सत्ता के विडम्बनात्मक सम्बन्ध पर व्यंग्य किया गया है। वह तो था बीमार" में सत्ता का कथन है कि मरनेवाला था, किंतु 'प्रेत का बयान' में मरने वाले का बयान है कि पेचिश की बीमारी से मरा है, भूख से नहीं। नागार्जुन की यह प्रयास भाषा के प्रभाव को बढ़ा दे रही है--

और और और और और भले
नाना प्रकार की व्याधियाँ हो भारत में
किंतु.....
.....
भूख या क्षुधा नाम हो जिसका
ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको
सावधान महाराज,
नाम नहीं लीजिएगा
हमारे समक्ष फिर कभी भूख का !!'[5]

सरकारी तौर-तरीका यह है कि गरीबी मिटाने के लिए प्रमाणित करते फिरो कि कोई गरीब है ही नहीं।बीमारी मिटाने का तरीका है कि कोई बीमार है ही नहीं; न गरीबी का प्रमाण-पत्र बनने दो न बीमारी का। नागार्जुन इसी सत्तावादी पद्धति का उपहास उड़ा रहे हैं। जनता की स्वीकारोक्ति सत्ता की दोहरी चाल पर व्यंग्य है।

'ओ रे प्रेत"
कड़ककर बोले नरक के मालिक यमराज
'सच सच बतला कैसे मरा तू?
****

यह भाषा यमराज की हो न हो, किंतु पुलिसवालों की जरूर है। जनता से धमकी भरी भाषा में बातचीत को काव्य-भाषा बना देना 'जनकवि की रूवि का विषय है। प्रेत के जवाब की भाषा वस्तुतः स्वाधीनता के बावजूद अभावग्रस्त, दुखी और डरी हुई जनता की भाषा है। सरकारी तंत्र

की अगली पोल इस विवरण से खुलती है कि 'प्राइमरी स्कूल का मास्टर' 'एक नहीं, दो नहीं, नौ-नौ महीने 'तनखा' के बिना बिता रहा है। जनता का एक बड़ा तबका इस 'मास्टर' से भी ज्यादा गरीब है, जिसके पास न नौकरी है और न ही पुश्तैनी सम्पत्ति। फिर भी सरकार नहीं मानती कि भूखमरी देश की एक समस्या है।

'अकाल और उसके बाद'[6] शीर्षक कविता की भाषा की बुनावट इतनी ख़ास है कि इसका प्रयोग वे अन्यत्र नहीं कर पाए हैं। आठ पंक्तियों की यह कविता दो भागों में बंटी है। चार पंक्तियों में अनाज के बिना घर का दृश्य है और शेष चार पंक्तियों में 'दाने' घर में आने के बाद का दृश्य है। चुल्हे के रोने में जो व्यंजकता। वह 'बुझने' या 'नहीं जलने' में नहीं हो सकती है। 'चक्की रही उदास' कहने में जो परिवार का दुःख प्रकट हो रहा है, वह 'चक्की नहीं चली' या 'चक्की में पीसने के लिए अनाज नहीं था' में प्रकट नहीं हो सकता है। इसी तरह चूल्हा-चक्की के पास 'कानी कुतिया' का सोना, 'भीत पर छिपकलियों की गश्त का लगना और कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त की शब्दावली को बदल दें तो मनुष्य की भयावह स्थिति को, इतने प्रभावशाली ढंग से व्यक्त नहीं किया था।

घर के अंदर दाने आए, आँगन से ऊपर धुआँ उठा, घर भर की आँखे चमक उठीं और कौवे ने पाँखें खुजलाई इस भाषा को प्रतीकात्मक कहना अव्याप्ति दोष माना जाएगा। 'प्रतीक' की सीमा से काफी आगे जाकर अनुभूति को झकझोरने वाली भाषा मौजूद है। पूरी कविता में मनुष्य प्रत्यक्षतः मौजूद नहीं है। मनुष्य की अनुपस्थिति और मनुष्येतर प्राणियों एवं घरेलू उपकरणों का मानवीकरण इस ग्रन्थ-भाषा की विशिष्टता है।

अकाल के संदर्भ में 'नाहक ही डर गई, हुजूर' शीर्षक कविता विशेष ढंग की व्यंग्य भाषा में रचित है। अकाल के प्रति नौकरशाहों की क्रूर दृष्टि को व्यंग्यात्मक काव्य-भाषा में अभिव्यक्ति दी गई है--

"भुक्खड़ के हाथों में यह बंदूक कहाँ से आई
****
नौकर ने समझाया- नाहक ही डर गई, हुजूर!
वह अकाल वाला थाना पड़ता है काफी दूर।"[7]

अकाल पीड़ित जनता शासन की नजर में 'भुक्खड़ है। उसकी तकलीफ़ प्रशासन की नजर में, बेमानी है। उसके विद्रोह से प्रशासन डरता है, परन्तु जनता और प्रशासन के बीच संवाद की कमी, सम्बन्ध की दूरी संवेदना अभाव, भ्रष्टाचार आदि कारणों से समस्या का कोई समाधान नहीं निकल पा रहा है।

सामाजिक जीवन की कविता लिखते हुए नागार्जुन खास ध्यान रखते हैं कि व्यक्ति, परिवार

और समाज से लेकर व्यवस्था तक पहुँच रखनेवाली भाषा का इस्तेमाल किया जाए। 'छोटे बाबू' और 'बड़ा साहब' शीर्षक कविताओं की तुलना करें तो दोनों की भाषा में प्राथमिक अंतर है कि 'छोटे बाबू' के प्रति सहानुभूति की भाषा है तो 'बड़ा साहब' के प्रति व्यंग्यात्मक भाषा। सामाजिक जिंदगी के विभिन्न प्रसंगों के अनुकूल भाषा की विविधता को बनाए रखने वाले नागार्जुन दुहराव की ऊबन से भाषा को बचाने में अद्भुत सफलता पाते हैं। 'छोटे बाबू' की परेशानियों को कितनी सहानुभूति भरी भाषा में नागार्जुन व्यक्त करते हैं।

'एक-एक करते हैं बेचारे तीन-तीन का काम
सपने में ही पाते होंगे फुर्सत या आराम
दिन-दिन चढ़ती-बढ़ती मँहगी सूपनखा बन सर पर मँडराती है।
सच समझो छोटे बाबू पर तरस मुझे आती है।"[8]

"बड़ा साहब' का विवरण रेखाचित्र की शैली में कवि ने प्रारम्भ किया है। वैसे तो उतरे हैं देवता स्वर्ग से धरती पर अफसर बन', इसलिए उनकी सुन्दरता और भव्यता स्वयंसिद्ध है। किंतु नागार्जुन जो रेखाचित्र खींचते हैं, उसकी दिशा हास्य-व्यंग्य के कारण अफसरों की विद्रूपता को प्रकट करती है--

"**********
सिर पर हैट, सिगार का धुआँ छूट रहा है छन-छन
****
पहली को पाते हैं साहब तीन हजारी वेतन।"[9]

छोटे बाबू' की तुलना में 'बड़ा साहब' के प्रति कवि की भाषा पग-पग पर चोट करती हुई चल रही है। ये लोग पराधीन भारत में भी सत्ता का सुख पा रहे थे और स्वाधीन भारत में रंग बदलकर मस्ती मार रहे हैं। अब इनके 'मन-मंदिर आंगन 'गाँधी-नेहरू से गुंजित है |

'तब' और 'अब'- दोनों परिस्थितियों में सत्ता-सुख पाने वाले 'बड़ा साहब जैसे लोगों ने सामाजिक जिंदगी को दूषित किया है। ये लोग समाज को बेईमानी, चापलूसी और कालाधन से प्रभावित करते हैं। 'छोटा बाबू' और 'बड़ा साहब' जैसी कविताएँ वस्तुतः सामाजिक जिंदगी को ही व्यक्त करती हैं।

नागार्जुन एक बेचैन कवि है, जनता के सरोकार उन्हें आंदोलित किए रहते हैं। व्यक्तिगत गरीबी का विस्तार करोड़ों जनता में देखकर उनकी बेचैनी और बढ़ती है। कविता को इन करोड़ों लोगों के दर्द से जोड़ने की बेचैनी को उनकी काव्य-भाषा के संघर्ष में देखा जा सकता है। कलावादी कवि ही भाषा के नए प्रयोग नहीं करता, जन कवि भी नई उपमाएँ, नए बिम्ब-प्रतीक अपने संसार से लेकर कविता में रखता है। इस तरह नागार्जुन काव्य-भाषा को नए सिरे से जनवादी शैली में

समृद्ध कर रहे थे--

अमन-चैन को कैसे मैं कड़ियों में बाँधूं॥
मैं दरिद्र हूँ
****
मैं न अकेला मुझ जैसे तो लाख-लाख हैं, कोटि-कोटि हैं
यों तो सबका यही हाल है
****
दो प्रतिशत भी नहीं सुखी हैं
कैसे लिखूँ शांति पर कविता?"[10]

'गरीबी की कविता की भाषा की तलाश नागार्जुन इतने व्यावहारिक स्तर पर करते हैं कि उसकी प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध होती है और कला की नयी दिशा भी खुलती है। नौकरशाही और प्रजातंत्र की राजशाही से नागार्जुन को कोई उम्मीद नहीं है परन्तु वे अपना विरोध राजनीतिक भाषा में हमेशा प्रकट नहीं करते।सांस्कृतिक प्रतिकों के सहारे विरोध की कितनी सुंदर काव्य-भाषा वे रचते हैं---

'बड़ी-बड़ी तनखाहें पाने वाले विदुरों की मत पूछो
दुर्वासा उपकुलपति बनने की फिराक में
घात लगाए घूम रहे हैं
क्यों न गवर्नर इन्हें बना लेते हो दाता?"[11]

ऊँचे पदों पर आसीन अफसर, सलाहकार बड़ी-बड़ी रकम वेतन के रूप में पाते हैं। वे योग्य हैं परन्तु जनता की समस्याओं के प्रति प्रतिबद्धता का घोर अभाव उनमें हैं, जैसे विदुर परमज्ञानी होते हुए भी कौरवों को सही दिशा में नहीं ले जा सके।पूरा सरकारी तंत्र विदुर की ही तरह फलदायी नहीं हो पाता है। इनके पास समस्या के लिए रहस्यमयी 'संध्या भाषा' है, जिसका उपयोग वे अपनी जबावदेही से बचने के लिए बखूबी करते हैं। परिणामस्वरूप जनता का धन सरकारी माध्यमों से खर्च हो जाता है परन्तु जनता को उसका पूरा फायदा नहीं मिल पाता है| नागार्जुन इन्हें गेहूं अन का पोआ' कहकर जनता की तिरस्कार दृष्टि को व्यक्त करते हैं--

'गेहुँअन का पोआ...
क्युँटिकुरा का धोआ
गेहुँअन का पोआ"[12]

नागार्जुन ने बिगड़ैल शहजादे की करतूत से विषाक्त होते सामाजिक जीवन की चिंता के कारण यह कविता लिखी है। इसकी भाषा सरल और व्यंग्यधर्मी होने के साथ गहरी सामाजिक

चिंता अपने भीतर समेटे हुए है।

'मास्टर!'[13] शीर्षक कविता प्राथमिक शिक्षा की बदहाली से जुड़ी है। छंदोबद्ध होने के कारण तुकबंदी की अनिवार्यता भाषा को एक ढाँचे में ढाले हुए है। फिर कुछ अलग दिखने वाले प्रयोग इस कविता में मौजूद हैं। कविता प्राथमिक शिक्षा की बदहाली को कई स्तरों पर खोलने वाली काव्य-भाषा से युक्त है। प्राथमिक अध्यापक का मंत्री जी से प्रार्थना--

'और क्या लिखूँ, इन देहाती स्कूलों पर भी दया कीजिए
दीन-हीन छात्रों-गुरुओं की कुछ भी तो सुध आप लीजिए
**********"[14]

नागार्जुन सामाजिक जीवन के जिस विषय को उठाते हैं और उसके जिन पक्षों को कविता में प्रस्तुत करते हैं, उनकी कोशिश होती है कि भाषा लगभग चित्रमय हो। पाठक-श्रोता भाषा के सहारे पूरी बात को चित्रमयता के साथ ग्रहण करता चले।

'देखना ओ गंगा मइया ![15] शीर्षक कविता 'मल्लाहों के नंग-धड़ंग' छोकरों के बारे में है जो श्रद्धालुओं के द्वारा गंगा में डाले गए दुअन्नी इकन्नी' को इतने कोशिश और जोखिम के साथ डुबकी मार कर खोजते हैं, मानो खोज रहे पानी में जाने कौस्तुभ मणि!' नागार्जुन इन 'छोकरों' की इस मेहनत का नतीजा इस विवरण में व्यक्त करते हैं। इस विवरण की भाषा उनकी सामाजिक जिंदगी के सच को व्यक्त करती है----

'बीड़ी पिएंगे
आम चूसेंगे
***
लगाएंगे सर में चमेली का तेल
****
देखना ओ गंगा मइया! "[16]

तो फिर क्या हुआ?[17] की काव्य-भाषा संवेदनशीलता के विपरीत छोरों को प्रकट करती है। । पूरी कविता में यह प्रश्न कई बार आया है कि 'तो फिर क्या हुआ ?" इस प्रश्न के आस-पास की भाषा सामाजिक जीवन के प्रति सुविधा सम्पन्न लोगों की बेरुखी और कटाव का प्रमाण देती है। कवि ऐसे लोगों का परिचय देता है-----

नत नयन
मुद्रित मुख
प्रज्ञा कर
बैठें हैं कुर्सी पर

मात्र वेतन से मतलब!"[18]

'पैसा चहक रहा है..... [19] शीर्षक कविता धन के असमान वितरण पर व्यंग्य है। सामाजिक जीवन में दरार उत्पन्न करने वाला यह पक्ष नागार्जुन की काव्य -भाषा में विशेषणों एवं क्रियाओं के माध्यम से व्यक्त हुआ है। काले धन के प्रभाव को इतनी तनावहीन भाषा में व्यक्त कर पाना आसान नहीं है। तनाव के विषय को तनावमुक्त काव्य-भाषा में पिरोकर हास्य-व्यंग्य के साथ व्यक्त करना नागार्जुन की विशेषता है। पैसा दहक, बहक, महक और चहक कर सामाजिक जीवन में विद्रूपता, असमानता और विडम्बना को जन्म दे रहा है पर नागार्जुन की भाषा तनावहीन रूप में तनाव को गहरे व्यंग्य के साथ व्यक्त कर रही है--

'सोने की चूड़ियाँ ये.... पैसा दहक रहा है।
इन लो पिलो के गद्दे ...पैसा बहक रहा है।
कॉफी की प्यालियाँ ये... पैसा महक रहा है।
ये कहकहे य चितवन...पैसा चहक रहा" [20]

नागार्जुन अछूते विषयों को उठाने के विशेषज्ञ रहे हैं। कलाकार को मान्यता मिलते -मिलते लम्बी उम्र गुजर जाती है। जब वह वृद्धावस्था में बीमार या अभावग्रस्त हो जाता है तब परिवार, समाज, मीडिया आदि के द्वारा यह खबर प्रचारित की जाती है, फलस्वरूप सरकार, संस्थाओं या व्यक्तियों के द्वारा सहायता राशि या पुरस्कार देने की घोषणा होने लगती है। नागार्जुन ने इस विषय के दूसरे पहलू को उठाया है। दूसरा पहलू यह है कि परिवार के लोग कलाकार की अभावग्रस्तता का झूठा प्रचार करके अपनी झोली भरना चाहते हैं। कुछ ही वर्षों पहले शहनाई सम्राट उस्ताद बिस्मिल्ला खान गंभीर रूप से बीमार पड़े थे। शासन-प्रशासन एवं विभिन्न संस्थाओं के लोग उनकी सहायता के लिए उनके घर तक पहुंचे। मीडिया में यह ख़बर लगातार आ रही थी। उसमें एक बात स्पष्ट थी कि बिस्मिल्ला खान पर पारिवारिक दबाव था कि वे मुँह खोलकर सहायता माँगें। उन्होंने परिवार के एक सदस्य के लिए पेट्रोल पम्प की माँग की थी। बिस्मिल्ला खान सादगी से जीवन बिताने वाले व्यक्तित्व थे। अपनी जरूरतों को पूरा करने लायक उपार्जन उन्होंने किया था। नागार्जुन 'ओ मेरे वंशमणि! ओ मेरे कुलदीप! शीर्षक कविता में कलाकार की इस अंतर्विरोधी स्थिति को व्यंग्यात्मक लहजे में यक्त करते हैं। कलाकार का सामाजिक-पारिवारिक जीवन धन प्राप्ति के लिए दबाव बनाता है, उसके नगदीकरण के तिकड़म निकालता है। कलाकार इस स्थिति से वस्तुतः दुखी होता है---

अपनी तो निभ गई
अपन तो अब काठ हैं, पत्थर हैं!
****
****

ओ मेरे वंशमणि, ओ मेरे कुलदीप !
जीते जी क्षत-विक्षत कर लो मुझको
देख नहीं पाएगी जनता मेरे वीभत्स घाव
झोली भर जाएगी तुम्हारी"[21]

'शाल वनों के निविड़ टापू में, 22 शीर्षक कविता में नागार्जुन भारतीय समाज के उस पक्ष को प्रस्तुत करना चाहते हैं जो मुख्य धारा से कट कर जी रहा है। भारतीय लोकतंत्र की मजबूती के लिए और आदिवासियों की तरक्की के लिए आवश्यक है, इनके बीच शिक्षा का प्रसार, रोजगार के साधन तथा राजनैतिक जागरुकता के अवसर उत्पन्न किए जाएँ।

'तेरी खोपड़ी के अंदर'[23] शीर्षक कविता में मेरठ शहर को दंगे की परिस्थिति में दिखाया गया है। दंगे सामाजिक परिवेश को विषाक्त कर देते हैं। शंका, अविश्वास और अफवाह की भरमार के बीच रोजी-रोटी की असलियत क्या प्रभाव डालती है? यह देखने लायक है –

'यों तो वो
कल्लू था
कल्लू रिक्शावाला
****
मगर अब वो
'परेम परकास'
****
भूख की भट्ठी में खाक हो गया था"[24]

दंगे ने रिक्शावाला और यात्री को हिंदू-मुसलमान में बाँट दिया है। नागार्जुन सामाजिक जीवन के उस पहलू को सम्प्रदाय और रोजगार के अंतर्द्वन्द्व के संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं। रोजगार की हकीकत के सामने वे सम्प्रदाय के जुनून को कमजोर बताते हैं। कल्लू साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए 'परेम परकाश' नहीं बना है।

सामाजिक जीवन से जुड़ी नागार्जुन की काव्य-भाषा की यह बानगी भर है। उसके विभिन्न रूपों के नमूने यहाँ रखे गए हैं। दूसरे विषयों से जुड़ी कविताओं में भी सामाजिक जीवन की काव्य भाषा मौजूद है। नागार्जुन समाज के प्रायः वृहत्तर रूप से जुड़े हैं।

सन्दर्भ -

1. नागार्जुन रचनावली- 1, पृ. 324/प्यासी पथराई आँखें / 1959.
2. नागार्जुन रचनावली 1, पृ. 67-68 हजार-हजार बाँहोंवाली/हंस,अगस्त, 1945.
3. नागार्जुन रचनावली-2 पृ. 109-110, खिचड़ी विप्लव देखा हमने,1975.
4. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 253-254, हजार-हजार बाहोंवाली, 1954.
5. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 170-172, युगधारा /नवयुग, 17 सितम्बर 1950.

6. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 226, सतरंगे पंखोंवाली, 1952.
7. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 254, हजार हजार बाँहोंवाली, 1954.
8. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 131-132, युगधारा/जून 1949.
9. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 255-256, इस गुब्बारे की छाया में, 1954.
10. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 218, जयति जयति जय सर्वमंगला, इस गुब्बारे की छाया में हंस, 1952.
11. वही, पृ. 224.
12. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 168-169, हजार हजार बाँहोंवाली, नईचेतना, अगस्त 1950.
13. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 246, हजार हजार बाँहोंवाली / नयापथ,अक्टूबर, 1953.
14. वही, पृ. 251
15. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 256-257, सतरंगे पंखोंवाली, 1954,
16. वही, पृ. 257.
17. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 305-307, सतरंगे पंखोंवाली, 1957.
18. वही, पृ. 305.
19. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 323-324, प्यासी पथराई आँखें, 1959.
20. वही, पृ. 324.
21. नागार्जुन रचनावली-1, पृ.-370, इस गुब्बारे की छाया में/मुत नवम्बर 1962
22. नागार्जुन रचनावली -2, पृ. 75-76, तुमने कहा था, 1973,
23. वही, पृ. 76.
24. नागार्जुन रचनावली -2, पृ. 328-332, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी क्या', 1983..25. वही, पृ. 330-331.

❐

उर्दू उपन्यासों में स्त्री विमर्श और शोषण की गाथा उपन्यास "शेल्टर-होम शेल्टर" के विशेष संदर्भ में

डा. शमशीर अली*

शोध-सार :

उर्दू साहित्य विशेषतः उपन्यास लेखन में स्त्री-लेखन की परम्परा शुरू से रही है, जिसने बाद में स्त्री-विमर्श का रूप धर लिया। इस विमर्श में स्त्री शिक्षा, अस्मिता, स्वास्थ, कौशल, अतुलनीय कारनामों एवं देश की तरक्क़ी में उनके योगदान के साथ-साथ उसकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति, आज़ादी, अधिकार हनन, उसके ख़िलाफ़ हिंसक प्रवृत्ति, शोषण, अपमान और लिंग भेद जैसी समस्याएं शामिल हैं। स्त्रियों की सामजिक स्थिति और उसके शोषण की एक भयवाह तस्वीर को अफ़साना ख़ातून ने अपने उपन्यास "शेल्टर-होम शेल्टर" में बड़ी बेबाकी और साफ़गोई के साथ उजागर कर समाज और सियासत पर कड़ा प्रहार किया है।

बीज शब्द: *उर्दू साहित्य, उर्दू उपन्यास, स्त्री-लेखन, स्त्री विमर्श, शोषण, शेल्टर-होम, सियासत*

मूल आलेख: मानव इतिहास के प्रत्येक काल और मोड़ पर औरत ज़ुल्म, ज़्यादती और शोषण का शिकार रही है। यूँ तो भारत की प्राचीन धार्मिक संस्कृति में औरत को देवी का दर्जा हासिल है लेकिन वह आज भी अपनी सामाजिक स्थिति, स्वतंत्रता, अधिकार और सम्मान के लिए जूझ रही है। जहाँ तक साहित्य और स्त्री विमर्श का सवाल है तो साहित्य स्त्री विमर्श और विवेचना के बग़ैर अधूरा है बल्कि अब तो लगभग हर भाषा-साहित्य में स्त्री-विमर्श पर खुल कर चर्चा हो रही है। स्त्री समस्याओं पर शोध, चिंतन और विमर्श के आधार पर महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो रहीं हैं, जिनमें उपन्यास तथा कहानी संग्रह मुख्य रूप से शामिल हैं।

उर्दू साहित्य भी स्त्रियों के वर्णन-विवेचन से ख़ाली नहीं। उर्दू का आरम्भिक उपन्यास लेखन ही स्त्री-चिंतन पर केन्द्रित है। यह अलग बात है कि उस वक़्त स्त्री-जीवन की समस्याएँ कुछ और थीं। उर्दू के विभिन्न साहित्यकारों की हमेशा यह कोशिश रही है कि स्त्री जीवन से जुड़े तमाम बिन्दुओं पर रौशनी डाली जाये। उर्दू के पहले उपन्यासकार डिप्टी नज़ीर अहमद और उनके बाद अब्दुल हलीम शरर इत्यादि के यहाँ सांस्कृतिक व समाजिक प्रसंग में स्त्रियों के व्यवहार, आचरण, कर्तव्य, संस्कार, धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों तथा घरेलू एवं निजी समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया। इनकी अज्ञानता और रूढ़िवादिता को शिक्षण-प्रशिक्षण तथा पूर्वी संस्कृति की रौशनी में दूर करने की कोशिश की गई। साथ ही विधवाओं की सामाजिक स्थिति, बाल-विवाह, बेमेल-शादी, तथा वैवाहिक जीवन की समस्याओं का वर्णन भी किया गया। प्रसिद्ध उपन्यासकार मिर्ज़ा

* सहायक प्राध्यापक (अतिथि प्रवक्ता), उर्दू विभाग, डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, वाराणसी।

हादी रुसवा ने मासूम बच्चों के ख़रीद व फ़रोख्त और उनके जीवन की घटनाओं की पृष्ठभूमि में "उमराव जान अदा" लिखा। इस उपन्यास में लखनऊ की सामाजिक व सांस्कृतिक चित्रण के साथ उन्होंने यह भी दिखाने की कोशिश की है कि किस प्रकार कमज़ोर वर्ग की लड़कियां तवाएफ़ के पेशे में लाई जातीं हैं। प्रेमचंद ने स्त्रियों के अपमान, धार्मिक शोषण, अधिकार हनन, दहेज प्रथा, बेमेल एवं विधवा विवाह जैसी समाजिक बुराइयों को निशाना बनाया। कृष्ण चन्दर ने उन अछूत और ग़रीब महिलाओं का चित्रण किया जिनको जातीय भेद-भाव, अन्याय एवं रूढ़ परम्पराओं को सहन करना पड़ रहा था।

उर्दू साहित्य की प्रारम्भिक स्त्री उपन्यासकारों में रशीदतुन्निसा बेगम और उनके बाद सुग़रा हुमायूँ मिर्ज़ा, सफिया बेगम, अब्बासी बेगम और नज़र सज्जाद हैदर, इत्यादि के यहाँ भी स्त्री-विमर्श की सशक्त रिवायत मौजूद है। इनके उपन्यासों में नज़ीर अहमद के विचारों का अनुसरण साफ़ तौर पर दिखाई देता है। 1970-80 के आस-पास महिला उपन्यासकारों के यहाँ रिवायत से बग़ावत, बेबाकी, निडरता, आज़ाद-ख्याली और सामाजिक संघर्ष के साथ-साथ, उच्च वर्ग की महिलाओं की समस्याओं को रेखांकित करने का भरपूर प्रयास नज़र आता है। इस सन्दर्भ में इस्मत चुग़ताई, क़ुर्रत-उल-ऐन हैदर और जीलानी बानों इत्यादि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। क़ुर्रत-उल-ऐन हैदर ने कई उपन्यास लिखे और स्त्री विचार को स्वतंत्रता प्रदान की। घरेलु जीवन पर आधारित उनका उपन्यास "अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो" एक मार्मिक उपन्यास है जो चिकन काढ़ने वाली ग़रीब स्त्रियों की नस्ल दर नस्ल आर्थिक एवं सामाजिक शोषण और मानसिक पराजय की कहानी है। इस्मत चुग़ताई ने भी कई उपन्यास लिखे हैं। इनके उपन्यास 'मासूमा' का सन्दर्भ यहाँ ज़रूरी है जिसकी मुख्य पात्र मासूमा अपनी आर्थिक मजबूरियों के चलते तवायफ़ का पेशा अपनाती है। बाद में वह चाहती है कि वह इस पेशे से निकल कर इज्ज़त की ज़िन्दगी जिए, लेकिन वापसी की कोई सूरत नहीं बन पाती। इसी तरह जीलानी बानो ने उपन्यास 'ऐवान-ए-ग़ज़ल' और 'बारिश-ए-संग' लिखा। इन उपन्यासों में जहाँ हैदराबाद की टूटती बिखरती विरासत के दृश्य मौजूद हैं, वहीँ उपन्यासकार ने सामंती व्यवस्था की उन वास्तविकताओं से पर्दा उठाया है, जिसमें स्त्रियों का शोषण भिन्न-भिन्न रूपों में हो रहा था।

1970-80 के बाद के उपन्यासों में भी स्त्रियों की आर्थिक मज़बूरी, गरीबी, मानसिक व शारीरिक शोषण, वैवाहिक जीवन की समस्या और उनकी समाजिक स्थिति एवं संघर्ष की कहानी नज़र आती है। इस दौर के उपन्यासों में 'नमक' (इक़बाल मजीद), 'पाबजूला' (सोग़रा मेहँदी), 'रूही' (जमीला हाश्मी), 'बहुत देर कर दी' (अलीम मसरूर), 'जन्म-रूप' (अनवर सज्जाद), 'फूल जैसे लोग' (अनवर ख़ान) इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं।

आधुनिक युग की स्त्रीयों ने हर क्षेत्र में उन्नति की है और इनके प्रति लोगों का दृष्टिकोण

भी बदला है लेकिन इसके विपरीत यह भी सत्य है कि स्त्रियाँ शोषण जैसी समस्या से अब भी जूझ रहीं हैं। इनका शोषण अब भी हो रहा है, बस उसका स्वरूप बदल गया है। पहले वह सामाजिक तौर पर या घरों में शोषण का शिकार होतीं थीं, अब दफ्तरों या कुटीर उद्योग से जुड़े कल-कारखानों में भी यह कार्य होने लगा है। इसका चित्रण आधुनिक दौर के उपन्यासों में दिखाई देता है। मिसाल के तौर पर अली इमाम नक़वी ने उपन्यास 'तीन बत्ती के रामा' में मुम्बई जैसे बड़े शहर के उन सेठों और मालदारों के चरित्र को उजागर किया है, जिनके लिए स्त्री केवल आंशिक इच्छाओं की पूर्ति करने वाली वस्तु मात्र है। वह अन्य व्यापार की तरह स्त्री को भी भौतिक वस्तु समझते हैं। इसी तरह मोशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी ने उपन्यास 'नीलाम घर' के द्वारा दफ्तरों की अफ़सर शाही, रिश्वत और प्रमोशन के नाम पर सीधी-सादी स्त्रियों के शारीरिक शोषण को प्रस्तुत किया है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उर्दू उपन्यास लेखन के हर दौर में स्त्री चिंतन या विमर्श किसी न किसी रूप में ज़रूर दिखाई देता है। इन उपन्यासों में जहाँ एक ओर स्त्री के उत्थान, सम्मान, समानता, स्वतंत्रता और उन्नति की कोशिशें नज़र आती हैं, तो वहीँ दूसरी ओर स्त्रियों का एक ऐसा पहलु भी दिखाई देता है, जहाँ वह सामाजिक कूरितियों, परम्पराओं और मान्यताओं में जकड़ी हुई हैं। वह आज भी विभिन्न प्रकार के शोषण का शिकार हैं। 'बेटी बचाओ' के नारों के बीच, आज भी इनकी इस्मत-ओ-इज़्ज़त पर प्रतिदिन हमले हो रहे हैं। इन हमलों में कोई और नहीं बल्कि हमारे ही समाज और आस-पास के लोग शामिल हैं।

साहित्य केवल कल्पनाओं और कहानियों में रहते हुए समाज के चिंतन एवं चित्रण रूपी ताने-बाने का नाम नहीं बल्कि यह वास्तविक घटनाओं, कुरीतियों, निरंकुश मान्यताओं तथा शोषण जैसी समस्याओं और उसके प्रभावों का वर्णन भी है। विचारणीय है कि हमारे आस-पास और समाज के बीच ही एक 'काली दुनियाँ' भी बसती है। इसमें कोई भी वारदात या आपराधिक गतिविधियां बड़े ही पोशीदा तरीके से संचालित होती हैं, इन गतिविधियों का न तो हमें आभास हो पाता है और न ही हम उससे जुड़े लोगों को इंगित कर पाते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि यह लोग कोई और नहीं बल्कि हमारे ही आस-पास के लोग होते हैं। इसमें दौलतमंद, शरीफ एवं बदमाश, हर तरह के लोग शामिल हैं जो जिस्मानी हवस और दौलत की भूख मिटाने के लिए मासूमों का शोषण करते हैं और जिनके दामन हमेशा पाक भी रहते हैं। इसकी विस्तृत व्याख्या उपन्यास "शेल्टर-होम शेल्टर" में मौजूद है कि कैसे अचानक एक शरीफ व्यक्ति के काले कारनामों का पर्दा फाश होता है और शोर-शराबे के बावजूद उन्हें सियासत के पर्दे में ऐसे छिपा दिया जाता है जैसे कोई बात ही ना हुई हो। एक हस्सास उपन्यासकार ऐसी खबरों तथा घटनाओं का न सिर्फ़ विस्तृत अवलोकन करता है बल्कि उसके पीछे की तमाम, परिस्थितियों, कारणों एवं प्रभावों को राजनीतिक, समाजिक और सांस्कृतिक चिंतन के साथ अपनी रचना में प्रस्तुत करता है। यह कार्य

इस उपन्यास के ज़रिए अफ़साना ख़ातून ने बड़े ही प्रभावी अंदाज़ में किया है।

समकालीन उर्दू उपन्यास लेखन में जिन महिला उपन्यासकारों ने स्त्री विमर्श को सहजता और दृढ़ता के साथ आगे बढ़ाया है, उनमें अफ़साना ख़ातून का नाम भी अहम है। इनके दो उपन्यास "धुंध में खोई रौशनी" और "शेल्टर-होम शेल्टर" क्रमशः 2009 और 2020 में प्रकाशित हुए हैं। अफ़साना ख़ातून के लेखन की विशेषता यह है इन्होंने विषय चयन, भाषा एवं अभिव्यक्ति में सहजता एवं नवीनता का प्रमाण दिया है। इनका उपन्यास "धुंध में खोई रौशनी" नये प्रयोग का प्रमाण है। इसमें नायिका की वर्तमान शादी-शुदा ज़िन्दगी और बीते दिनों की प्रेम कहानी एक साथ अर्थात् वर्तमान के समानांतर अतीत फ़्लैश-बैक के तौर पर चलता रहता है। यह उपन्यास प्रेम, त्याग और समर्पण की अनूठी दास्तान है।

ज़ेर-ए-बहस उपन्यास "शेल्टर-होम शेल्टर" की पृष्ठभूमि आश्रय-स्थल अर्थात् शेल्टर होम है। शेल्टर-होम्ज़ में प्रायः बेघर और बेसहारा औरतों, यतीम बच्चे- बच्चियों, लाचार बुज़ुर्गों और विकलांग लोगों को आश्रय दिया जाता है। सरल शब्दों में कहा जाए तो शेल्टर-होम उन असहाय लोगों का शरण स्थल है, जिनका कोई सहाय एवं आश्रय नहीं होता। इन होम्ज़ में उनके जीवन-यापन की बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध होती होतीं हैं। धिकांशतः राज्य सरकारें ही केंद्र की सहायता से शेल्टर-होम्स का निर्माण करातीं हैं और इन्हें स्वतः या फिर किसी N.G.O. की मदद से चलातीं हैं।

12 फ़रवरी 2020 को प्रकाशित "The Hindu", और "The Indian Express" की ख़बरों के मुताबिक़ बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर और यू.पी. के प्रतापगढ़ और देवरिया जैसे बड़े शहरों में N.G.O. द्वारा चलाये जाने वाले शेल्टर-होम में बच्चियों के साथ दुष्कर्म और यौन-शोषण जैसी वारदात को प्रकाशित किया। इससे यह उजागर हुआ कि आश्रय की आड़ में कैसे-कैसे घिनौने कारनामें अंजाम दिए जा रहे हैं। इसके बाद इन होम्ज़ और इससे जुड़े सदस्यों के ख़िलाफ़ क़ानूनी करवाई की गई। यह उपन्यास भी इसी तरह की घटना को प्रतिबिम्बित करता है, जिसमें एक शेल्टर-होम की सोशल ऑडिटिंग के दौरान कई चौका देने वाले तथ्य सामने आते हैं; जो आश्रय स्थल में रहने वाली लड़कियों के साथ दुष्कर्म, यातना और हत्या पर आधारित थे। जाँच-पड़ताल से यह भी पता चलता है कि इन मामलों में NGO और उससे जुड़े कई ऐसे शरीफ़ लोग भी शामिल हैं, जिनके सम्बन्ध के तार सीधे तौर पर सियासी हुक्मरानों से जुड़े हुए थे।

उपन्यास शेल्टर-होम शेल्टर वास्तव में क़ैदियों की तरह जीवनयापन करने वाली उन लड़कियों की पीड़ा को दर्शाता है, जो अपने ख़्वाब को पाने, जीवन में कुछ हासिल करने के उद्देश्य से अपने क़दम घर से बाहर निकालती हैं, जिनके सच्चे और साफ़ मन में समाज के प्रति एक लगाव है, प्रेम है। जिनकी आँखों में अपनी आरज़ुओं, ख़्वाहिशों और सपनों का एक संसार है, जिसे पाने

की चाहत उनके दिल में होती है। मगर संसार के ही कुछ क्रूर लोगों के द्वारा इनके सपने छीन लिए जाते हैं और इन मासूमों को यह आभास तक नहीं हो पता कि कब और किस तरह वह मक्कारों के जाल में फंस गयीं और उनकी ज़िंदगी तबाह हो गयी। इस उपन्यास के हवाले से प्रो. आफ़ताब अहमद अफ़ाक़ी लिखते हैं:

> *"उपन्यास 'शेल्टर होम-शेल्टर' हमारे अहद के उन तमाम सामाजिक एवं राजनीतिक दावों को बेनक़ाब करता है जो नारी उत्थान के संदर्भ में किए जाते रहे हैं। आज इक्कीसवीं सदी में भी हमारी सामाजिक चेतना में नारी की हैसियत वही है जो वर्षों पहले थी। पुरुष प्रधान समाज और संस्थाएं किस चतुराई से गरीब, असहाय और लावारिस बालिकाओं और महिलाओं का शारीरिक दोहन, आश्रय और सुधार के नाम पर कर रही हैं, इसकी बानगी इस उपन्यास में नज़र आती है। यहां मानवीय मूल्यों को लहूलुहान करने वाले किरदारों की एक लम्बी ज़ंजीर है, जिसमें फेरी वाले, रिक्शा चालक, पुलिस से लेकर महलों में रहने वाले सफ़ेद पोश तक अनगिनत कड़ियाँ हैं। ये लोग बड़ी चतुराई से इस घिनौने काम को अंजाम देते हैं, इसलिए कि इसकी डोर सधे हुए राजनीतिज्ञों के पास है। दूसरे शब्दों में कहें तो हमारी दुनियां के समानान्तर एक बहुत ही खौफनाक, काली दुनियां है, जिससे समान्य लोग वाकिफ़ नहीं होते। ये ऐसा हमाम है जिसमें सब नंगे हैं, पापी हैं। यहां अनेकों चेहरे हैं जिस पर शराफत के मुखौटे लगे हुए हैं, परंतु हमें इनके बारे में कोई ख़बर नहीं होती, हमारी रिवायत, तहज़ीब और संस्कृति को मिस्मार करने के कैसे-कैसे हथकंडे अपनाए जाते हैं, ये उपन्यास उस का लेखा जोखा है।"*

"शेल्टर-होम शेल्टर" उपन्यास पाँच अध्यायों में विभाजित है, जो पाँच अलग-अलग क़िस्सों पर आधारित है। आख़िरी क़िस्से को छोड़ कर चारों क़िस्सों में शेल्टर-होम के शोषण एवं उत्पीड़न की दास्तान है। हर क़िस्से में अलग-अलग लड़कियों के अपने घर से शेल्टर होम तक पहुचने की परिस्थितियों और मजबूरियों की आपबीती की शक्ल में पेश किया गया है, जिसे वह शेल्टर-होम की जाँच करने गई टीम को सुनातीं हैं। पांचवां अध्याय "डायरी के चंद औराक़" नामक शीर्षक पर केन्द्रित है, जो इस उपन्यास का केंद्रबिंदु है। इसमें शेल्टर-होम से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन है। स्पष्ट रूप से यह अध्याय बाक़ी चार किस्सों के अधूरे अध्याय को सम्पूर्णता प्रदान करता है। यह उपन्यास "फ्लैश बैक" की तकनीक में लिखा गया है। इसके प्रस्तुतीकरण की विशेषता यह है कि जहाँ पांचवां अध्याय सबसे अंतिम में प्रस्तुत किया गया है, वहीँ शेष चार किस्से, इस कहानी की पृष्ठभूमि (फ्लैशबैक) में चलते रहते हैं। इस तरह कहा जा सकता है इस नॉवेल की तकनीक में 'आप-बीती' के साथ 'फ्लैश-बैक' की तकनीक का उम्दा इस्तेमाल किया गया है।

उपन्यास के पाठ से लेखिका के व्यक्तिगत जीवन के अनुभव का भी बोध होता है। ऐसा महसूस होता है कि उन्होंने महिलाओं की समस्याओं से सम्बन्धित अपने जीवन में जो कुछ देखा और महसूस किया, उसे शेल्टर-होम की घटना के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

इसमें इनका उद्देश्य यह है कि वह लड़कियां, समाज के घिनौने चेहरे को समय रहते पहचान सकें। उनके इस अनुभव को शेल्टर-होम की जाँच करने गई टीम के मुखिया और शेल्टर-होम की लड़कियों के बीच वार्तालाप में महसूस किया जा सकता है:

"सर जी, आप बाहर से आए हैं बाहर की धूप, हवा और रौशनी लेकर आए हैं, आप ज़रूर बाहर के लोग को यह बता दीजिये कि यह जो पनाह-गाह इन लोगों ने क़ायम की है, वह सिर्फ़ आम लोगों को धोखा देने के लिए, उनकी आँखों में धूल झोंकने के लिए है। यह तो उनकी शिकार-गाह है, पनाह-गाह नहीं। जिस तरह चिड़ियाँ जाल में फंस जाती हैं और कभी निकल नहीं पातीं, वैसे ही लोहे, सीमेंट और ईंटों से बना हुआ इनका यह शिकार-ख़ाना है, जहाँ फँसकर कोई बाहर नहीं निकल सकता, निकलने की कोशिश करता है तो उसे यह नीस्त-ओ-नाबूद कर देते हैं, उसके हड्डियों का भी पता नहीं चलता। आपको एक बात बताऊँ सर जी, आप जो यहाँ बैठे हुए हैं इस ज़मीन के नीचे कितनी मासूम लड़कियों को गाड़ दिया गया है, यहाँ की मिट्टी भी इतनी हड्डी-ख़ोर है कि आप लोगों के कहने पर जो यहाँ खोदाई हुई तो पाताल तक भी हड्डियों का पता नहीं चला।"

शेल्टर होम की लड़कियों ने अपनी नाकाम ज़िन्दगी और प्रतिकूल परिस्थितियों से ऐसा तल्ख़ तजुर्बा हासिल किया है कि शेल्टर-होम में रहते-रहते किसी और पर तो दूर, खुद पर भरोसा नहीं करतीं। इसका अंदाज़ा शेल्टर-होम में क़ैद एक लड़की की बातों से बखूबी लगाया जा सकता है:

"मैंने कम-उमरी में इतने धोके खाएं हैं और इतने धचके बर्दाश्त किये हैं कि एतेमाद नाम की चिड़ियां मुझसे रूठ चुकी है। आपको सब बातें बताने लग जाऊं तो आप थक जायेंगे, मेरी दास्तान नहीं थकेंगी।"

अफ़साना ख़ातून ने इस उपन्यास के ज़रिए समाज में स्त्रियों के महत्त्व और उसकी उपयोगिता के तमाम झूठे दावों को बेनक़ाब किया है। उन्होंने यह भी बताने की कोशिश की है कि किस तरह आज भी बालक-बालिका में भेद किया जाता है, जबकि उनकी समानता की कई परिभाषाएं एवं अवधारणायें स्थापित की जा चुकी हैं। उपन्यास के कुछ अंश देखें:

"मैने महसूस किया कि सीधी, सादी, नेक और ज़रूरतमंद बीवी से ज़्यादा अच्छी और वफ़ादार नौकरानी किसी को मिल ही नहीं सकती। शायद इसीलिए लोग किसी नौकरानी को रखने से ज़्यादा आसान शादी करने को समझते हैं।"

एक दूसरी मिसाल देखें:

"मेरे गाँव में उस वक़्त मर्दों ने अपनी बीवियों को सिर्फ इसलिए छोड़ दिया था कि उन्होंने लगातार बच्चियों को पैदा करने की भयानक ग़लती की थी"

उपन्यास की पृष्ठभूमि कुछ ऐसी है कि इसे पढ़ने के बाद मन-मस्तिष्क में समाज को लेकर कई प्रश्न उठते हैं। बीते वर्षों में हुई मासूम लड़कियों की रहस्यमयी मौतों पर उठने वाले पश्नों के उत्तर जो उनके अंतिम संस्कार के साथ ही अखबारों और सोशल मीडिया की ख़बरों में दफ़्न हो चुके थे, इस उपन्यास में मिलने लगते हैं।

'शेल्टर-होम शेल्टर' महज़ एक उपन्यास ही नहीं बल्कि उन लड़कियों के लिए एक नसीहत की तरह है जो अपनी ज़िंदगी के प्रारम्भिक पड़ाव में हैं। वह लड़कियां जो घर-परिवार और स्कूल-कालेज की दुनियां में अपनी सुबह-शाम करती हैं, जिनकी मासूम शख्सियत धोखा, फ़रेब और छल-कपट जैसी प्रवृत्तियों से अनजान होती हैं, यह उपन्यास उन्हें अपने आस-पास के समाज और उसके घिनौने चेहरों से परिचित कराने का काम करती है। इस लिहाज़ से अगर देखा जाए तो यह उपन्यास जहाँ ज़माने की विसंगतियों को जानने का साधन है वहीँ इससे बचने का एक माध्यम भी है।

उपन्यास के अध्ययन से वर्तमान समय में इसकी ज़रूरत और अहमियत का अंदाज़ा होता है। हमें यह जानना होगा कि क्या वास्तव में हमारे आस-पास ऐसे हालात हैं? क्या हमारे समाज में ऐसे लोग मौजूद हैं जो अपनी शराफ़त की आड़ में मासूम ज़िन्दगियों को बर्बाद करते हैं? अगर हैं तो इन पर खुल कर बहस होनी चाहिए। ऐसे मुद्दों पर उपन्यास एवं कहानियाँ लिखी जानी चाहिए और इसे अनुवाद के ज़रिये दूसरी भाषाओं में भी प्रेषित किया जाना चाहिए।

संदर्भ –

- शेल्टर-होम शेल्टर, अफ़साना ख़ातून, (हिंदी अनुवाद, शमशीर अली), सर्व भाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2021,
- प्रेम, परम्परा और विद्रोह, कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, 2018
- उर्दू नॉवेल-निगार ख्वातीन, सैय्यद जावेद अख्तर, बिस्मह किताब घर, नई दिल्ली, 2002
- तानिसियत के मबाहिस और उर्दू नॉवेल, एजुकेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2008
- उर्दू नॉवेलों में औरत की समाजी हैसियत, एजुकेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2002
- उर्दू अदब की अहम ख़्वातीन नॉवेल-निगार, एजुकेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1992
- औरत ख़्वाब और ख़ाक के दरमियान, किशवर नाहीद, संगमील पब्लिकेशन, लाहौर, 1995

❒

पाण्डुलिपि की संरचना, संरक्षण एवं पुन: प्रसारण में भूमिका

हर्षराज दुबे*, प्रो. कृपाशंकर शर्मा**

सारांश:-

संसार की बहुत-सी लुप्तप्राय सभ्यताओं के बारे में आज हम इसीलिए जानते है क्योकि वे अपने बारे में बहुत कुछ लिखा हुआ छोड़ गई हैं । पांडुलिपियाँ जो भारतीय संस्कृति, ज्ञान और परंपरा की अमूल्य धरोहर हैं। वेदों से लेकर ज्योतिष, आयुर्वेद, खगोलशास्त्र, गणित और दर्शन तक, भारतीय बौद्धिक परंपरा का एक बड़ा भाग पांडुलिपियों के रूप में संरक्षित किया गया था। ये पांडुलिपियाँ न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक ग्रंथों का प्रतिनिधित्व करती हैं,. बल्कि वैज्ञानिक औषधीय,गणितीय और सामाजिक ज्ञान का भी भंडार हैं। हालांकि प्राकृतिक आपदाएँ, कीट-नाश, नमी, युद्ध और विदेशी आक्रमणों के कारण हजारों बहुमूल्य पांडुलिपियाँ नष्ट हो गईं। शेष पांडुलिपियाँ भी समय के साथ क्षरण का सामना कर रही हैं। इसलिए, पांडुलिपियों के संरक्षण और पुनःप्रसारण की आवश्यकता वर्तमान समय में अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गई है।

इस शोधपत्र में भारत की लेखनकला की प्राचीनता ,पांडुलिपियों की संरचना, उनके ऐतिहासिक महत्व, उनके संरक्षण की समस्याएँ और आधुनिक तकनीकों के माध्यम से उनके पुनःप्रसारण के प्रयासों पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही डिजिटल प्रौद्योगिकियों के उपयोग, राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन और अन्य संस्थानों द्वारा किए जा रहे प्रयासों की भी समीक्षा की गई है। यह अध्ययन पांडुलिपियों को संरक्षित करने और उन्हें आधुनिक संदर्भों में प्रासंगिक बनाए रखने के विभिन्न उपायों पर विचार करेगा।

कूटशब्द:-

पाण्डुलिपि, कुंजी, लुप्तप्राय, पण्णावणा सूत्र, फवाङशुलिन, च्वाङ्, वार्तिक, ललितविस्तर, यवनानी, लिबिकर, सिंहली, त्रिपिटक, इणपण्ण, भिक्खुपाच्चित्त्य, पट्टिका, कतिपय, बैबीगटन, महावग्ग।

प्रस्तावना-:

भारतीयज्ञानपरम्परा के अध्ययन हेतु हजारों पांडुलिपियाँ ज्ञान के अनमोल भंडार के रूप में हमारे समक्ष उपलब्ध हैं। पांडुलिपियाँ उन हस्तलिखित ग्रंथों को कहा जाता है जो मुद्रण तकनीक के विकास से पहले लिखे गए थे। इनमें धार्मिक ग्रंथ, विज्ञान, गणित, ज्योतिष, चिकित्सा, इतिहास और कला के विविध विषय शामिल हैं। भारत की प्राचीन लिपियों के पढ़ने का वास्तविक प्रयत्न आज से लगभग 200 वर्ष पूर्व ही आरम्भ हुआ था जब सन् 1784 ई० में कलकत्ते में रायल

एशियाटिक सोसायटी की स्थापना हुई। इसके अगले वर्ष ही चार्ल्स विल्किन्स ने बादल के प्रस्तर स्तम्भ पर खुदी पाल-राजा नारायण पाल की प्रशस्ति को पढ़ लिया। उसी वर्ष पण्डित राधा कान्त शर्मा ने अशोक स्तम्भ पर खुदे वीसल देव चाहमान के लेख को पढ़ लिया। इसी प्रकार शीघ्र ही बराबर की गुफाओं के अन्य सभी लेख भी पढ़ लिये गये। फिर तो एक-एक कर लगभग सभी प्राचीन लेख पढ़े जाने लगे। ध्यान देने की बात यह है कि अनेक विद्वानों के अथक परिश्रम के फलस्वरूप प्रारम्भिक काल में जो लेख पढ़े गये, वे ऐतिहासिक दृष्टि से मध्य हिन्दू-युग के और उत्तर भारत के ही थे। चौथे दशक में बैबीगटन ने मामलपुरम के संस्कृत और तमिल लेखों के आधार पर अक्षरों की एक सारणी बनाई। वैबीगटन से भी अधिक विस्तृत और वैज्ञानिक चार्ट वाल्टर इलीएट ने बनाया जिस में कन्नड़-वर्णमाला के प्राचीन रूपों का तुलनात्मक विवरण था। 1837 में ही हार्कनेस ने Ancient and Modern Alphabets of the Popular Hindu Languages of the Southern Peninsula of India प्रकाशित की। भारत में लेखन की परंपरा हजारों वर्षों पुरानी है। वैदिक युग में मौखिक परंपरा प्रमुख थी, वैदिक काल में लेखन-कला ज्ञात थी या नहीं, यह एक विवादास्पद विषय रहा है। मैक्समूलर जैसे आरम्भिक प्राच्यविद्या पण्डितों का मत था कि वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में लिपि तथा लेखन सामग्री का कोई उल्लेख नहीं है परन्तु वैदिक काल में लेखन के अस्तित्व के बारे में कई प्रमाण मिल चुके हैं। यह सही है कि वेदों को श्रुति (श्रवणीय रचना) कहा जाता है, परन्तु शतपथ ब्राह्मण का वचन है कि वामदेव ऋषि ने, ऋचा देखकर सम्पादन किया। उसी तरह ऐतरेय ब्राह्मण का उल्लेख है कि ऋषि ने ऋचा देखकर पढ़ी। ऋग्वेद में गाय के कान पर पहचान के लिए, अंक-संकेत दागने का उल्लेख है। इस तरह के कई उल्लेख वैदिक वाङ्मय में देखने को मिलते हैं। उस समय श्रवणीय रचनाएँ लिखित रूप में भी उपलब्ध रही हैं किंतु कालांतर में ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए स्तम्भ,पाषाण,ताड़पत्र, भोजपत्र, कपास, धातु-पट्टिकाओं और कागज पर ग्रंथ लिखने की परंपरा विकसित हुई। इस प्रक्रिया ने भारतीय ज्ञान परंपरा को अक्षुण्ण बनाए रखा, किंतु प्राकृतिक क्षय, सामाजिक उपेक्षा और समय के प्रभाव से हजारों महत्वपूर्ण पांडुलिपियाँ नष्ट हो गईं।

आज भी भारत में लाखों पांडुलिपियाँ विभिन्न संस्थानों, मंदिरों, मठों और व्यक्तिगत संग्रहों में संरक्षित हैं। किंतु इनमें से अधिकांश उपेक्षित अवस्था में हैं और धीरे-धीरे नष्ट हो रही हैं। ऐसे में इन पांडुलिपियों को संरक्षित करने और आधुनिक तकनीकों से उन्हें पुनःप्रसारित करने की आवश्यकता है। भारतीय ज्ञान-परंपरा को भविष्य की पीढ़ियों तक पहुँचाने के लिए इन पांडुलिपियों को सहेजना और उनका वैज्ञानिक अध्ययन करना आवश्यक है।

भारतीय लेखनपरम्परा[1] एवं प्रमाण

भारतीय आस्तिक और नास्तिक दोनों संप्रदायों में जो परंपराएं उपलब्ध है उनमें लेखन-कला, कम-से-कम मुख्य लिपि के आविष्कार का श्रेय ब्रह्मा को दिया गया है। ब्रह्मा से उत्पत्ति मनुसंहिता के नूतन संस्करण नारद-स्मृति (620 ई० में बाण ने इसका उल्लेख किया है), मनु पर बृहस्पति के वार्तिक युवाङ् च्वाङ् तथा जैनों के समवायांग सूत्र (परंपरा से प्राप्त तिथि ई० पू० 300) में मिलती है। बादामी में ब्रह्मा की एक मूर्ती मिली है जिसका समय लगभग 580 ई० है। इसमें ब्रह्मा के एक हाथ में ताड़-पत्र हैं। बाद की मूत्तियों में ताड़पत्र के स्थान पर कागज मिलता है। ब्रह्मा से उत्पत्ति की यह कथा विशेषकर उस भारतीय लिपि के संबंध में है जो बायें से दायें की ओर लिखी जाती है। चीन के बौद्ध ग्रंथ फवाङशुलिन में यह सारी-की-सारी कथा मिलती है। वहाँ ब्रह्मा को फाङ कहा गया है। ऊपर उल्लिखित दोनों जैन-ग्रंथों तथा ललितविस्तर में सबसे महत्वपूर्ण लिपि को बम्भी या ब्राम्ही कहा गया है |

लेखन के प्रयोग के सम्बन्ध में साहित्यिक प्रमाण

ब्राह्मणसाहित्य-:[2] (वाशिष्ठ धर्मसूत्र एक वैदिक ग्रंथ है। कुमारिल (लग० 750 ई०) के मता-नुसार यह एक ऋग्वेदिक संप्रदाय का अंग था। इसकी रचना मनु-संहिता से पहले और मानव-धर्मसूत्र के बाद में मानते हैं। मनु-संहिता से सभी परिचित हैं किंतु मानव-धर्मसूत्र अब लुप्त हो चुका है। वाशिष्ठ धर्मसूत्र में इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि 'वैदिक' काल में लेखन कला का काफी प्रचार था।) वेदांगों में पाणिनी के व्याकरण की भी गणना है। पाणिनी व्याकरण में लिपिकर और लिबिकर (III, 2, 21) के समस्त पदों का उल्लेख है। कभी-कभी शव्दकोशों के प्रमाण के विरुद्ध लोग इसका अर्थ 'अभिलेखों का कर्त्ता' कर देते हैं किंतु इसका अर्थ लेखक है। इन प्रमाणों के अतिरिक्त उत्तर वैदिक ग्रंथों में कतिपय पारिभाषिक शब्द, जैसे अक्षर, काण्ड, पटल, ग्रंथ आदि आये हैं। विद्वानों ने लेखन-कला के प्रमाणस्वरूप इन्हें उद्धृत किया है |

बौद्ध-साहित्य-[3] :- ब्राह्मण-ग्रंथों के अलावा सिंहली त्रिपिटक भी साक्षी है। इसमें अनेक स्थल ऐसे हैं जिनसे सिद्ध होता है कि जिस काल में बौद्ध आगम की रचना हुई उस समय लोग लेखनकला से परिचित ही नहीं थे, बल्कि जनता में इसका पर्याप्त प्रचार भी था। भिक्खुपाच्चित्त्य 2, 2 और भिक्खुनी पाच्चित्त्य 49,2 में लेखा (लेखन) और लेखक का उल्लेख है। पहले में लेखन-ज्ञान की प्रशंसा में कहा गया है कि इसका सर्वत्र आदर होता है। जातकों में निजी और शासकीय पत्रों की चर्चा है । इनमें राज-घोषणाओं का भी उल्लेख है। महावग्ग 1, 43 में एक ऐसा ही दृष्टांत मिलता है।

---

[1] भा.पुरालिपि शास्त्र पेज 3

[2] भा.पुरालिपि शास्त्र पेज 7

[3] भा.पुरालिपि शास्त्र पेज 10

जातकों से यह भी ज्ञात होता है कि पारिवारिक मामलों या नीति और राजनीति के सूत्र सोने के पत्रों पर खोद दिये जाते थे। दो बार इणपण्ण (ऋण-वांड) और दो ही बार पोत्थक (पुस्तक) का उल्लेख मिलता है|

विदेशी ग्रंथ[1]:- निआर्कस ने लिखा है कि हिंदू लोग कुंदी किये सूती कपड़ों पर पत्र लिखते हैं। पेड़ों की छाल के भीतरी मुलायम हिस्से पर पत्र लिखने का उल्लेख क्यू० कटियस ने किया है। ये उल्लेख ई० पू० चौथी शताब्दी के अंतिम चरण के हैं। कटियस के उल्लेख से स्पष्ट है कि लिखने के लिए उस समय भोज-पत्र (birch bark) का प्रयोग होता था। इन दोनों लेखकों के साक्ष्य से पता चलता है कि ई० पू० 327-325 में लिखने के लिए दो पृथक् पृथक् स्थानीय सामग्रियाँ काम में आती थीं, यहाँ प्रायः लोगों को लिखने का ज्ञान था। पांडुलिपि की परिभाषा

पांडुलिपि किसी भी प्राचीन या ऐतिहासिक ग्रंथ, या दस्तावेज़ को कहा जाता है, जिसे हाथ से लिखा गया हो और जो मुद्रण यंत्रों (Printing Press) द्वारा प्रकाशित न हुआ हो। पांडुलिपियाँ सामान्यतः भोजपत्र, ताड़पत्र, वस्त्र, धातु-पत्र, कागज आदि पर लिखी जाती थीं। इनमें विभिन्न विषयों—जैसे धर्म, दर्शन, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, ज्योतिष, संगीत और साहित्य—से संबंधित ज्ञान संग्रहीत होता था।

पांडुलिपि की व्युत्पत्ति (Etymology) संस्कृत में 'पांडुलिपि' शब्द दो भागों से मिलकर बना है:

पाण्डु (Pāṇḍu) – हल्का पीला या सफेद रंग, जो भोजपत्र या ताड़पत्र पर लिखने की प्राचीन परंपरा को दर्शाता है।

लिपि (Lipi) – लिखाई या लेखन प्रणाली। इस प्रकार, 'पांडुलिपि' का अर्थ हुआ – "हाथ से लिखी गई प्राचीन लिपि

पांडुलिपियों की संरचना एवं प्रकार

प्रारम्भिक काल के भारतीय लेख, उन्हें चिरस्थायी बनाने की दृष्टि से, पाषाणों पर उत्कीर्ण देखने को मिलते हैं। पाषाणीय लेख - चट्टानों, शिलाओं, स्तम्भों, मूर्तियों तथा उनके आधार-पीठों और पत्थर के कलश पर पाए जाते थे। कभी-कभी पाषाण को चिकना किए बिना ही लेख खोद दिए जाते थे परन्तु जब प्रशस्ति, काव्य लेख उत्कीर्ण करने होते तो चिकनापत्थर, काष्ठस्तम्भ, कपड़ा, धातुपत्र, ताडपत्र ,भोजपत्र या कागज आदि का सहारा लिया जाता था |

1. वस्त्र-पांडुलिपियाँ - सूती या रेशमी कपड़ों पर लिखी गईं।
2. ताड़पत्र पांडुलिपियाँ - ताड़ के सूखे पत्तों पर उत्कीर्ण।

[1] भा.पुरालिपि शास्त्र पेज 12

3. भोजपत्र पांडुलिपियाँ - हिमालयी भोजवृक्ष की छाल पर लिखी गईं।

4. कागज़ की पांडुलिपियाँ - मध्यकाल में विकसित, अधिक टिकाऊ।

5. धातु-पट्टिका पांडुलिपियाँ - तांबे, चांदी या अन्य धातुओं पर लिखी गईं|

पांडुलिपियों का महत्व

पांडुलिपियाँ भारत की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर की वाहक हैं। इन पांडुलिपियों में संकलित ज्ञान केवल धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं अपितु आयुर्वेद, गणित, खगोलशास्त्र, राजनीति, वास्तुशास्त्र, भाषा-विज्ञान, चिकित्सा, संगीत और अन्य कई विषयों की अद्वितीय जानकारी निहित है। इन पांडुलिपियों के माध्यम से भारतीय की गौरवशाली बौद्धिक परंपरा का पता चलता है।

1. प्राचीन भारतीयज्ञान के प्रमुख स्रोत :- पांडुलिपियाँ प्राचीन भारतीयज्ञान और परंपराओं की मूलवाहक हैं। मुद्रण यंत्रों के आविष्कार से पहले, ज्ञान का प्रसार मुख्यरूप से पांडुलिपियों के माध्यम से होता था। वेद,पुराण,उपनिषद, महाकाव्य और अन्य ग्रंथ इन्हीं पांडुलिपियों में संकलित किए गए थे। इनके बिना भारतीय इतिहास और संस्कृति की समझ संभव नहीं थी।

2. धार्मिक और आध्यात्मिक महत्व :- पांडुलिपियाँ भारत की आध्यात्मिक धरोहर को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के अनेक पवित्र ग्रंथ इन्हीं पांडुलिपियों में सुरक्षित किए गए थे।

3. आयुर्वेद एवं चिकित्सा विज्ञान में योगदान :- पांडुलिपियों में चिकित्साविज्ञान और आयुर्वेद संबंधी गूढ़ज्ञान संरक्षित किया गया है, जिनका उपयोग प्राचीन और आधुनिक चिकित्साप्रणाली में होता आया है।

4. खगोलशास्त्र और गणित में योगदान:- पांडुलिपियाँ गणित और खगोलशास्त्र के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण रही हैं। प्राचीन भारतीयगणितज्ञों और खगोलशास्त्रियों ने पांडुलिपियों के माध्यम से जटिल गणितीय समीकरणों, ग्रहों की गति, सूर्य और चंद्रग्रहण की भविष्यवाणी, और पंचांगनिर्माण जैसी विधाओं का विस्तार से वर्णन किया है।

5. राजनीति एवं अर्थशास्त्र में योगदान :- संस्कृत ग्रंथों में राजनीति, शासन प्रणाली, अर्थशास्त्र और समाज-व्यवस्था की विस्तृत जानकारी दी गई है |

6. कला, संगीत और साहित्य में योगदान :- संस्कृतसाहित्य विश्व के सबसे समृद्ध साहित्यिक परंपराओं में से एक है। इसमें महाकाव्य, नाटक, काव्यशास्त्र और अलंकारशास्त्र जैसे विविधविषयों पर उत्कृष्ट ग्रंथ उपलब्ध हैं।

7. योग और अध्यात्म में योगदान :- संस्कृत ग्रंथ योग और ध्यान की परंपराओं को संरक्षित करने

में भी सहायक रहे हैं।

8. विज्ञान और प्रौद्योगिकी में योगदान :- पांडुलिपियाँ केवल आध्यात्मिक और दार्शनिक ज्ञान तक सीमित नहीं हैं, बल्कि इनमें भौतिकी, रसायनशास्त्र, धातु विज्ञान, कृषि और औषधि विज्ञान की भी गहन जानकारी है।

आधुनिक युग में पांडुलिपियां अत्यंत महत्वपूर्ण हैं| आधुनिक विज्ञान, दर्शन और सामाजिक अध्ययन के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। अनेक शोधकर्ता, वैज्ञानिक और इतिहासकार इन ग्रंथों का अध्ययन कर नवीन अनुसंधान कर रहे हैं |

पाण्डुलिपिसंरक्षण की समस्या एवं समाधान

संरक्षण की समस्याएँ

पांडुलिपियों के संरक्षण में कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं:

1. जैविक क्षय – ताड़पत्र एवं भोजपत्र की प्राकृतिक टूट-फूट।
2. कीट एवं नमी – दीमक, फफूंद और नमी से पांडुलिपियाँ क्षतिग्रस्त होती हैं।
3. राजनीतिक एवं सामाजिक उपेक्षा – कई ग्रंथ युद्धों एवं विदेशी आक्रमणों में नष्ट हुए।
4. असंगठित संग्रहण – भारत में पांडुलिपियों का संग्रह बिखरा हुआ है।

संरक्षण की आवश्यकता

पांडुलिपियाँ भारतीय ज्ञान परंपरा की अमूल्य धरोहर हैं, लेकिन समय के साथ इनका क्षरण हो रहा है। इसलिए, इनका पुनःप्रसारण (Redistribution) अत्यंत आवश्यक हो गया है, जिससे इन्हें आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित और संरक्षित रखा जा सके। पुनःप्रसारण का अर्थ है – पांडुलिपियों को नए माध्यमों में स्थानांतरित करना, डिजिटलीकरण करना और आधुनिक शोधकर्ताओं व आम जनता तक पहुँचाना।

पांडुलिपिसंरक्षण के प्रमुख चरण

(क) संरक्षण (Preservation)

संरक्षण का अर्थ है मूल पांडुलिपियों की रक्षा करना और उन्हें सुरक्षित रूप से संरक्षित करना। इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाते हैं:

रासायनिक संरक्षण (Chemical Preservation): भोजपत्र, ताड़पत्र और अन्य सामग्री को विशेष रसायनों से सुरक्षित किया जाता है।

वातानुकूलित भंडारण (Climate-controlled Storage): नमी, धूल और कीड़ों से बचाने के लिए उचित तापमान और आर्द्रता बनाए रखना।

प्राकृतिक पद्धतियाँ- नीम की पत्तियों, कपूर और अन्य प्राकृतिक उपायों का उपयोग करके कीटों से बचाव। विविध संग्रहालयों में पाण्डुलिपि का प्राचीन एवं आधुनिक विधि से उपचार जैसे जापानी पेपर के द्वारा पेज की मरम्मत |

मशीन गार्डिंग - पांडुलिपियों की रक्षा के लिए मशीन गार्डिंग का इस्तेमाल किया जाता है. मशीन गार्डिंग में पुलबैक और पुलआउट का इस्तेमाल होता |

पांडुलिपियों का पुनःप्रसारण

(ख) डिजिटलीकरण (Digitization)

यह पुनःप्रसारण का सबसे प्रभावी और आधुनिक तरीका है, जिसमें पांडुलिपियों को डिजिटल स्वरूप में बदला जाता है।

डिजिटलीकरण के प्रमुख तरीके

1. स्कैनिंग (Scanning): उच्च-रिज़ॉल्यूशन कैमरों या स्कैनरों द्वारा पांडुलिपियों को डिजिटल इमेज में बदला जाता है। OCR (Optical Character Recognition) तकनीक से संस्कृत पाठ को डिजिटल टेक्स्ट में बदला जाता है।

2. टाइपिंग एवं ट्रांसक्रिप्शन (Typing & Transcription) : पुराने लिपि-संस्करणों को देवनागरी, ब्राह्मी, ग्रंथलिपि, कन्नड़, तमिल आदि लिपियों में टाइप किया जाता है। यूनिकोड (Unicode) तकनीक का उपयोग कर इन्हें इंटरनेट पर सुलभ बनाया जाता है।

3. टेक्स्ट-टू-स्पीच (Text-to-Speech) तकनीक : संस्कृत ग्रंथों को श्रव्य (audio) रूप में तैयार करना, जिससे लोग इन्हें सुनकर भी ज्ञान प्राप्त कर सकें।

(ग) पुनःसंपादन एवं अनुवाद (Re-editing & Translation) : पांडुलिपियों को नए प्रारूप में संपादित कर प्रकाशित किया जाता है। संस्कृत के जटिल ग्रंथों का हिंदी, अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं में अनुवाद कर व्यापक स्तर पर प्रसारित किया जाता है। शोधकर्ताओं द्वारा नए संस्करण तैयार किए जाते हैं, जिसमें भाष्य, व्याख्या और संदर्भ जोड़े जाते हैं।

(घ) ऑनलाइन प्रकाशन एवं प्रसार (Online Publication & Dissemination) : डिजिटल युग में, पांडुलिपियों को वेबसाइटों और डिजिटल लाइब्रेरी के माध्यम से सार्वजनिक किया जा सकता है। आजकल अनेक संस्थान पांडुलिपियों के डिजिटलीकरण एवं पुनःप्रकाशन के प्रयास कर रहे हैं।

उदाहरण:

1. राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन (National Mission for Manuscripts - NMM) : भारत सरकार द्वारा संचालित, जिसका उद्देश्य दुर्लभ पांडुलिपियों को संरक्षित कर डिजिटल रूप में

उपलब्ध कराना है। https://www.namami.gov.in पर संस्कृत पांडुलिपियों का एक बड़ा संग्रह उपलब्ध है।

2. डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया (Digital Library of India - DLI): संस्कृत ग्रंथों और पांडुलिपियों को ऑनलाइन उपलब्ध कराने का एक प्रमुख प्रयास।

3. Muktabodha Indological Research Institute: तंत्र, वेद और अन्य संस्कृत ग्रंथों को डिजिटल रूप में संग्रहित करने वाला एक संस्थान।

4. Google Books, Archive.org, Open Library: कई महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रंथ अब इन प्लेटफार्मों पर निःशुल्क उपलब्ध हैं।

5. अंतरराष्ट्रीय संस्कृत शोध संस्थान (International Sanskrit Research Institutes): अमेरिका, यूरोप और भारत में कई संस्थान संस्कृत पांडुलिपियों के डिजिटलीकरण पर कार्य कर रहे हैं।

कुछ विशेष संस्थाए -:

1. Indira Gandhi National Centre for the Arts (IGNCA)
2. Bhandarkar Oriental Research Institute (BORI), Pune
3. Kuppuswami Sastri Research Institute, Chennai
4. धरोहर संस्था राजस्थान
5. जैन पाण्डुलिपि विज्ञान केन्द्र अहमदाबाद
6. आचार्य श्री कैलाससूरी ज्ञानमंदिर कोवा गुजरातभविष्य की संभावनाएँ (Future Prospects)

संस्कृत पांडुलिपियों के संरक्षण और पुनःप्रसारण के लिए कई नए तकनीकी और शोध प्रयास किए जा सकते हैं:

1. AI और मशीन लर्निंग (Machine Learning for Sanskrit OCR): संस्कृत पांडुलिपियों को स्वचालित रूप से पढ़ने और अनुवाद करने के लिए AI आधारित टूल विकसित किए जा सकते हैं।

2. ब्लॉकचेन तकनीक (Blockchain for Preservation): पांडुलिपियों के मूल डेटा को सुरक्षित और अपरिवर्तनीय बनाए रखने के लिए ब्लॉकचेन तकनीक का उपयोग।

3. वर्चुअल रियलिटी (VR) और ऑगमेंटेड रियलिटी (AR): संस्कृत ग्रंथों को VR और AR तकनीक के माध्यम से प्रस्तुत कर शिक्षा में उपयोग।

4. ओपन-सोर्स प्लेटफॉर्म : संस्कृत ग्रंथों को ओपन-सोर्स प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध कराकर आम

जनता को सुलभ बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष :-

पांडुलिपियाँ भारत की बौद्धिक धरोहर की आधारशिला हैं, इन्हें संरक्षित करने और आधुनिक तकनीक से पुनःप्रसारित करने की आवश्यकता है, जो भारतीय ज्ञान परंपरा को पुनर्जीवित करने में सहायक होगा। डिजिटलीकरण, ऑनलाइन प्लेटफॉर्म, अनुवाद, और AI जैसी आधुनिक तकनीकों के माध्यम से इनका प्रसार संभव है। यदि इस दिशा में पर्याप्त प्रयास किए जाएँ, तो प्राचीन भारतीय ज्ञान केवल विद्वानों तक सीमित न रहकर, वैश्विक स्तर पर प्रभावी रूप से पहुँचाया जा सकता है, किंतु इन्हें और गति देने की आवश्यकता है। वर्तमान में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई प्रयास चल रहे हैं यदि ये प्रयास सफल होते हैं, तो आने वाली पीढ़ियाँ प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान से लाभान्वित हो सकती हैं, इसमें कोई संशय नही है |

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. अच्युतानंद मिश्र, संस्कृत पांडुलिपियों का महत्व, वाराणसी: चौखंबा, 2018
2. S. R. Sarma, "Sanskrit Manuscripts and Their Digital Preservation", Journal of Indian Studies, vol. 12, no. 3, 2020, pp. 134-150
3. राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन, "संस्कृत पांडुलिपियों का डिजिटलीकरण," www.namami.gov.in (अभिगमन तिथि: 4 मार्च 2025)
4. Kapil Kapoor, Text and Tradition in India, New Delhi: Sahitya Akademi, 2005
5. डा. मुनेश कुमार ,भारतीय लिपि एवं अभिलेख, नई दिल्ली, प्रकाशनकुटीर, 2018
6. जार्ज ब्लुयर, भारतीय पुरालिपिशास्त्र,नईदिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 2009
7. डा. गिरीशचन्द्र शुक्ल, डा. विमलेश कुमार पाण्डेय, संग्रहालय विज्ञान, नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 2002
8. वाचना प्रमुख आचार्य– तुलसी संपादक मुनि नथमल, उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन, जैन श्वेताम्बर तेरापंथ महासभा, कोलकत्ता, 1967.
10. डा. ममता चतुर्वेदी,पाश्चात्यकला, राजस्थान ग्रन्थ अकादमी, जयपुर प्रथम संस्करण 2002
11. डा. राजकुमार तिवारी, संस्कृत अभिलेखों का धार्मिक अध्ययन, अभिषेक प्रकाशन प्रथम संस्करण -2010
12. भंडारकर, रिपोर्ट ओन दि सर्च फार संस्कृत मनुस्क्रिप्ट 1882

❐

वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार की भूमिका

संदीप कुमार शर्मा*

प्रस्तावना

शैक्षिक नवाचार शिक्षा की विकासोन्मुख रहने वाली प्रक्रिया को प्रदर्शित करने वाली एक नवीन अवधारणा है। नवाचार शब्द का प्रयोग वैज्ञानिक विकास के युग में शैक्षिक तकनीकी के नवीन प्रावधानों के कारण शैक्षिक नवाचार का महत्व बढ़ गया है। अन्ताराष्ट्रीयता, वैश्वीकरण और जनसंचार के आधुनिक संसाधनों ने इसे आज के युग की एक आवश्यकता के रूप में स्थापित कर दिया है। नवाचार परिवर्तन तक सीमित नहीं होते। समाज में भी प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है। पुरानी मान्यताओं के स्थान पर नवीन मान्यताएँ जन्म ले रही है। पुरातन विचार जा रहे है और नूतन विचार आ रहे है। जल स्थिर रहेगा तो सड़ेगा ही। जल का प्रभाव जारी रहेगा अर्थात पुराने जल का स्थान नया जल लेता रहेगा तो जल शुद्ध रहेगा। इसी प्रकार जो समाज स्थिर यथावत स्थिति में बना रहना चाहता है। नवीन विचारों को ग्रहण नहीं करता वह जीवित नहीं रह सकता है। नये-नये विचारों को ग्रहण करने से समाज को नया जीवन प्राप्त होता है। उसी प्रकार अपेक्षित परिवर्तनों से शिक्षा में नवीन चेतना आती है। नयी स्फूर्ति आती है। ये परिवर्तन शिक्षा में नवीनता लाते हैं और शिक्षा आगे की ओर बढ़ती है। शिक्षा प्रगति पथ पर अग्रसर होती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका संपूर्ण विकास समाज में ही संभव है। विकसित समाज के लिए यह आवश्यक है कि उसका प्रत्येक नागरिक शिक्षित एवं जागरुक हो। शिक्षित मनुष्य उपयोगी एवं व्यावहारिक ज्ञान का भण्डार रखता है। ज्ञान की प्राप्ति आजीवन चलने वाली शैक्षिक प्रक्रिया से होती है। शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है। विद्वानों ने इस प्रक्रिया के तीन अंग माने हैं। शिक्षक-शिक्षार्थी तथा पाठ्यवस्तु। इन तीनों अंगो में शिक्षक का स्थान सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। यद्यपि आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में बालक को शिक्षा की प्रक्रिया में प्रथम स्थान देने की बात कही गई है लेकिन सही मायने में इस प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु शिक्षक होता है। शिक्षकों का महत्व बताते हुये श्री एच०जी० वैल्स ने लिखा है कि "अध्यापक इतिहास का वास्तविक निर्माता है।"

बूबेकर के शब्दों में "सभ्यता की उन्नति शिक्षक की योग्यता पर निर्भर करती है। "जॉन एडम्स के अनुसार" शिक्षक मनुष्य का निर्माता है।'

सीखने सिखाने की प्रक्रिया आदिकाल से चलती आ रही है। मानव का जीवन ही शिक्षा

* शिक्षाशास्त्र विभाग, केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय जयपुर—302018.

है। प्राचीन काल में शिक्षक का चयन प्राय: परिस्थितियों से निर्धारित किया जाता था। उस समय यद्यपि शिक्षकों के गुणों का विश्लेषण नहीं किया जाता था फिर भी कुछ ऐसे ही व्यक्ति शिक्षक बनते थे, जिनमें शिक्षण कार्य के लिए कुछ प्रवृत्तियाँ या अभियोग्यताएँ होतीं थीं। इनमें ज्ञान एवं नेतृत्व सामान्य गुण रहते थे। समाज के विकास के साथ-साथ शिक्षकों की आवश्यकताएँ बढ़ती गई और शिक्षण का उद्देश्य एवं स्वरूप भी परिवर्तित होता गया। मध्यकाल में प्रायः यह एक व्यवसाय बन गया। उसके बाद शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे लोग आये, जिनमें इसके लिए कोई विशेष अभियोग्यता नहीं थी। किसी अन्य व्यवसाय में कोई अवसर न मिलने के कारण वे अध्यापन में आने लगे। इस कारण शिक्षा की प्रक्रिया में बहुत से दोष आ गये।

किसी भी समाज की उन्नति उसमें रहने वाले व्यक्तियों पर निर्भर होती है। समाज को उचित दिशा देने हेतु शिक्षा की आवश्यकता को सदैव ही स्वीकार किया गया है। प्रत्येक देश, काल व परिस्थिति में शिक्षा के महत्व को अनुभव किया जाता रहा है। शिक्षा को महत्वपूर्ण मानते हुए समाज द्वारा शिक्षा की प्रक्रिया को निश्चितता प्रदान करने का प्रयास किया गया। शिक्षा की इस प्रक्रिया में मुख्य रूप से तीन पक्ष सामने आये- शिक्षक, शिक्षार्थी और पाठ्यक्रम | शिक्षा की इस प्रक्रिया के इन तीनों पक्षों को ही महत्त्वपूर्ण माना गया है, लेकिन शिक्षक को इस प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष स्वीकार किया गया। यद्यपि वर्तमान मे शिक्षार्थी को ज्यादा महत्त्व दिया जाने लगा है, लेकिन शिक्षक का महत्व पूर्व की तरह आज भी बना हुआ है और यह आगे भी बना रहेगा। शिक्षाविद **नेल्सन एल० बासिंग** के शब्दों में "किसी भी शिक्षा योजना में मैं शिक्षक को निर्विवाद केन्द्रीय स्थान देता हूँ।"

शिक्षा में नवाचार

प्रत्येक वस्तु या क्रिया में परिवर्तन प्रकृति का नियम है। परिवर्तन से ही विकास के चरण आगे बढ़ते हैं, परिवर्तन एक जीवन्त, गतिशील और आवश्यक क्रिया है, जो समाज को वर्तमान व्यवस्था के अनुकुल बनाती है। परिवर्तन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होते हैं, इन्हीं परिवर्तनों से व्यक्ति और समाज को स्फूर्ति, चेतना, ऊर्जा एवं नवीनता की उपलब्धि होती है।

कहा गया है - Change is variation from a previous state or mode of existence.

परिवर्तन अच्छा है या बुरा इस संबंध में शिक्षाविद् किल पैट्रिक की स्पष्ट अवधारणा है- "परिवर्तन विचारधीन बात का पूर्ण या आंशिक परिवर्तन है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि परिवर्तन अच्छी बात के लिए है या बुरी बात के लिए।"

इस प्रकार परिवर्तन की प्रक्रिया विकासवादी, संतुलनात्मक एवं नव गत्यात्मक परिवर्तन से जुड़ी होती है, परिवर्तन समाज की माँग की स्वाभविक प्रक्रिया से जुड़ा तथ्य है। इसलिए परिवर्तन नवाचार और शिक्षा का आपसी सम्बन्ध स्पष्ट है-

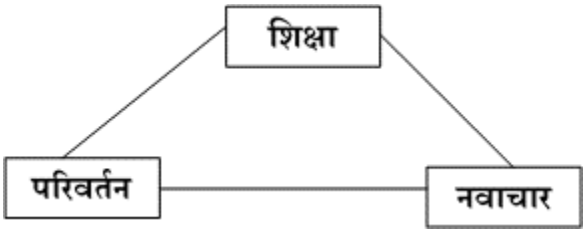

नवाचार कोई नया कार्य करना मात्र नहीं वरन् किसी भी कार्य को नये तरीके से करना ही नवाचार है।

परिवर्तन ही सृष्टि का शाश्वत नियम है। परिवर्तन से सृष्टि में नवीनता आती है। प्रतिक्षण सृष्टि में परिवर्तन हो रहा है। पेड़ों पर मृदु कोपलें निकलती हैं जो हरे पत्तों का रूप धारण करतीं हैं। हरे पत्ते पीले पत्तों में परिवर्तित हो जाते हैं। फिर पीले पत्ते भी सूख कर झड़ जाते हैं और इनके स्थान पर फिर नये पत्ते आ जाते हैं | पेड़ों की टहनियों पर पहले नन्ही कलिकाएँ प्रादर्भूत होती है। वे सुन्दर सुगन्धित पुष्प का रूप धारण करतीं हैं। पुष्प पहले मुरझाता है और फिर सूख कर हवा के झोकों से बिखर जाता है। प्रकृति की यह नित्य नयी नवीनता हमें सदा आकर्षित करती रहती है। प्रकृति की इस चिर नवीनता की पृष्ठभूमि में परिवर्तन की प्रमुख भूमिका रहती है। समय परिवर्तनशील है और ब्रहमाण्ड की प्रत्येक वस्तु को यह अपने आगोश में ले लेता है।

परिवर्तन प्रकृति तक ही सीमित नहीं है। समाज में भी प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है। पुरानी मान्यताओं का स्थान नवीन मान्यताएं ले रहीं हैं। पुरातन मूल्यों का स्थान, नूतन मूल्य ग्रहण कर रहे हैं। जल स्थिर रहेगा, तो जल सड़ेगा ही। यदि जल का प्रवाह जारी रहेगा अर्थात् पुराने जल का स्थान, नया जल लेता रहेगा, तो जल शुद्ध बना रहेगा। इसी प्रकार जो समाज स्थिर, यथावत स्थिति में बना रहना चाहता है, नवीन विचारों को ग्रहण नहीं करता है, वह जीवित नहीं रह सकता। नये-नये विचारों को ग्रहण करने से समाज को नया जीवन प्राप्त होता है। उसमें नयी स्फूर्ति आती है और वह सदा अग्रणी स्थान प्राप्त करता है। वर्तमान युग विज्ञान का युग है। इससे प्रत्येक क्षेत्र की कार्य प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन आया है। शिक्षण की वैज्ञानिक विधियों एवं संसाधनों ने शिक्षा के स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है।

ज्ञान-विज्ञान के इस युग में हर क्षेत्र में परिवर्तन-युक्त नित नये-नये अविष्कार हो रहे है जिसकी अपनी गरिमा एवं महत्व है। समाज के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन युक्त नवीन विचारों एवं आविष्कारों को आत्मसात् करने से इन सबको नयी स्फूर्ति, नया स्वरूप एवं विकास के नये रास्ते मिले हैं। अतएव परिवर्तन युक्त वे साधन एवं माध्यम जिन्होंने व्यक्ति के व्यवहार में नवीनता युक्त तथ्यों, मान्यताओं, विचारों का बीजारोपण करके व्यक्ति को नवीन प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख किया है, नवाचार कहलाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में प्रयुक्त शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को और अधिक प्रभावी

बनाने हेतु नये-नये साधन एवं विधियों को शैक्षिक नवाचार कहते है।

नवाचार अर्थ

नवाचार दो शब्दों नव और आचार के योग से बना है। नव का अर्थ नवीन या नया आचार का अर्थ व्यवहार या रहन-सहन।

अतः नवाचार वह परिवर्तन है जो पूर्व स्थित विधियों और पदार्थों आदि में नवीनता का संचार करें। इनोवेशन (innovation) आंग्ल भाषा का शब्द है यह शब्द इनोवेट (innovate) से निर्मित हुआ है जिसका अर्थ है To introduce (नवीनता लाना) था To make changes (परिवर्तन लाना)

इस प्रकार Innovation शब्द का अर्थ हुआ - "वह परिवर्तन जो नवीनता लाए।"

परिभाषा

रोजर्स ई. एम. के अनुसार "नवाचार वह विचार है जिसकी प्रतीति व्यक्ति नवीन विचार के रूप में करें। "**माइलैक्स एम.बी. अनुसार**" नवाचार वह नवीन और विशेष परिवर्तन है, जो समझ-बूझकर किया गया है। उद्देश्य प्राप्ति की दृष्टि से यह परिवर्तन अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली समझा जाता है।"

नवाचार की विशेषताएँ

- नवाचार एक ऐसा विचार है, जिसे नया समझा जाता है।
- नवाचार में कोई न कोई विशेषता अवश्य पायी जाती है।
- नवाचार प्रयासपूर्ण किया जाने वाला कार्य है।
- नवाचार को समझ-बूझकर काम में लाया जाता है।
- नवाचार के द्वारा परिस्थितियों में सुधार लाने का प्रयास किया जाता है।
- प्रचलित विधियों की अपेक्षा गुणों को ध्यान में रखते हुए नवाचार अधिक श्रेष्ठ अथवा उन्नत माना जाता है।
- नवाचार वह विचार है, जिसके मानने या स्वीकार करने वाला उसे नवीन विचार के रूप में देखता और अनुभव करता है।
- नवाचार एक नवीन विचार है।
- नवाचार में कोई नवीन विशेषता पाई जाती है।
- नवाचार एक उद्देश्यपूर्वक किया जाने वाला कार्य है।
- नवाचार उपयोगिता की दृष्टि से किया जाने वाला कार्य है।
- नवाचार के द्वारा वर्तमान परिस्थितियों में सुधार लाने का प्रयास किया जाता है।
- प्रचलित विधियों की अपेक्षा नवाचार को अधिक अच्छा माना जाता है।

शिक्षा के नवाचार की आवश्यकता एवं महत्व

- शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए नवाचार जरूरी है।
- सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा के नवाचार आवश्यक है।
- लोगों के आर्थिक विकास के लिए शिक्षा में नवाचार की आवश्यकता है
- रूचि पूर्ण शिक्षा के लिए नवाचार होना आवश्यक है।
- शिक्षक में सकारात्मक व्यवहार लाने के लिए नवाचार जरूरी है।
- कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए
- वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के अनुरूप शिक्षा प्रणाली
- मानव संसाधन का विकास करने हेतु
- रोजगार के अवसरों में वृद्धि हेतु
- पर्यावरण प्रदूषण जनित
- समस्याओं के समाधान हेतु
- विशिष्टीकरण की वृद्धि एवं इससे उत्पन्न समस्याओं की पूर्ति हेतु

नवाचार का शिक्षा पर प्रभाव

व्यक्ति एवं समाज में हो रहे परिवर्तनों का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा है। शिक्षा को समयानुकुल बनाने के लिए शैक्षिक क्रियाकलापों नूतन प्रवृत्तियों ने अपनी उपयोगिता स्वयं सिद्ध कर दी है।

ट्रायसेन के अनुसार- "शैक्षिक नवाचारों का उद्भव स्वतः नहीं होता वरन् इन्हें खोजना पड़ता है तथा सुनियोजित ढंग से इन्हें प्रयोग में लाना होता है, ताकि शैक्षिक कार्यक्रमों को परिवर्तित परिवेश में गति मिल सके और परिवर्तन के साथ गहरा तारतम्य बनाऐ रख सकें।"

इस प्रकार नवाचार एक विचार है, एक व्यवहार है अथवा वस्तु है, जो नवीन और गुणात्मक का स्वरूप है | नवाचार के प्रमुख पद - नवाचार के प्रमुखतः निम्नलिखित पद निर्धारित किये जा सकते हैं -

- खोज या शोध
- परीक्षण
- मूल्यांकन
- विकास
- विस्तार या फैलाव
- उपयोग हेतु स्वीकार करना

शैक्षिक नवाचार के आधार

नवाचार की परिस्थितियाँ हर क्षेत्र में अलग-अलग अर्थ बताती है। इनके प्रयोग करने के तरीके भी अलग-अलग होते है।

प्रो. उदय पारीक और टी. पी. राव नवाचार को बड़ी सरलता से परिभाषित करते है-

"किसी उपयोगी कार्य के लिए किसी व्यक्ति या निकाय के द्वारा किया गया विचार अथवा अभ्यास नवाचार कहलाता है।"

सभी कार्य ऐसे हैं जो पहले कहीं ना कहीं किसी के द्वारा पूर्व में किए जा चुके है, पर आपने पूर्व के किए कार्य को यदि अपनी नई रचनात्मक शैली प्रदान की है तो यही प्रयास नवाचार बन जाता है।

नवाचार को दो कोटियों में रखा जा सकता है-

- **सामाजिक अन्तःक्रियात्मक नवाचार -** इसके अन्तर्गत किसी संस्था या उसके मानवीय समूह से वार्ता करके जब कुछ नया करते है तो वह सामाजिक अन्तः क्रियात्मक नवाचार कहलाता है। इसमें कार्य के गुण दोष दोनों देखे जाते है विशेषताओं की जानकारी एवं उपयोगी विचार अपना लिए जाते है।

- **समस्या संबंधी नवाचार -** वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में आ रही समस्याओं के निराकरण के लिए नए तरीके खोजकर उस समस्या का समाधान कर दिया जाए, तो यह समस्या सम्बन्धी नवाचार कहलाता है नवाचार शिक्षक पद्धतियों का सम्बन्ध इसी समस्या समाधान (अधिगम की समस्या समाधान) सम्बन्धी नवाचार से है।

नवाचार शिक्षण पद्धतियाँ

वर्तमान समय में शिक्षा पूर्णतया निःशुल्क एवं बाल केन्द्रित है। हमारी सरकार के द्वारा विद्यालय को सभी भौतिक सुविधायें उपलब्ध करायी जा चुकी हैं। जैसे- विद्यालय भवन, विद्युत व्यवस्था, पाठ्य पुस्तकें, स्कूल यूनिफार्म, मध्यान्ह भोजन, छात्रवृत्ति, शिक्षण अधिगम सामग्री के लिए धनराशि आदि।

यह सत्य है कि सभी सुविधाओं से विद्यालयों में छात्र नामांकन संख्या में वृद्धि हुई है, परन्तु गुणात्मक शिक्षा में अभी भी आशानुरूप सफलता नहीं मिली है। जहाँ संख्यात्मक वृद्धि होती है। वहाँ गुणात्मक वृद्धि में कमी आ जाती है। इस कमी को दूर करने के लिए आवश्यक है कि कक्षा में रूचिपूर्ण पद्धति अपनाई जाए। जैसे- भ्रमण विधि खेल विधि, कहानी विधि, प्रदर्शन विधि, करके सीखना, प्रोजेक्ट विधि, केस स्टडी विधि तथा विभिन्न प्रकार की अन्य शैक्षिक गतिविधियाँ आदि।

इन नवाचारी शिक्षण पद्धतियों से शिक्षण कार्य करने में अध्यापक एवं विद्यालयों दोनों के लिए ही शिक्षण अधिगम एक रूचिपूर्ण प्रक्रिया बन सकेगी। इन पद्धतियों के माध्यम से शिक्षण कार्य सरल व सुगम ही नहीं बनता बल्कि विद्यार्थी की रूचि भी जागृत होती है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के प्रमुख उद्देश्य है कि बच्चों के पुस्तकीय ज्ञान को उनके बाहरी ज्ञान से जोड़ा जाये, यह उद्देश्य भी इन पद्धतियों से प्राप्त हो सकेगा। भयमुक्त वातावरण में विद्यार्थी स्वतंत्र होकर

अपना कार्य सुगमता से कर सकता है।

वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में विकसित प्रमुख नवाचार

- पाठ्यवस्तु में नवाचार
- दूरस्थ शिक्षा
- मुक्त शिक्षा
- पर्यावरण शिक्षा
- जनसंख्या शिक्षा।
- यौन शिक्षा।
- योग शिक्षा।
- जीवनपर्यंत शिक्षा
- भविष्योन्मुखी शिक्षा
- अभिभावक शिक्षा
- शिक्षा का अर्थशास्त्र।
- शिक्षा की मुक्त पद्धतियाँ
- प्रसार शिक्षा।
- नागरिकता की शिक्षा।
- शान्ति शिक्षा।
- मानवाधिकार की शिक्षा
- समावेशी शिक्षा।
- महिला शिक्षा।
- प्रौढ शिक्षा।
- रोजगारपरक शिक्षा
- स्वयंसेवी शिक्षा

शिक्षण विधियों में नवाचार :

- कॉपरेटिव लर्निंग।
- डिस्टेंस लर्निंग |
- वर्चुअल क्लासेस |
- ई लर्निंग-|
- ऑन लाइन स्टडी।
- स्मार्ट क्लासेस |

परीक्षा प्रणाली में नवाचार :

- ऑनलाइन परीक्षा प्रणाली।
- सेमेस्टर पद्धति।

नवाचारी शिक्षण पद्धतियों से कोशल विकास

- अभिव्यक्ति का विकास
- अन्वेषण
- निर्णय लेने की क्षमता का विकास
- स्वयं मूल्यांकन करने की क्षमता
- सृजनात्मक का विकास रचनात्मक विकास
- आत्मविश्वास

संक्षेप में कहा जा सकता है कि नवाचार शिक्षण पद्धतियों के माध्यम से बच्चों का सर्वांगीण विकास तो होगा ही साथ ही, उनका सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन भी हो सकेगा।

नवाचारी शिक्षण पद्धतियाँ

नवाचारी शिक्षण पद्धतियाँ निम्न हैं-

- प्रोजेक्ट विधि
- केस स्टडी
- पात्र अभिनय
- प्रदर्शन विधि

- क्षेत्रीय पर्यटन
- खेल विधि
- मानसिक उद्योलन

निष्कर्ष

बालक अपने नवीन ज्ञान के आधार पर नवीन ज्ञान का सृजन करता है, इसका निहितार्थ है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तकें शिक्षक को इस बात के लिए सक्षम बनाये कि बच्चों की प्रकृति और वातावरण के अनुरूप विद्यालय में गतिविधि एवं अनुभव आधारित कार्यक्रम आयोजित करें ताकि सभी बच्चों को विकास के अवसर मिल सकें। सक्रिय गतिविधि के जरिये बच्चे अपने आसपास की दुनिया को समझने की कोशिश करते हैं इसलिए प्रत्येक साधन का उपयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि बच्चे को स्वयं को अभिव्यक्त करने में और स्वस्थ रूप से विकसित होने में मदद मिलें। इन इवाचारी शिक्षण पद्धतियों के प्रयोग से बच्चों को चहुमुखी विकास के अवसर प्राप्त हो सकें।

शिक्षा मनुष्य के विकास की आधारशिला है। यह मनुष्य को तात्कालिक परिस्थितियों से लड़ने की शक्ति प्रदान करती है। शिक्षा की आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को होती है और प्रत्येक मनुष्य अधिक से अधिक गुणकारी शिक्षा प्राप्त करने का प्रयास करता है परन्तु समय सापेक्ष शिक्षा को सर्व स्वीकृति प्राप्त है। ऐसी शिक्षा समाज के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है । परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। प्रकृति में नित प्रति परिवर्तन हो रहे हैं। समाज भी इस परिवर्तन से अछूता नहीं रहा है। समाज के परिवर्तित स्वरूप के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। मनुष्य की बढ़ती भौतिक आवश्यकताएँ, समय का अभाव एवं धन इकट्ठा करने की लालसा ने शिक्षा के वर्तमान स्वरूप में आमूल-चूल परिवर्तन ला दिया है। शिक्षा को समय सापेक्ष बनाने के लिए इसमें नवाचारों का उदय हुआ है / संक्षेप में शिक्षा में नवाचारों की आवश्यकता को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

इससे धन, समय एवं श्रम की बचत होती है। इससे एक साथ सभी को दिशा प्रदान की जा सकती है । इससे प्रत्यक्ष एवं स्थाई ज्ञान प्रदान करने में सहायता मिलती है। शैक्षिक नवाचारों की सहायता से अधिगमकर्ता को क्रियाशील बनाया जा सकता है तथा अधिगम हेतु उसे प्रेरित किया जा सकता है। इसके माध्यम से शिक्षा को समय-सापेक्ष परिवर्तनशील बनाया जा सकता है। शैक्षिक नवाचारों की सहायता से विद्यार्थियों में अन्तर्निहित क्षमताओं की पहचान की जा सकती है तथा उनका पूर्ण विकास किया जा सकता है । बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुरूप शिक्षा सुविधाओं में वृद्धि करने के लिए। विभिन्न शैक्षिक इकाइयों में समन्वय स्थापित करने के लिए। शीघ्र एवं सटीक मूल्यांकन के लिए। शिक्षा के गुणात्मक एवं मात्रात्मक विकास के लिए। बच्चों को वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान प्रदान करने के लिए। शिक्षा को सार्वजनिक एवं आसान बनाने के लिए। प्रजातान्त्रिक

मूल्यों की स्थापना करने तथा उनका विकास करने के लिए। पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों में नवीनता लाने के लिए। बच्चों को रोजगारपरक शिक्षा प्रदान करने के लिए। शिक्षकों का स्वमूल्यांकन करने के लिए। विद्यालयी वातावरण को अधिगम सापेक्ष बनाने के लिए। पाठ्य सहगामी क्रियाओं को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए। विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने के लिए। संपूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया को गतिशील बनाने के लिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. अग्रवाल, डॉ. संध्या – 'शिक्षा मनोविज्ञान प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, संस्करण- 2004.
2. अस्थाना, डॉ. विपिन 2007-2008 'मनोविज्ञान शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, अग्रवकाल पब्लिकेशन्स
3. भटनागर, डॉ. ए.बी. एवं मीनाक्षी - 'मनोविज्ञान शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, आरलाल बुक डिपो, मेरठ
4. भटनागर, सुरेश – 'शिक्षा अनुसंधान विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा लॉयल बुक डिपो, मेरठ, 1998
5. ढाढियाल एवं पाठक- 'शैक्षिक अनुसंधान' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1989.
6. सिडाना, अशोक एवं महरोत्रा, पी. एन. 2007 - 'सामाजिक अध्ययन शिक्षण'
7. पाठक, पी.डी. – 'शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1983.
8. जीत, योगेन्द्र भाई (2006) शिक्षा में नवाचार और नवीन प्रवृत्तिया अष्टम् संस्करण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा पृष्ठ संख्या 57
9. सिंह, आर. आर. (2007). नैतिकता के लिए शिक्षा. जयपुर: आर.वी.एस.एस पब्लिशर्स पृष्ठ संख्या 23
10. थानवी, रमेश (2003). किसे कहते है अध्यापक जयपुर : अनौपचारिका, राजस्थान प्रौढ़ शिक्षा समिति
11. डा. त्यागी, बी.डी. (2010). प्रसार शिक्षा एवं सामुदायिक विकास रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ
12. हकीम, एम.ए. और अस्थाना, विपिन (1994) मनोविज्ञान की शोध विधियाँ. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर पृष्ठ संख्या 169
13. यादव, एम.आर अनुसंधान परिचय. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर पृ.सं. 74
14. व्यास, हरिशचन्द्र (2001). हम और हमारी शिक्षा. जयपुर: पंचशील प्रकाशन चौड़ा रास्ता. पू.स. 17
15. त्रिवेदी, आर. एन. एवं शुक्ला, डी.पी. (2008). रिसर्च मैथडोलॉजी जयपुर: कॉलेज बुक डिपो. पृष्ठ संख्या 321
16. दासवानी, प्रारम्भिक शिक्षा एक सार्वजनिक रिपोर्ट, यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1996
17. अम्बस्ट व रथ, प्रारम्भिक शिक्षा के नवीन प्रयास, प्रथम संस्करण, 2010, आर. एस. ए. इण्टरनेशनल, आगरा

❐

"स्वाध्यायोध्येतव्य:" इतिविधिवाक्यस्य विमर्शः

डॉ. अरुणकुमारमिश्र:*

अधीयते "इति अध्यायः, शाखेत्यर्थः। अधिपूर्वकात् इङ् अध्ययने इत्यस्मात् धातोः, घञि, प्रत्यये अध्याय: शब्दो निष्पद्यते। स्वशब्दः स्वीय पर्याय एवञ्च स्वाध्यायशब्दो स्वशाखा इत्यर्थ: लभते। अत्र श्व परम्परया अध्ययनं विषयत्वम्, अनुष्ठानं विषयत्वं चास्ति। एवं स्वाध्यायपदेनैव पूर्व परम्परा प्राप्तायाःशाखाया:, ग्रहणं सिध्यति। उपनयनानन्तरम् अस्या एव कुलपरम्परायाः प्राप्तायाः शाखायाः अध्ययनं गुरुकुले भवति ,अन्यस्याः शाखाध्ययने स्वशाखायाः खण्डत्वं प्रसज्येत। अतएव स्वशाखायाध्ययनान्तरमेव अन्यस्याः शाखायाः अध्ययनं कर्तुं शक्यते। एते सर्वेह्यर्थाः स्वाध्यायपदे। नैव भन्ते। **काशिकारादयः 'तिङो गोत्रादिनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययो[1]।**

सूत्रस्य व्याख्यायां सप्तदशशब्दाः पठिताः। ताते च "स्वाध्यायप्रवचनादय शब्दा अपि समावेषिताः। यथा 'गोत्र, ब्रुव प्रवचन, प्रहसन, प्रकथन, प्रत्ययन, प्रपञ्च, प्राय, न्याय, प्रचक्षण, अवचक्षण, स्वाध्याय, भूयिष्ठ, वा नाम, प्रदशन, प्रयजन। "स्वाध्यायशब्दोऽयं विविधप्रकरेण व्याख्यातः। **कातन्त्रदुर्गवृत्तिकारः, भावे-कर्मणि चार्थे** व्युत्पाद्यतेऽयं शब्दः**" अध्ययनम् अधीयते वा अध्ययनः[2] ।** अपरे विद्वांसः "स्वस्मिन् हृदयदेशे कुण्डलिन्यां स्फोटरूपाया मध्यमाया वाचो वा-अध्यायश्चिन्तनमभ्यास्ते वा"इति वृत्तिमपि स्वीकुर्वन्ति। "स्व अध्यायः स्वस्य वा अध्यायः इति आत्मस्वरूपचिन्तनमवधारणमपि अर्थं स्वीकुर्वन्ति केचित्। काशिकावृत्तिकारस्तु "अध्यायादयः शब्दा घञन्ता निपात्यन्ते। पुंसी संज्ञायां घे प्राप्ते घञ् विधीयते। **अहलन्तार्थ आरम्भः अधयतेऽस्मिन्निति अध्यायः[3]।** स्वाध्याय इति के चित् पठन्ति तदनर्थकम्। शोभनोऽध्याय इत्येतस्यां व्युत्पतौ तु पूर्वेणैव सिद्धम्। अथाप्येका व्युत्पत्तिः क्रियते स्वोऽध्यायः स्वाध्याय: इति। एवमप्यत्रैव पाठात् सिद्धम् । तद्वदपि हि वृद्धिरियं भवत्येव[4]। **योगसूत्रकारः स्वाध्यायशब्दः पञ्चनियमान्तर्गते समावेशयति[5]।** स्वाध्याय शब्दस्य बहवः अर्था प्रयुज्यन्ते यथा स्वस्य रुचिकरस्य विषयस्या-ध्ययनमभ्यासश्च, आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यश्च इति स्वे अध्ययनम्, स्मरणार्थं बोधार्थं च दीक्षामन्त्राणां जपः, स्तुतीनां सम्प्रदायग्रन्थानां च पारायण-मादयः किन्तु वेदे **स्वाध्यायशब्दः कश्चिद्विविशिष्टार्थस्य प्रतिपादकः भवति[6]।**

स्वस्य अध्यायः। अत्र स्वशब्दः आत्मकुलपरम्परावाचकः। अध्यायशब्दश-शाखावच्छिन्नवेदपरः अध्येतव्य इत्यत्र अधिपूर्वकेङ्, धातोरध्ययनमर्थः। अध्ययनं नाम गुरुमुखोच्चारणपूर्वकशिष्यानूच्चारणम्। तव्यत्प्रत्ययस्य लक्षणया आर्थीभावनाऽर्थः।

---

* सहाचार्यःसंस्कृतविभाग:दिल्ली, विश्वविद्यालय दिल्ली

तस्याञ्चाऽऽर्थीभावनायां रसाध्यायस्य कर्मत्वेन अध्ययनस्य करणत्वेन चाऽन्वयः। तथाच अध्ययनेन गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणेन स्वाध्यायं स्वकुल परम्परा गतैकशाखा वच्छिन्नं वेदं भावयेत् प्राप्नुयादिति श्रुतशाब्दबोधः सायणाचार्येण विषयमिमवलम्ब्य सुविचारितं तत्तु तेनैव शब्देनात्र उद्धृतम्। चतुर्वेदभाष्यभूमिकायां वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् "इति एक वेद पक्षे पितृपितामहादिपरम्पराप्राप्त एद वेदोऽध्येतव्य इत्यभिप्रेत्य "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः।"[7]

स्व शब्द आम्नातः तच्चाध्ययनं न काम्यं किन्तु नित्यम्। अतएव **पुरुषार्थानुशासने सूत्रितम्-वेदस्याध्ययनं नित्य- मध्ययने पातात्। पातित्यञ्चैवमाम्नायते, 'अपहृतपाप्मा स्वाध्यायादेव पवित्रं वा एतत्, तं योऽनूत्सृजत्यभागो वाचि भवत्यभागोनाके।"[8]**

"तदेशाभ्युक्तायस्तित्याज सचिविदं सखायाम्, न तस्य वाच्यपि भागोऽस्ति। यदींश्रृणोत्यलीकं श्रृणोति न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ।।[9]

तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्य इति। अध्येतारं पुरुषंतदीयप्रयासभिज्ञानेन सखिवत् पालयतीति सचिविद् वेदः । बहुद्रव्यप्रयाससाध्यक्रतुफलस्य अध्ययनमात्रेण सम्पादनं तत्पालनम् । तदपि आम्नायते-**'यं यं क्रतुमधीते तेन तेनास्येष्टं भवत्यग्नेर्वायोरादित्यस्य सायुज्यं गच्छति इति[10]।**

यद्यपि एतत् ब्रह्मयज्ञस्वाध्यायफलं तथापि ग्रहणाथौध्याय- नमन्तरेण ब्रह्मयज्ञासम्भवात् तदीयफलमपि सम्पद्यते। ईदृशं सखिविदं वेदरूपं सखायं यः पुमान् अध्ययनमकृम्वात्यजति तस्य वाच्यपि भाग्यं नास्ति, फले भाग्यं नास्तीति किन्तु वक्तव्यम् । सकलदेवतानां धर्मस्य परब्रह्मतत्त्वस्य च प्रतिपादकं वेदमनंच्चार्य परनिन्दानृत कलहादिहेतुं लौकिकीं वार्त्ता सर्व्वत्रोच्चारयतः, स्पष्ट एव वाचि भाग्याभावः । अत एवाम्नायते- **"नानुध्यायान् बहूशब्दान् वाचो बिग्लापनं हि तत्।[11] यद्यप्यसौ काव्यनाटें श्रृणोति तथापि निरर्थकमेव तच्छ्रवणं तेन सुकृतमार्गज्ञानाभावादित्यर्थः।[12] स्मृतिरपि योऽनधीत्य द्विजो वेदान् अन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।।"[13]**

नन्वधीते वेदे पश्चात् अध्ययनविध्यर्थ ज्ञानम्, ज्ञाने सति, पश्चादध्ययनप्रवृत्तिरित्यन्योन्याश्रय इति चेत्? वाढम्, अतएव, गुरुमतानुसारिणा- आचार्यकर्तृकाध्यापनेन प्रवृत्तियुक्तं माणवकाध्ययनस्य महता प्रयासेन सम्पादयन्ति। मतान्तरानुसारिणस्तु प्रकाशात्मादयोऽध्ययनात् प्रागेव सन्ध्यावन्दनादिविधिज्ञानवत् पित्रादिभ्योऽध्ययनविज्ञानं वर्णयन्ति। यदाप्याध्यापनविधिप्रयुक्तिर्यदि वा स्वविधि- प्रयुक्तिः सर्वै सर्वथापि उपनीतैरध्येतव्यो वेदः। तस्य चाध्ययनस्य दृष्टार्थत्वत् अक्षरग्रहणान्तत्त्वं पुरुषार्थानुशासने सूचित्रम् उक्तं च **मनुस्मृतौ स्वशाखाध्यायेन, व्रतैः, होमैः, यज्ञैः, महायज्ञेश्च तनुः ब्राह्मीयं क्रियते[14]|** अत्र 'ब्रह्म' शब्देन **'यज्ञः'** विवक्षते[15]| श्रुतिभ्यः सर्वजगदुत्पत्तिस्थितिक्रियापरकरविद्याया

एव यज्ञशब्द व्यवस्थापनात्। ईदृश यज्ञार्थं प्रतिपादनपरतयैव च सर्व एव वेदाः प्रवर्तन्ते इत्यप्यवधेयम्।[16]

अतः उपनयन प्रभृति ब्रह्मचारी स्यात् मार्गवासः, संहृतकेशो, भक्ष्याचारवृत्तिः, सशल्कदण्डः, सप्तभुञ्जां, मेखलां धारयेत्, आचारस्याप्रतिकूलः सर्वकारी [17]|

अथोपनिषदर्हाः। ब्रह्मचारी, सुचरिति, मेधावी, कर्मकृद्धनदः, प्रियो विद्यां विष्यान्वेष्यम् 18| एतादृशः छात्रः वेदान् नियमतः अधीत्य विद्ययाः पूर्णतामधिगम्य गुरोः सकाशाद् गन्तुमिच्छन्, गृहस्थाश्रमे च प्रविष्टकामः स्नायायात् तस्य समावर्तन संस्कारोऽपि भवेत्। तत्र समावर्तन संस्कारो नाम वेदाध्येयनान्तरं गुरूकुलात् स्व गृहागमनम् । अथोक्थम्" अधीत्य स्यानात्" इति ।ते अष्टविधदूषित पदार्थाः[19] त्यक्त्वा माङ्गल्यं पदार्थं गृह्णन्ति। मानवगृह्मसूत्रानुसारं समावर्तनसंस्कारस्य विधानमत्र यथोक्त रूपेण उपस्थापिता भवति।[20] वर्षासु श्रवणेन स्वाध्यायानुपाकुरुते ।।1।। स जुहोति। अप्वानामासि तस्यास्ते जोष्ट्रीं गमेयम्। अहमिद्धि पितुः परि मेधामृतस्य जग्रम। अहं सूर्य इवाजनि स्वाहा। अप्वो नामासि तस्य ते जोष्ट्रंगमेयम। सरस्वती नामासि सरस्वान्नामासि युक्ति र्नामासि योगो नामासि मतिर्नामासि मनोनामासि तस्यास्ते जोष्ट्रीं गमेयम्। तस्य ते जोष्ट्र गमेयमिति सर्वत्राऽनुशजति ।।2।। युजे स्वाहा प्रयुजे स्वाहोद्युजे स्वाहेतेतैर-न्तेवासिनां योगमिच्छन्निति ।।3 ।। प्राक् स्विष्टकृतोऽथ जपति। ऋतं वदिस्यामि सत्यं वदिस्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु मामवतु वक्तारम्। वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरायुर्मयि धेहि वेदस्य वाणीःस्थ। ओं भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुरिति । ।4।। दर्भपाणिस्त्रिः सावित्रीमधीते। त्रींश्चादियोऽनुवाकान् । को नो युनक्तीति च उपाकुर्महेऽध्यायानुपतिष्ठन्तु छन्दांसीति च ।।5।। तस्यानध्यायाः समूहन्वाते वलीकक्षारप्रभृति वर्ष न विद्योतमाने न स्तनयतीति श्रुत्तिराकलितं देवतुमुलं विद्युद्धन्चोल्काऽत्यक्षराः शब्दाः आचारेणान्ये।।6।। अर्धपञ्चमासानधीत्योत्सृजति पञ्चार्धशष्ठान्वा ।।7।। अथ जपति ऋतमवादिशं सत्समवादिशं तन्मावीत्त्वक्तारमावीदावीन्मा-वीद्वक्तारम्। वाङ् में मनसि प्रतिष्ठा मनो मे वाचि प्रतितष्ठतमाविरायुर्मयि धेहि। वेदस्य वाणीः स्थ। ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्सवितुरिति ।।8।। दर्पपाणिस्त्रिः सावित्रिमधीते। त्रींष्वादितोऽनुवाकः। को वो विमुञ्चतीति विमुच्योत्सृजामहेऽध्यायान्प्रतिष्वसन्तु छन्दासीति च ।।9।। प्रतिपदं पक्षिणीं रात्रीं नाधीयीत। नातऊर्ध्वभश्रेषु ।।10।। आकलिको विद्युतस्तनयित्नुवर्शेषु । ।11।। वैषुवतानि दिवाऽधीयीत वैषुवतमार्द्रपाणिः ।।12।। रुद्रान्नं नक्तं न भुक्त्वा न ग्रामे ।।13।। शुक्रियस्य प्रवर्ग्यकल्पे नियमोः व्याख्यानः। त्रयोविषन्तु सम्मील्य।।14।। गवां तु न सकाशे गानामानि गर्भिणीनामसकाशेऽष्टापदीं। रेतोमूत्रमिति च ।।15 ||

शुनासीर्यस्त च सौर्य चतुकामस्य । चतुर्नोधेहि चक्षुश इति। सूर्योऽपोवगाहत इति च आदित्य सौर्य याम्यानि षड् ऋचानि दिवाऽधीयीत ।।16 ।। उपाकृत्योत्सृज्य च त्राहं पञ्चरात्रमेके

॥17 ॥ वेदारम्भणे समाप्तौ चाकालम् 1।18 ॥ उक्तं च तैत्तिरीयोपनिषदि-स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।[21]

एतेन स्पष्टं भवति यत् स्वाध्यायस्य प्रवचनं (अध्यापन) अवश्यमेव कर्त्तव्यम्। **अध्ययनाद् धीर्भवति (धीः श्री-स्त्री-म सूत्र)।[22] " योगसूत्रे "स्वाध्याय" शब्दः पञ्चनियमेषु सन्निविष्टः वर्तते "शौचसन्तोषतपः ,तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानीतिपञ्चनियमाः ।[23]**

"प्रवचन शब्दः "वच् परिभाषणे" धतौ:'प्र' उपसर्गयोगात् निष्पन्नः वर्तते। तस्यार्थः सम्भाषणं, उपदेशः अध्यापनं च। पचति प्रवचनम् "इति व्युत्पत्या निष्पन्नः शब्दः आत्मप्रशंसाकारणेन कुम्सा इति मत्वा "अध्यापनमेवास्यार्थः स्वीकृतः।[24]

"भव्यगेय प्रवचनीयोपस्थानीयोन्याप्लाव्यापात्या वा" इति सूत्रे प्रवचनाय शब्दः अध्यापकेऽथवागुर्वर्थे प्रयुक्तः इति मन्यते।[25] प्रवक्तीति प्रवचनीयः- भव्यादयः शब्दाः कर्तरि वा प्रवधनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य, प्रवचनीयो भव्यादयः शब्दा कर्तरिवा निपात्यन्ते। प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य प्रवचनीयो गुरुणा स्वाध्यायः इति वा[26] बालमनोरमाकारः तत्त्वबोधिनीकारोऽपि अयमेवभाव: निरूप्यति। प्रवचनीयो गुरुर्वेदस्य प्रवक्तेत्यर्थः। कर्तरि अनीयर, प्रवचनीयो वेदो गुरुणेति वा।[27] प्रवक्तीति प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य प्रवचनीयो गुरुणा स्वध्यायः।28 डॉ. वासुदेवशरण अग्रवालेनोक्तम् यत् स्वाध्यायसम्बन्धिनः ग्रन्थस्याध्यापकः प्रवचनीय इति ज्ञायते (प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य) अथवा पाठ्यसामग्री अपि प्रवचनीय शब्देन व्यवहृता (प्रवचनीयो गुरुणा स्वाध्यायः)। उपनयन-गोदान-महानाम्नी प्रभृति प्रतेष्वपि अनुप्रवचनीय होमो विधीयते (अनुप्रवचननादिभ्यश्च)। आश्वलायनगृह्यसूत्रे,[29] गोभिलगृह्यसूत्रेऽपि प्रवचनानन्तरं कृतं होमः अनुप्रवचनीयहोम इति उक्तः (रुद्रस्कन्दप्रवचनात् पश्चात् क्रियते अनुप्रवचनीयो होमः)।[30]

व्याकरणमहाभाष्यकारेणाप्युक्तम्-[31] "चतुर्भिश्च प्रकारैर्विधोपयुक्ता भवति आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन,प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेन इति। अतो सम्यगर्थबोधपर्यवसाय्याध्ययनं कार्यम्। अध्ययनज्ञानयोश्च समुच्चयः । श्रुत्यामिलितस्यैव धर्मत्वबोधनात् तथा च व्यासः- "वेदार्थज्ञो जपं जप्त्वा तथैवाध्ययनं द्विजः। कुर्वन् स्वर्गमवाप्नोति नरकं तु विपर्यये।।[32]

महाकविना हर्षेणापि "अधीतिबोधाचरणप्रचारणै:"इत्युक्त्वा प्रतिचरणावैकल्येन विद्यायाः उपयोगिता नैषधे "प्रतिपादितः[33]| काशीस्थेन एकेन पण्डितवर्येणापि इयं चतुर्धाप्रक्रिया संतोषकाररिकेत्युक्ता । अधीतमध्यापितमर्जितमं यशः न चिन्तनीयं किमपीह भूतले। अतः परं श्री भवनाथशर्मणो मनोमनोहारिणि जाह्नवी तटे।।

स्वाध्यायस्य फलं ऋग्वेद- प्रातिशाख्येऽपि उक्तम्-[34] अध्येतुरध्यापयितुश्च नित्यं स्वर्गद्वारं ब्रह्म। वरिष्ठमेतत् मुखं स्वाध्यायस्य भवेत् ।।1।। छान्दोग्योपनिषदि दल्भ्यपुत्र वकस्य मित्र पुत्र ग्लावस्य वर्णनेन ज्ञायते यत् स्वाध्यायेन अन्नप्राप्तिरपि भवति-"अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध बको

दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयःस्वाध्यायमुद्वव्राज तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव तमन्ये श्वान उपसमेत्योचुरन्नं नो भगवानागायत्व- शनायाम वा इति।।2।। तान्होवाचे हैवमा प्रातरूपसमीयायेति तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयां चकार ।।3।। "ते ह्यर्थवेदं बहिश्वपवमानेन स्तोष्य माणाः सँरब्धा सर्पन्तीत्येव माससृ पुस्ते ह समुपविष्य हि चक्रुः" ||4||[35]

स्वाध्यायेन आत्मज्ञानस्य ब्रह्मलोकस्यापि प्राप्तिर्भवति । यथा छान्दोग्योपनिषदि-तद्वैतद् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच। प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यः आचार्य कुलात् वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिषेणाभि समावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान्विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठात्याहि सन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुशं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्तते।[36]

अजाज्ययाजने प्रायश्चित्तं विहितम् कदाचित्ब्राह्मणेन आपत्काले इदृशमपि कार्य सम्भवति यथोक्तम् श्रीहर्षेण- निषिद्धमप्यां चरणीयमापदि क्रिया सती नावति यत्र सर्वदा। धनाम्बुना राजपथेऽपि पिच्छले क्वचिद् बुधैरप्यपमथेन गम्यते ।।[37] इदृशीमवस्थायां प्रायश्चित्तमेव शरणम्। तत्त्वस्वाध्यायेन पूर्यते। प्रायः पापं विजानीयात् चित्तं तस्यैव शोधनम्। "पूर्वमनापदि दुष्टयाजनस्य प्रायश्चित्तमुक्तम्। इदानीमापदि तद् याजनस्य पूर्वस्मादल्पं प्रायश्चित्तं विद्यते- "दुहे ह वा एष छन्दान्सि यो याजयति स येन यज्ञक्रतुना याजयेत् सोऽरण्यं परेत्य शुचौ देशे स्वाध्यायमेवैनमधीयन्नासीद् इति। "यः पुमान् धनाभावे जीवनाभावात् प्राणरक्षायायाज्यमपिपुरुष याजयेद् एतच्च वाजसनेयके दर्शितम्प्राणस्य वै सम्राटकामायायायाज्यं याजयात्यप्रतिगृहण्यस्य प्रतिगृह्णाति इति।

ईदृशःपुमांश्च छन्दाँसि दुहे स्वकीयान् मन्त्रान् रिक्तीकरोति फलरहितान् करोति तत्परिहारार्थं येन यज्ञक्रतुनायाजितवानेनमेव क्रतुभागं स्वाध्यायं स पुमानरण्ये गत्वा पठन्नासीत् तेन प्रायश्चित्त सम्पाद्यते ।[38] एवं स्वाध्यायेन पापस्य प्रायश्चित्तमपि भवति। स्वाध्यायज्ञय प्रवचनेन आधुनिके युगे विद्वांसः जनान् सन्मार्गे नयतुम् उद्यताः भूत्वा लोककल्याणं लोकस्य रक्षाकरणेऽपि प्रवृत्तं भूत्वा जनतायाः राष्ट्रस्य च कल्याणं कर्त्तुं सक्षमा: भविष्यन्ति।

भारतीयशास्त्रेषु ' ज्ञानान्नृते न मुक्तिः' इत्वधाय जीवब्रह्मयोरैक्यं एवं मोक्षः इति निर्धारितम्। तत्र वेदस्य चरमोभागः उपनिषद् : इति प्रतिपादितः। यत्र विविधरूपेण विस्तारितस्य ज्ञानस्य इदमेव स्वरूपम्। वेदो ऽपबृंहणत्वेनास्य भागस्य महत्त्वं अनादिकालादेवागतः। अतः अस्य स्वाध्यायः, तत्र वर्णितोपायस्य अभ्यासो ऽपि द्रष्टव्यमत्र- तैत्तिरीयोपनिषद् अस्यामुपनिषदि पञ्चस्यधिकरणेषु संहिता व्याख्याता- "अधिलोकमधि ज्यौतिषमाधीविद्य मचिप्रजमध्यात्मम् । तामहाँ संहिता इत्याचक्षते। अथाद्यिविद्यम् ।। आचार्यः पूर्वरूपम् ।। अन्तेवास्युत्तरं रूपम् ।। विद्या सन्धिः ।। प्रवचन सन्धानम् ।। इत्याधिविद्यम् ।। य एवमेता महाँ संहिता व्याख्याता वेद ।। सन्धीयते प्रजया पशुभिः ।। ब्रह्मवर्चसेनान्नाहोन सुवर्येण लोकेन ।।[39]

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च ।। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च ।। तापश्च स्वाध्यायप्रवचने च ।। स्वाध्यायप्रवचने एवेनि नाको मौद्गल्यः।।[40] इत्यादयः सन्ति |स्वाध्यायप्रवचनाभ्यामेतानि प्राप्तव्यानि विदित्वा आचार्यः समावर्तनसंस्कारावसरे अन्तेवासिनमनुशास्ति जीवनयात्रायां साफल्यार्थम् 'वेदमनूच्याचार्यो अन्तेवासिनमनुशास्ति ।। सत्यं वद ।। धर्मं चर ।। स्वाध्यायान्मा प्रमदः ।। आचार्याया प्रियं धनामाहत्य प्रजातन्तुं ।। श्रिया देयम् ।। ह्रिया देयम् ।। संविदा देयम् ।। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ।।

ये तत्र ब्राह्मणाः समदर्शिनः ।। युक्ता आयुक्ताः ।। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः ।। यथा ते तेषु वर्तेरन् ।। तथा तेषु वर्तेथाः ।। एष आदेशः उपदेशः ।।" एषा वेदोपनिषद् ।। एतदनुशासनम् ।। एवमुपासितव्यम् ।। एवमुचैददुपास्यम्" ।।[41] एतादृशैः प्रेरणां लब्ध्वा ईशोपनिषदि कथ्यते कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजी विषेच्छतं समाः [42] इहलोके कर्म कुर्वन्नेव शतं समाः जिजीविषेदिति।

स्वाध्यायः तपः यज्ञः सर्वे स्वाध्यायपदे एवं निमज्जन्ति यथा सर्वे पदाः हास्ति पदे निमग्ना इति ज्ञायते। ज्ञानदृष्ट्या कठोपनिषदेपि परं पुरुषार्थरूपं ब्रह्मस्वरूपं प्रतिपाद्याध्ययनस्त्व चरमं फलम् मोक्षपदं एवं विवृणोति-

"सर्वे वेदा यत्पदमामनान्ति तपांसि सर्वाणि यद्धत् वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पद संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।।[43]

एषा उपदेशपरम्परा अधुनापि देशस्य अनेकेषु विश्वविद्यालयेषु प्रचलिता वर्तते ।

छान्दोग्योपनिषद् – छान्दोग्योपनिषदमधिकृत्य किञ्चित् प्रथममेव उक्ता। तथापि तत्र नारदेन ऋषिणा विद्यानामुल्लेखो द्रष्टव्यः "नाम वा ऋग्वेदं, यजुर्वेदः, सामवेदः, आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदा पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकापनं देवविद्या ब्रह्मविद्या, भूतविद्या क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्वदेवजनविद्या नामैवैतभामोपास्वेति।। "एतेषां ज्ञानमार्गाणामध्ययनमपि विहितमिति प्रतिभाति। स्वाध्यायस्य परम्परामधिकृत्य तस्य फलं ब्रह्मप्राप्तिः इति विदधति।" तचैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यः आचार्य कुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौदेगे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकाम्बिदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्याहितं सन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन्यावदापुषं ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ।।[44] एवं समाहितमनः शान्तिपाठं करोति।

"ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदम् |म इदं ब्रह्म निराकुर्मा मामा ब्रह्मा निराकरोदनिराकरणाय मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्तेमपि सन्तु ते मयि सन्तु ।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।[45]

तत्रैव शांकरभाष्योऽपि द्रष्टव्यः– "तत्रपि गार्हस्थ्यविहितानां कर्मणा स्वाध्यायस्य

प्राधान्यप्रदर्शनार्थमुच्यते - शुचौ विविक्तेऽमेध्यादिरहिते देशे यथावदासीनः स्वाध्यायमधीयानो नैत्यकमाधिकं च यथाशक्तिः ऋगाद्यभ्यासं च कुर्वन् धार्मिकान्पुत्राच्छिष्याञ्श्च धर्मयुक्तान् विदधद् धार्मिकत्वेन तान्नियमात्मनि स्वहृदये हार्वे ब्रह्माणि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्योपसंहृत्प्राणेन्द्रियग्रहणात् कर्मणि व संन्यास्याहिंसन् हिंसां परिपीडामकुर्वन् सर्वभूतानि स्थावरजङ्गमानि भूतान्यपीडयन्नित्यर्थः ।।[46]

कठोपनिषद् - अस्मिन्नुपनिषदि यम - नचिकेता कथोपकथनरूपेण आत्मज्ञानार्थ प्रवचनस्य महत्वं निराकृत्य परमात्मनि सर्वभावेन समर्पणमिति प्रतिपादितम् - "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुतेतनूँ स्वा ।।[47] अयमेव श्लोकः मुण्डकोपनिषद्यपि एवमेव उल्लिखितम् ।[48] किन्त्वत्र ब्रह्मप्राप्ते उपायाः सम्यक् रूपेणोक्ता: यं विदित्वा साधकः आत्मस्वरूपमागम्य मोक्षमवाप्नुयात्।

बृहदारण्योपनिषद- उक्तञ्च- 'मन एव मनुष्याणां कारणंबन्धमोक्षयोः ।"

बृहदारण्येक अमुमेव सिद्धान्तं विशृदयन् प्रतिपादितम् ।" त्रीण्यात्मनेकुरुतेति मनो वाचं प्राण तान्यात्मनेऽकुरुतान्यत्रमना अभूवं नादर्शमन्य त्रमना अभूवं नाश्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति मनसा श्रृणोदि कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्हार्थीर्मिरिप्येतवै मन एव तस्मादपि पृष्ठत उपस्पृष्टो मनसा |यः कश्च शब्दो वागेवसे ह्यन्तमायत्तैषा हि न प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानोऽन इत्येतत्सर्वम् प्राप्त एवैतन्मयो वा अयमात्मा वाड्मयो प्राणमयः।[49] एतन्मनसः सूक्ष्मस्वरूप मनध्यायी ज्ञातुं शक्यते, अतः स्वाध्याय: इति ।

मुण्डकोपनिषद् -स्वाध्यायविषये मुण्डकोपनिषदि उक्तम् -परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निवेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। ता द्विज्ञा स गुरुमेवाभिगच्छेत्सामित्पाठीः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।। तस्मै व विद्वान् उपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचिन्ताय शमान्विताय। दैनाक्षरं पुरुष वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्यतो ब्रहमविद्याम् ।। "प्रवणी धनुः शरीवात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन 'वैद्यव्यं शखत्तन्मयो भवेत् ।।50 श्वेताश्वतरोपनिषद् -अस्मिम्नुपनिषदि ब्रह्मणः व्यापकं स्वरूपं निरूप्य अविकारिस्वरूपं निरूपयति |[51]

स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्चे परिमुद्यमानाः। देवस्येषमहिमानु लौके येनेव भ्राम्यते ब्रह्मचकम् ।।

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्ये प्रचोदिम्। नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ।।

यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ। तस्येते कथिता वर्याः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।

हंसोपनिषद् - अस्मिन्नुपिषदि जप-ध्यानादि कर्म प्रक्रियां च प्रवचनेन प्रतिषतम्- "स एव (साधक) जपकोन्या नादमनुभवति एवं सर्व हंसवशान्न दशविद्यो जायते। विणीति प्रथम..... दशमो

मेघनादः। नवमं परित्यज्य दशममेवाभ्यसेत् । इति वेदप्रवचनम् वेद प्रवचनम् ।।[52] आरुणिकोपनिषद् अत्र त्यागस्य प्रक्रियां विवृष्वति "आरुणिः प्राजापत्यः प्रजापतेर्लोक जगाम। तं गत्योवाच । केन भगवन्कर्माण्यशेषलो विसृजामीति। तं होवाच प्रजापतिस्व पुत्रान्मातृन्वादीन्छिखां यज्ञोपवीतयागं स्वाध्यायम् ब्रह्माण्डन्च विसृजेत।[53]

अमृतनादोपनिषद् – [54] शास्त्राण्यधीत्य मेधावी अभ्यस्य च पुनः पुनः। परमं ब्रह्म विज्ञाय उल्कायत्तान्ययोत्सृजेत् ।।

अत्रापि अध्ययनस्य महत्त्वं प्रतिपादितम्। शतपथ ब्राह्मणे स्वाध्यायस्य फलानि कथितानि एवमेव महत्त्वं प्रतिपादितम्। शतपथब्राह्मणे स्वाध्यायस्य फलानि कथितानि एवमेव "अथास्य स्वा यायादिकरणे फलतु स्वयं श्रुत्यैवदर्शिता। अथातः स्वाध्याय्यप्रशंसा। प्रिये स्वाध्यायप्रवचने भक्तः। युक्तमना भवति। अपरा धीनो ऽहररुरर्यान्साधयते। 'सुखंस्वपिति'। परमाचिकित्सक जात्मनोभवति। इन्द्रिय संयमश्च एकात्मता च। प्रज्ञावृद्धिः। यशोलोकपंक्तिः। प्रज्ञावर्धमाना चतुरो धर्मान् ब्राह्मणमभिनिष्पादयति। ब्राह्मणं प्रतिरूपचर्या यशेलोकपंक्तिम्।

लोकः पच्यमानश्चतुर्भिधैः ब्राह्मणं भुनक्ति| अर्चया च दानेन चाज्येयतया चावध्यतया च||[55]

संदर्भा: -

1. अ. 8 11 127
2. दुर्गवृत्ति, 4\5\
3. काशि, वृ-313 1122
4. काशि, वृ-7 13 14
5. शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानीति पञ्चनियमाः। योग. सू.2132
6. जै.न्या.मा. 3 पृ.11 पा.टी.
7. तैत्त. आ. 2115
8. तदेव..
9. ऋग्,10,71,6
10. तैत्त.आ.. 2|15
11. शतपथ ब्रा., 14,7,2,23
12. मनुस्मृ, 2,168
13. "यदृचोऽधीते पयसः कूल्यास्य पितृन् मधोः कूल्या," ।तै. आ. 2,10
14. स्वाध्यायेनव्रतैर्होमैस्त्रैविद्योनेज्यया शुभैः। महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः। मनु 2,28
15. "ब्रह्म वा एश प्रपद्यते यो यज्ञ प्रपद्यते। ब्रह्म वै यज्ञः।
16. उपर्युक्तः उद् पृ-30
17. मानवगृह्यसूत्रम् पृ. 1 सूत्र 1-2 (प्रथमखण्डः)
18. मानवगृह्यसूत्रम् वेदाध्ययनार्हाष्छात्रा-सू. 1 (सप्तमखण्डः)
19. गोह्य, अपगोह्य, मयूष, मनोहा, अस्खल, विरुज, तनूदुङ इन्द्रियहा च।
20. मानव गृ. सू.चतुर्थखण्डः
21. तैत्ति. उपनिः अनु पृ. 22
22. छन्दशास्त्र-हलायुध टीका
23. योगसूत्र-2,32
24. पचति प्रवचनम् दत्यादी आत्मप्रशंसया कुत्सा। प्रवचनम् अध्यापनम् पदमं 8|1|27
25. अष्टा, 3|4|68
26. का., पृ. 3|4|67
27. बाल. मनो, 3|4|86
28. तत्त्व बोधिः, 3|4|68
29. आश्व. गृ.सू.. 1|22
30. गोभिः गृ.सू. 3|2|48
31. व्या.म. भाष्य, 1/1|1 (पस्पशान्हिक
32. श्रुतपरम्पराप्राप्तः

33. नैषधीयचरितम्
34. ऋ. प्राप्ति, 15 16
35. छान्दो अ. खण्ड 12, पृ. 36
36. तथैव, 8115, पृ. 74
37. नैषधीयचरितम्-
38. तैत्ति. आ. प्रपा. 2। अनु, 17
39. तैत्त उप. तृतीयोऽनुवाकः
40. तै. उप. नवमोऽनुवाकः
41, तै. उप. एकादशोऽनुवाकः ।
42. ईशावास्योऽपनिषद् मं. 2/
43. कठोपनिषद् 1/2/15
44. छान्दोग्योपनिषद् 7/1/4
45. छान्दो. 8/15/1
46. छा. उप. 8/15/1
47. कठोपनिषद् – 2|22
48. मुण्डकोपनिषद्- 3/2/12
49. बृहदारण्यकोपनिषद्- 1/5/3
50. मुण्डकोपनिषद्- 1/2/12
51. श्वेताश्वतरोपनिषद्- 7/1/22-23
52. हंसोपनिषद्- पृ. (132)
53. आरुणिकोपनिषद्- पृ. (133)
54. अमृतनादोपनिषद्- पृ. (152)
55. शतपथ ब्रा. 11/5/7/1

❐

वैदिककाले अंकगणितस्वरूपम्

डॉ. नवनीतशर्मा*

विद् धातोः निष्पन्नः वेदशब्दः ज्ञानसंग्रहबोधक इति चतुर्षु ऋग्यजुःसामाथर्वणेषु अङ्कगणनाविषयकयद् ज्ञानं वरीवर्ति तदेवात्र समासेन प्रस्तूयते। अतो वैदिककाले प्रचलितस्य अङ्कगणितस्य विवेचनमत्र क्रियते चेत्तदा प्रबन्धकालेवामर्यादितंमवेदित्याशंका जायते। अस्तु।

वैदिकसाहित्यावलोकनपटिष्ठः विद्वांसः कथयन्ति यदीदानीं यावन्तोविषया जनैरधीयन्ते विविच्यन्ते ते सर्वेऽपि वैदिककाले आविष्कृता आसन्।तदानीन्तनानामध्ययन विषयाणामेका सूची छान्दोग्योपनिषदि प्राप्यते। तत्रैकाऽख्यायिकायां सनत्कुमारो नारदं पप्रच्छ यद् हे नारद्! त्वया किमधीतम्? नारदः प्रत्युत्तरति-

हे भगवन् ऋग्वेद-यजुर्वेद, सामवेद - अथर्ववेद इतिहासपुराण -व्याकरण-पितृविद्या - राशिविद्या (गणितम्) देव विद्या निधिविद्यातर्कशास्त्र ब्रह्मविद्या भूतविद्या नक्षत्रविद्या (Astrology) सर्पविद्यादेवजनविद्या मयाऽधीताः।

अनेन स्पष्टमिदं तथ्यं जायते यत्तदानीं गणितविद्याध्ययनं क्रियते स्म। गणितविद्यायाः सम्बन्धो गणनया सह वर्तते। गणनायाः प्राधान्यादियं गणितविधेतिनाम्ना अभिधीयते[1] । तदानीन्तना आर्यजनाः स्वकीयभवन निर्माणेऽङ्कगणितस्यरेखागणितस्य च प्रयोगद्वारा विशेष भवन निर्माणं कुर्वन्तिस्म यत्र १००-१०० शत-शतद्वाराणि भवन्ति स्म[2]। शत भुजैर्मापिज्ञैरपि भवनं निर्मीयते स्म।[3]

अन्यच्च - आर्ध्याणामार्थिक जीवनेऽपि गणितोपयोगो जायते स्म। तेषु कृषिकर्माणमपि केचन आसन्। तैः क्षेत्र मापने कर्षणे च गणितोप्रयोगः क्रियते स्म[4]। आदर्याः आयुर्गणनामपि कुर्वन्ति स्म।

कथितं च-

"जीवेम शरदः शतम्"[5]

आदर्याणां सामान्य व्यवहारेषु गणितस्य प्रयोगं वयं पूर्वाक्तोदाहरणेषुदृष्टवन्तः। किन्त्वेतद् भिन्नमपि पक्षद्वयं वर्तते येन ज्ञातं भवति चदुच्चगणितस्य महती आवश्यकता भवति स्म। यदा

---

* सहायकाचार्यः,ज्योतिषः, लक्ष्मीदेवीशराफआदर्शसंस्कृतमहाविद्यालयः, देवघरः, झारखण्डम्।

[1] छा.उ. ७/१/२

[2] ऋ.वे. ७/३/७

[3] ऋ.वे. ७/१५/१४

[4] ऋ.वे. ५/१९/३

[5] य.वे. ३६/२४

ज्योतिषं यज्ञ वेदिका निर्माणं च कुर्वन्ति स्म । ज्योतिषसिद्धान्तान् निर्धारीकृत्यैव द्वादश मासानां सप्तवाराणां,सप्तविंशतिः अष्टविंशतिर्वा नक्षत्राणां सूर्यचन्द्र ग्रहणादिकस्य च निरूपणं तथा चौच्च गणितीय सिद्धान्तैर्हवनकुण्डनिर्माणादिकं कुर्वन्ति स्म[1]।

छान्दोग्योपनिषदि[2] सनत्कुमारनारदर्यायाऽऽख्यायिकोसा पूर्वमयोद्धता । तदा ज्ञायते यद् गणितस्य गणनाऽपरावासुकृता वर्तते। इदमपि तथ्यं स्पष्टं भवतियत्तदानीं गणितस्याऽध्ययनाऽध्यापनमावश्यकरूपेण भवति स्म। गणितविद्यायाविभागत्रयं अस्ति ।

(१) अंकगणितम् (Srithmetic)

(२) रेखागणितम् (Geometry)

(३) बीजगणितम् (Algebra)

एतेषां प्रमुख शाखात्रयाणां मूलाधारोपर्येव अन्याः शाखाः यथा-

१. स्थितिशास्त्रम् (Statusology)

२. गतिशास्त्रत् (Dynamics)

३. द्रवस्थितिशास्त्रम् (Hydro Statics)

४. त्रिकोणमिति (Trigonometry)

५. खगोलीयत्रिकोणमितिः (AstronomicalTrigonometry)

चलनकलनम् (Calculus) इत्याद्याः पल्लविताः । समासतो वक्तुं शक्यते यदङ्कगणित- रेखागणित- बीजगणितमितोत्रयाणांमाधारीकृत्यैव गणितस्यसर्वे मूलभूतसिद्धान्ताः समुद्भूताः सन्ति।

अंकगणितस्य शाब्दिकोऽर्थोंऽङ्कगणना विज्ञानमेव । "अकिचिह्न" इतिधातोरङ्कशब्दस्य निष्पत्तिः । अनेन स्पष्टं ज्ञायते यत् अङ्क शब्दस्यार्थश्चिह्नमेव ।आरम्भे अंक ज्ञानाय विभिन्नानि चिह्नानि रचयित्वा तेषां गणनाक्रियते स्म। अतोहेतोरियं गणितीयशाखा अङ्कगणितनाम्नाऽभिहिताऽस्ति ।

अङ्कगणिते मूलरूपेण एकतः नव पर्यन्तमेव अंकाः सन्ति । शून्यनाङ्करूपेणमान्यम् । यद्यपि शून्य साहाय्येन १०, २०, ३०, ...१००, १०००, १००००, ९०००००० इत्याद्याःसंख्याः लिख्यन्ते, शून्यं यदि अङ्कं नापि मन्येत तथापि तदङ्कद्योतकं चिन्हं तु वर्तते एव । अनेन प्रकारेण दशसंख्यकानि चिह्नानि संख्या बोधनार्थनिर्मितानि ।

अङ्कबोधकचिह्नानि दश सन्ति किन्तु यथोक्तं पूर्व मूलतोऽङ्का नवएव यथोक्तं वेदे—

[1] शुल्बसूत्र

[2] छा.बु. ७/१/२

"तस्य मे नव कोशा विष्टम्मा नवधाः हिताः" ।[1]

अत्राऽयं मंत्रः सङ्केतयति। यदङ्का नव एव। एतादृशो नवाङ्क सूचकामन्त्रा वेदेषु बहुषु स्थलेषु अंकिताः सन्ति एभिर्नवाङ्कसाहाय्यैर्महर्षिभिरायैः कियत्योविशालसंख्याः निर्मिताः । यजुर्वेदस्य निम्नांकिताऽङ्कश्रेणी द्रष्टव्या यथा - **एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्य मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मे एकादश च मे एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश व मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नव दश च मे नवदश च मे एकविंशतिश्च मे एकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च में पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नव विंशतिश्च मे एकत्रिंशच्च में एकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्चमे यज्ञेन कल्पन्ताम्**।[2]

एतादृशी एवैकान्या श्रेणी अपि द्रष्टव्याऽस्ति। यथा-

"चतस्रश्चमेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे
षोडश च मे घोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे
चतुर्विंशतिश्च मे द्वात्रिंश्च मे द्वात्रिंशच्च मे षटत्रिंशच्चमे
षटत्रिंशच्च मे चत्वारिंशच मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे
चतुश्चत्वारिंशच्चमेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।[3]

इत्थं पूर्वमंत्रेषु एकाचमे तिस्रश्च मे इत्यादौ अथ च चतस्रश्चमेऽष्टौ च मे इत्यादौ क्रमशः २ तथा ४ अनयोः सामान्यमन्तरं दत्वा ३३ त्रयस्त्रिंशत् तथा च ४८ अष्टचत्वारिंशत् यावत् संख्यानांगणना कृता वर्तते। प्रथमाङ्कगणितश्रेणी विषम संख्याः सूचयति अथ च द्वितीयाश्रेणी समसंख्या: सूचयति । इदृशा विद्याः वह्नयः संख्या वेद मंत्रेषु दृश्यन्ते यासां संकलनं आचार्यः अलगुरायशास्त्री कृतवान्।[4] न हि केवलं सामान्यं संख्या गणनं कृतं तत्रवेदेतु १० दशोत्तरसंख्यानामपि गणना कृता वर्तते तथा च महतीनां दशगुणोत्तरसंख्यानामपि उल्लेखस्तत्र प्राप्यते।

यथा- **"इमा मे इष्टका धनेवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतंच सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं चसमुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मे अग्न इष्टकाधनेवः सन्त्वमुत्रामुस्मिल्लोके "।**

इदमेवास्ति दाशयिकप्रणाली मूलम्। पूर्वोक्तायाम अङ्कश्रेण्याम् ऋषयः१:१० एक दश इत्यस्यानुपातेन १०[१२] पर्यन्तस्य संख्याः प्रस्तुतवन्तः एवं विद्या एव दश गुणोत्तरसंख्या

[1] अथ वे.सं. १३/४/१०
[2] यजु.वे. सं०- १८/२४
[3] यजु. सं. १८/२५
[4] ऋग्वेद रहस्यम् पृ० १५८ तः १९६ यावत्

श्रेण्यस्तैतिरीयसंहिता[1] काठकसंहिता[2] मैत्रायणीसंहिताषु[3] श्रौतसूत्रेऽपि एतादृशी एव दशगुणोत्तर अङ्कश्रेणी वर्तते, किन्तु तत्र संख्याबोधनार्थ या शब्दावली प्रयुक्तास्ति तत्र भिन्न्ता दृश्यते । न्यर्बुदसंख्यांयावत्तानि एव नामानि अभिहितानि सन्ति यानि खलु यजुर्वेदोक्तानि सन्ति, किन्तु तदुत्तरं दशगुणोत्तर संख्या बोधनार्थं क्रमशः निखर्वः (समुद्रस्थाने) समुद्रः (मध्यस्थाने) सलिला (अन्त्यस्थाने) अन्त्यः (परार्धस्थाने) अथ च अनन्तपरार्धस्य१० दश गुणिता संख्या १०[4] इत्यस्य कृते पारिभाषिकी शब्दावली प्रयुक्तावर्तते । तैत्तिरीयसंहितायामेव निम्नलिखिताः परिभाषाः भाषिताः सन्ति।

दश – १०
शत - १०० (१०)[२]
सहस्र - १००० (१०)[3]
अयुत - १०००० (१०)[4]
नियुत - १००००० (१०)[5]
प्रयुत - १०००००० (१०)[6]
अबुर्द - १००००००० (१०)[7]
न्यर्बुद १०००००००० (१०)[8]
समुद्र -१००००००००० (१०)[9]
मध्य - १०००००००००० (१०)[१०]
अन्त - १००००००००००० (१०)[११]
परार्ध - १०००००००००००० (१०)[12]
उषास - १००००००००००००० (१०)[१३]
व्युष्टि - १०००००००००००००० (१०) [१४]
उद्वेष्यत - १००००००००००००००० (१०)[१५]
उधत - १०००००००००००००००० (१०)[१६]
उदित - १००००००००००००००००० (१०)[१७]
सुवर्ण १०००००००००००००००००० (१०)[18]
लोक - १००००००००००००००००००० (१०)[19]

अत्रेदमपि ध्येयं यत्पूर्व या संख्यानां पारिभाषिकी शब्दावली प्रदर्शिता सा तु अंकानां व्यक्तीकरणप्रणाली वर्तते। किन्तु इत्थमपि दृश्यते यद् अंकबोधकःशब्दः कतिपयेषु स्थलेषु

[1] यजु. सं.१७/२
[2] तै.सं. ४/४०/११/४
[3] का.सं. १७/१०
[4] मै.सं. २/८/१४

भाषार्थमेव प्रयुज्यते। यथा ऋग्वेदे वर्षबोधनार्थ द्वादश इति शब्दः प्रयुक्तः यथा-

"देवहिति जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्रमिनन्त्येते।
सम्वत्सरे प्रावृष्यागतायाम् तप्ता धर्मा अनुवतेविसर्गम्" ॥[1]

नरो नेतार एति मंडुका देवहिति देवे कृतं विधानमस्वतोरयं धर्म इत्येवंजुगुपुः गोपायति। काले काले रचति । अत एव द्वादशस्य द्वादशमासात्मकस्यसंवत्सर ऋतुं तं तं वसंतादिकं न प्रमिनंति। न हिंसति। पर्जन्यस्तुतिरनुमोदनेनतत्तत्काले वृष्टिहेतवो भवंतीत्यर्थः संवत्सरे संपूर्ण प्रावृषि वर्धतावागतायामागति। सति धर्मः पूर्वं धर्मकाले वर्तमानास्तप्तास्तास्तास्तापेन पीडिताः संप्रतिविसर्ग विसर्जन विलान्मोचनमश्रुवति प्राप्नुवंति।

एकविंशतिसंख्यकऋषीणां समूहस्य बोधनाय अथर्ववेदे "त्रिषप्त"इति शब्दः प्रयुक्तोऽस्ति यथा – **"ये त्रिषप्ताः परियति"**[2]

अपरञ्च भाषायाःप्रयोगोङ्कऽस्य अंकानां वा कृतेऽपि कृतो वर्तते। यथा१/१६ संख्यायाः कृते कला इति प्रयोग तथा च १/१२ संख्यायाः कृतेकुष्टः तथा १/४ इति संख्या बोधनार्थ शफ इति शब्द प्रयोगो दृश्यते। अन्यच्च शतपथ ब्राह्मणे ४ इति संख्यायाः कृते 'कृत' इति शब्दः प्रयुक्तः (श.प.ब्रा.१३/३/२/१) एवमेव ४ इति संख्याबोधक: कृत शब्दः अन्यत्र ब्राह्मणेऽपि प्रोक्तो यथा "ये वै चत्वारः स्तोमाः कृतं तत् । लाटायनश्रौतसूत्रेऽपि २४, ४८ अनयोः सूचनार्थं क्रमशः "गायत्री **(चतुर्विंशतिवर्णात्मकं छन्दः)** तथा च सावित्री **(अष्टचत्वारिंश वर्णात्मकछन्दः)** इति शब्द द्वयस्यप्रयोगः कृतः ।

वेदेषु संख्यानां कथनं योगान्तर गुणन क्रियाभिरपि क्रियते स्म। उदाहरणानि यथा –[3]

योगद्वारा ३३३९ संख्यानां कथनं निम्नलिखित प्रकारेण कृतमस्ति।

"त्रीणी शता त्रीसहस्राणि त्रिंशच्च नव च"

अर्थात् ३०० + ३००० + ३० + ९ = ३३३९।

ऋणक्रमद्वारा १९, २९, ३९ इत्यादि संख्या बोधयितुं विधिर्यथा-एकोनविंशत अर्थात् २० - १ = १९एकोन त्रिंशत् अर्थात् ३० - १ = २९

एकोन चत्वारिंशत अर्थात् ४० - १ = ३९

गुणनद्वारा संख्या बोधोऽथर्ववेद विधिना यथा-

---

[1] ऋ.सं. ७/१०३/३ सायणभाष्य पृ०-२१३

[2] अथ.वे.सं. १/१/१ ऋ. वे. सं. ३/९/९ तथा १०/५२/३

[3] ला.श्री.सू. ९/४/१३

२१ एकविंशतिरिति संख्यामभिव्यडयितुं कथ्यते त्रिसप्त अर्थात्

३x७ = २१ इति।

यदि चतुर्णां सरलनियमानां (योग ऋण गुणन भजन) वैदिकवाङ्मयाधारीकृत्य विवेचनं क्रियते तदैतेशां शब्दानां प्रयोगास्तत्र कृताः सन्तीति कथनेनास्त्यसङ्गतिः। वेदाङ्गज्योतिषे योगः (+)इति पदस्य कृते युक्त सहितइत्यादि पद प्रयोगः कृतो वर्तते। वियोगस्य (-) कृते ऊन इति शब्दःगुणनस्य (x) कृते गुणन अभ्यास इति पदद्वयं भागस्य (÷) कृते भाग इति शब्दः प्रयुक्तो दृश्यते।

यजुर्वेदस्य **"एका च मे तिश्रश्चमे"** इत्यादि मंत्रेषु तद् भाष्योक्तदिशा इदमेवावबुध्यते यदङ्कबीजरेखेति भेदत्रयेण यद् गणितविद्यायास्त्रैविध्यं कथितं विद्यते अथ च ये संख्यानां नामानि कृतानि तैरेव तासां द्योतका अङ्का (चिह्नानि) श्च स्मरणार्थ लाघवेन लेखनार्थं वा कल्पिताः। ते च एकादिनवान्तानांमिथो विलक्षणास्तेषामेव न्यास विशेषास्तथा च नवाग्रिमाणामकानां च बोधनार्थयेऽङ्कास्ते च न्यासविशेषा महत्याऽनुपमया शैल्या कृता सन्ति। एतद् विषयेकिञ्चिदुल्लिख्येत। एकस्यैव एककस्य द्योतकः १. एक द्वयस्य २. एकत्रयस्य इत्यादयोऽङ्काः निर्धारिताः। यत्र च संख्याऽभावस्तत्र (०) अयमङ्कःज्ञापितः। वैदिक काले उपर्युक्तानां योगादि चतुर्विधगणितानां कृते कीदृशाःविधय आसन् एतद् विषये इतिहासविदः नेदानीं यावद् विषये किमपिप्रमाणामुपस्थापयन्ति, किन्तु तेषामिदं मतं वर्तते। यद् परवर्तिनो विद्वांस आमनन्ति यद् योगादिगणितक्रियाणां समुपपादनं परम्परागत विधिनैवक्रियते।

योगः

"योग" इत्याख्यस्य गणित कर्मणः प्रकार द्वयं वर्तते।

१. प्रथमस्तावत् क्रमविधिः

२. द्वितीयस्तु उत्क्रम विधिरिति।

"श्रीमद् भास्कराचार्येणोक्तं लीलावत्यां यथा-

"कार्यः क्रमादुत्क्रमतोऽथवाङ्कः योगो यथा स्थानकमन्तरं वा"[1]

अत्रेदं ज्ञेयं यत् संख्ययोः संख्यानां वा मेलनेन या संख्या भवति तमेव योगं गणितज्ञाः कथयन्ति। तस्य योगस्य ज्ञानाय या क्रिया क्रियते तदेवसंकलन कर्मोच्यते। अत्र सुस्पष्टं यत् संख्याया मानं तदेव भवति यावन्तस्तस्यामेककाः सन्ति।

अत्र कयोश्चित केषाञ्चिद् वा संख्ययोः संख्यानां योगस्तावती किलसंख्या स्यात्। यथा योज्यसंख्यायां यावन्त एककाः स्युः तथा योज संख्यायांयावन्त एकका भवेयुस्तान् सर्वान् एककान् एकत्रीकृत्य यावन्त एकका भविष्यन्ति यथा ९, ६ अनयोयणो ज्ञातव्योऽस्ति (९) अत्र १, १, १,

[1] लीलावती श्लो. सं. ४ (सं.व्य.प्र.)

१, १११११

एते एकका सन्ति। तथा (६) अत्र १ १ १ १ १ १ एते सन्ति।अतः ९, ६ इत्यनयो रेकका मिलित्वा १११११११११११ १११ एतेभवन्ति। एतान् गणयित्वा एते १५ पंचदश भवन्तीति अवगम्यते। यदि इमौ९, ६ अंकौ दशबोधको स्थानां तथा योगे कृते पंचदश दशकानि स्युरिति ज्ञायते। इत्थं योगोवगम्यते तत्र क्रमविधिः यथा—

	३२५		
	१२५	उत्क्रमविधिः यथा	
योगफल	४५०	३२५	४४०
	१२५	४५०	

अन्यच्चोत्क्रमविधिर्यथा

प्रश्नः २, ५, ३२, १९३, १८, १० तथा १०० एतेषां योगफलम्किमिति जिज्ञासायां प्रथमं एककानां योगः। तदनन्तरं दशकानां योगः तदुत्तरंशतकादीनां योगः पृथक पृथक् कार्यः। पुनश्च एतान् पृथक पृथक् योगफलांकान् स्थानमानमनुसृत्य अभिलम्बवल्लिखित्वा योजयेत्।

अत्र क्रमोत्क्रमोभयविधस्य योगस्योदाहरणमुपरि लिखिताङ्कानां प्रदर्श्यते।[1]

१. एककानां योगः	१०+१०	= २०
२. दशकानां योगः	३०+९०+१०+१०+०	= १४०
३. शतकानां योगः	२०+५०+२०+३०+८०+०+०	= २००
	योगफलम्	**= ३६०**

अत्रेदं कथनं युक्तियुक्तं स्याद् यदंकानां वामतौगतिरिति नियमेनएकस्थाननादि योजनं क्रमः। उत्क्रमस्तु- अन्त्यस्थानादि योजनामिति।

व्यवकलनम् :-

अनन्तरं ऋणं शोधनं ऊनमित्यादिनि पदानि व्यवकलनस्यैव पर्यायबोधकानि सन्ति। अथ च यथा 'यथा' स्थानस्थितानामकानामयति एकस्थानीयांकानामधः एकस्थानीयांकान् दशम् स्थानीयांकानामधः दशमस्थानीयांकान्संस्थाप्य तत्तत्समस्थानीयांकैः तत्तत्समस्थानीयांकान् संस्थाप्य तत्तत्समस्थानीयांकैः तत्तत्समस्थनीयांकानां योगः क्रियते तथैव अनन्तरं कार्यम्।[2]

अत्रेदमुल्लेखनीयं वर्तते यद् योगान्तरक्रियासम्पादनार्थं क्रमोत्क्रमविधिः कदाप्रभृति प्रचलितः एतद् विषये किमपि निश्चितं कालनिर्धारणं कर्तुं नशक्यते, न चेदमेव कथितुं शक्यते यद् वैदिक युगे अयं विधिर्नासीत्।

[1] हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास पृ०-१२४

[2] लीलावती (सं.व्य.अ.) श्लो. ४

अनुमेतुं शक्यते वैदिक युगे अस्य विधेर्ज्ञानं वा तदारंगिक स्वरूपावधारणं तत्प्रयोगश्च तात्कालिकेगणितज्ञैः क्रियन्ते स्म। योगविधिना संख्यामवगन्तुप्रकारः ऋग्वेदे[1]

"त्रीणि शता त्री सहस्राग्निं त्रिंशच्च देवा नव चा सर्पयन् "

अर्थात्- ३०० त्रीणिशता

३००० त्रीसहस्राणि

३० त्रिंशत्

९ नव

= ३३३९ अत्रस्थानमानमेव विशेषतयाध्यातव्यम्। अतो नेन स्पष्टं जायते यद् वैदिककालिकगणितज्ञा **"अङ्कानां वामतो गतिरिति "**सिद्धान्तं जानन्ति स्म। योगस्य वियोगस्य च संकेतः अथर्ववेदे[2] दृश्यते यथा-

"पूर्णात पूर्णमुदचति पूर्ण पूर्णेन सिच्यते।
उतो तदध विद्याम् यतस्तत् परिविच्चते ।।"

गुणनम् :-

गुणनगणितक्रियायाः ज्ञानं वैदिककालिकगणितज्ञेषु आसीत्। अथर्ववेदस्यप्रथमे एव मन्त्रे "ये त्रिषप्त" इत्युक्त्वा ७ x ३= २१ अस्यस्वरूपस्य ज्ञानंकारितम्। गुणनसिद्धान्तमेव आधारीकृत्यकादिगुणिताङ्कगणना क्रमोनिर्मितः। एतेषां गणनाक्रमाणां प्रत्यक्षोऽप्रत्यक्षो वा उल्लेखो वेदेषु प्राप्यते। यथा[3] - यजुर्वेद संहितायांश्चतुरंकगणना (एकादिगुणितः) क्रमः सुस्पष्टरूपेण अस्माभिः प्राप्यते। यथा-

१. चतस्रश्चमेऽष्टौ च मेष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्चमे चतुर्विंशतिश्चमेऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्चमेंद्वात्रिंशच्चमे षटत्रिंशच्च मे षटत्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। अर्थात्-

४तथा ४	अर्थात् ४ x २	= ८
८तथा ४	अर्थात् ४ x ३	= १२
१२ तथा ४	अर्थात् ४ x ४	= १६
१६ तथा ४	अर्थात् ४ x ५	= २०
२० तथा ४	अर्थात् ४ x ६	= २४
२४ तथा ४	अर्थात् ४x ७	= २८

[1] ऋ. वे. ३/९/९ तथा १०/५२/६
[2] अथ.वे.सं. १०/८/२९
[3] यजु. वे.सं. १८/२५

२८ तथा४	अर्थात् ४ x ८	= ३२
३२ तथा ४	अर्थात् ४x ९	= ३६
३६ तथा४	अर्थात् ४ x १०	= ४०
४० तथा४	अर्थात्४x ११	= ४ ४
४ ४तथा४	अर्थात्४ x १२	= ४८

इत्यादयो मे यज्ञेन सम्पन्ना भवेयुरिति। इत्यमेव ऋग्वेदस्याऽपि एकस्मिन्मन्त्रे गुणन सिद्धान्तस्याऽप्रत्यक्षोल्लेखोऽवलोक्यते। यथा[1]

"अग्ने त्वं पारया नव्यो असमानस्वस्तिभिरतिदुर्गाणिविश्वा।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उव भवा तो काय तनयाय शं योः" ॥

अस्मिन् मन्त्रे उक्तं वर्तते यत् हे अग्ने त्वं (९) नवांकसमः पूर्णोऽसियथा भव (९) इति संख्या एकादिगुणितनवान्तं यावत् पूर्णा आसित् तथैवत्वमसि।

यथा परमात्मा सर्वत्र विद्यमानोऽस्ति तथैव एकादिगुणित नवान्तं यावदयं (९) नवांक: विद्यमानो वर्तते। अत्र तत्स्वरूपं प्रदर्यश्ते-

९ x १ = ९			
९ x २ = १८	=	१+८	= ९
९ x ३ = २७	=	२+७	= ९
९ x ४= ३६	=	३+६	= ९
९x ५= ४५	=	४+५	= ९
९ x ६ =५४	=	५+४	= ९
९ x ७ = ६३	=	६+३	= ९
९ x ८ = ७२	=	७+२	= ९
९ x ९= ८१	=	८+१	= ९
९ x१०=९०	=	९+०	= ९

अनेन ज्ञायते

यन्नवांकः स्वगुणांकेषु सर्वत्र विराजते। वैदिके युगे कीदृशो गुणन विधिरासीदित्यस्मिन् विषये न किमपि कथितुं शक्यते [2]। परवर्तिषु साहित्येषु गुणनविधिना वर्णनं प्राप्यते। यथा कपाटसन्धिविधिः तिर्यगगुणनविधिः स्थानखण्डनगुणनविधिः गोमूत्रिकाविधिः रूपखण्डविधिः बीजीयविधिरित्यादयः।

भजनम् भागहारो वा

[1]. वे.सं. १/१८९/२

[2] पाटीगणित का इतिहास म.म. सुधाकरद्विवेदी

भागहारस्योल्लेखो ऋग्वेदोक्त मन्त्रेणाऽवगम्यते । यथा[1]

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवाभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते ।।

मन्त्रेऽस्मिन् प्रयुक्तो भाग शब्दः भागहारमिति संकेतयति वैदिककालेभागहारस्य कीदृशी पद्धतिरासीत् अस्योल्लेखो न दृश्यते इत्थं गणितिकाःकथयन्ति । भागहारक्रियायाः प्रथमोल्लेखः श्रीधरकृतत्रिंशतिकाख्ये कृति विशेषे प्राप्यते । अतोऽनुमतुं शक्यते यदयमेवविधि स्त्तकालेऽपि प्रचलित आसीत्।

वर्गं वर्गमूलञ्च -

वर्गं वर्गमूलञ्च आर्याः जानन्ति स्म यद्यपि वर्गपरिभाषा वैदिकसाहित्येनोपलभ्यते परन्तु वर्गाकारभवनादिनिर्माणविधिं विदन्ति स्म । वर्गपरिभाषा "आर्यभट्टेन" इत्थं कृता यथा[2] -

"वर्गः समचतुरस्रः फलञ्च सदृश द्वयस्य संवर्गः"

अर्थात् यस्य क्षेत्रस्य चत्वारः कोणा भुजाश्च समाः स्युः तत् समचतुरस्रसंज्ञकं क्षेत्रं वर्गं इति संज्ञकं भवति । अथ च क्षेत्रफलं तथा समयोः संख्याद्वययोर्गुणनफलं च 'वर्गं' इति कथ्यते। समचतुरस्र इत्यस्योल्लेखः शुल्वसूत्रेष्वपिकृतोऽस्ति। वर्गविधानसंकेतस्तु अस्माभिर्यजुर्वेदेऽपि दृश्यते [3]। यथा

"एका च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मे एकादश च मे एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदशच मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मे एकविंशतिश्च मे एकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे एकत्रिंशच्च मे एकत्रिंशच्चमे त्रयस्त्रिंशयच मे यज्ञेन कल्पन्ताम्"।

एतेषु मन्त्रेषु या अंकश्रेणी कथिताऽस्ति एतस्याः सम्बन्धो वर्गेण सह वर्तते । उक्तेयं श्रेणी तु निम्नलिखितप्रकारेणाऽवबुध्यते यथा-

१,३,५,७,९,११,१३,१५,१७,१९, २१,२३,२५, २७,२९,३१,३३।

प्रदर्शितायाः श्रेण्याः कस्याश्चिदपि संख्याया: वर्गं ज्ञातुं शक्नुमः यस्याःसंख्यायाः वर्गंज्ञानमभीष्टं स्यात् तदा श्रेण्याः तावन्त एव अंकाः ग्राह्याः । तेषांयोग एव तत्संख्यायाः वर्गं स्यात्। कल्प्यतां तावत् ६ षड् इति संख्यायावर्गंमपेक्षते तदा श्रेण्याः प्रथमतः (६) संख्याः १,३,५,७,९,११ इति यावत्यदि योज्यन्ते तदा तेषामंकानां योग एव (६) षट् संख्यायाः वर्गो भवेत्

[1] ऋ.वे.सं. १०/१२१/२
[2] आर्यभटीयम् ग.वा.श्लो. ३
[3] यजु.वे.सं. १८/२४

।१+३+५+७+९+११ = ३६ इत्युपपद्यते। अयमेव योग (६) = ३६ इति सिद्धयति।

अन्यच्च यदि (११) अस्या कस्या वर्गोऽपेक्षितो भवेत् तदा प्रथमतोर्थात्एकतः एकादश संख्यां यावत संख्यानां योगः कार्यस्तदेव योगफलमेकादशसंख्याया: वर्गः स्यात्।

यथा- १+३+५+७+९+११+१३+१५+१७+१९+२१ १२१

इदमेव योगफलं ११ अर्थात् समद्विघातश्च वर्गः स्यात्

$(११)^२$ = १२१ इति।

उपर्युक्त मन्त्रान्ते "यज्ञेन कल्पन्ताम्" इति पदमायाति । अनेन ज्ञायतेयदस्य वर्गं विधानस्योपयोगः वेदिकानिर्माणे क्रियते स्म। यतोहि यज्ञवेदिकाःवर्गाकाराः भवन्ति।

अपरञ्च यजुर्वेदे एव दशगुणोत्तर श्रेणीषु "अग्न इष्टका [1] पदमपिदृश्यते । येन वर्गाकारयज्ञकुण्डस्य इष्टकासंख्याः ज्ञायन्ते स्म । पूर्वसंकेतितस्य "इमा मेऽअग्नऽइष्टका" इत्यादि मंत्रस्य भावार्थोऽयमेव यद् यथा सुसेवितागावो दुग्धादिदानेन सर्वान् सन्तोषयन्ति तथैव वेधां संचिता इष्टका वृष्टिहेतुकाभूत्वा वृष्टयादिद्वारा सर्वानानन्दयन्ति । मनुष्यैरेका संख्या दशवारं गुणिता सति दशसंज्ञां लभते। दश दशवारं संख्याताः शतं, शतं दशवारं संख्यात सहस्रंसहस्रं दशवारं संख्यातमयुतं तथाऽयुतंदशवारं संख्यातं नियुतं नियुतं दशवारंसंख्यातं प्रयुतं प्रयुतं दशवारं संख्यातं कोटिदशवारं संख्याता दश कोटयस्तादशवारं संख्याताः खर्वः खर्वोदश वारं संख्यातो निखर्वो निखर्वो दशवारंसंख्यातो महापद्मो महापद्मो दशवारं संख्यातः शंकुः शकुः दशवारं संख्यातःसमुद्रः समुद्रो दशवारं संख्यातो मध्यं मध्यं दशवारं संख्यातमन्तोऽन्तो दशवारंसंख्यातः परार्द्ध एताः संख्या उक्ताः । मन्त्रोक्तेरेनेकैश्च असंख्या अपि अंकबीजरेखा प्रमूलयो यथावद् विज्ञेया। यथाऽस्मिल्लोके इमाः संख्याः सन्ति तथाऽन्येषुअपि लोकेषु वर्ततन्ते। अथ यथा अत्र एतत्संख्याभिः संख्याता इष्टका:सुशिल्पिभिश्चिता गृहाकारा भूत्वा शीतोष्णवर्षावाटवादिभ्यो मनुष्यान् रक्षित्वा आनन्दयन्ति तथैवहुत यो जलवाटवोषधीभिः संहत्य सर्वान प्राणिन आनन्दयन्तिइति[2]।

❐

[1] यजु.वे.सं. १७/२

[2] आर्य. भ. ग. पा. श्लो.-३

सांस्कृतिकपरम्परासंरक्षणे संस्कृतस्यावदानम्

डॉ. अंकितातिवारी*

शोधपत्रसारः- *अभिवनशिक्षानीतौ भारतीयज्ञानपरम्परायाः महत्त्वं सर्वजनवेद्यमस्ति | तद्रीत्या अस्यां भारतीया संस्कृतिरपि सङ्कलिता भवति | इयं संस्कृति: भारतस्य गौरवं सम्पूर्णे जगतीतले ख्यापयति| अतः अस्या: भारतीयसंस्कृत्याः संरक्षणे संस्कृतज्ञानराशेः उत संस्कृतभाषायाः किं योगदानमिति पत्रेऽस्मिन् संक्षेपेण विचार्यते| तत्रादौ वैदिकसंस्कृतस्य योगदानं पश्चाच्च लौकिकसंस्कृतस्य योगदानमत्र प्रस्तूयते|*

कूटशब्दाः- *संस्कृतिः, सांस्कृतिकम्, संरक्षणम्, वैदिकसंस्कृतसाहित्यम्, लौकिकसंस्कृतसाहित्यम्, सभ्यता, मूल्यम्|*

आमुखम्- कस्मिंश्चित् देशस्य क्षेत्रस्य वा मानवानां परस्परव्यवहारः तेषां धार्मिकमान्यता-व्यवस्थितजीवनपद्धतिर्नामसंस्कृतिः। व्याकरणदृष्ट्या अस्याः व्युत्पत्ति: सम् उपसर्गपूर्वकं कृ धातो: क्तिन् प्रत्यये कृते भवति| संस्कृते: संबद्धं सांस्कृतिकमिति 'सांस्कृतिक' पदस्यार्थः लभ्यते । मानवानाम् आन्तरिकं बाह्यं च उभयविधक्रियानिष्पादनं संस्कृतिर्कथ्यते । अस्यां नैकानि तत्त्वानि परिगण्यन्ते। यथा- परम्परं कल्याणभावना, अन्योन्यस्य सहकारिता, विदुषां वृद्धानां चादरम्, स्त्रीणां सम्मानः, मातृपितृसेवा, समत्वभावः, आत्मोत्कर्षार्थम् आध्यामिकं चिन्तनम् ,आचारः, भाषा:, परिधानम्, कलाकौशलादयश्च। एतेषां समेषां संरक्षणे संस्कृतज्ञानराशे: महद्योगदानं विलोक्यते | अस्माकं देशे भाषाणां वैविध्यं, भोज्यपदार्थपार्थक्यं, परिधानानां भिन्नता केवलं न, अपितु क्षेत्राधारेण स्वरूपाणामपि पार्थक्यं दृष्टुं शक्यते। तदपि भारतीया संस्कृतिः अस्मान्भारतीयत्वरूपात्मके एकस्मिन्सूत्रे योजयति। इयमेव अस्माकं एकता सम्पूर्णस्य विश्वस्य कृते भारतस्य महत्वं ख्यापयति | येन कारणेन विश्वेऽस्मिन् भारतस्य प्रतिष्ठा सा संस्कृतिः कुतः कस्मात् वा प्राप्ता? के वा अस्याः आदिग्रन्था:? इति जिज्ञासा सर्वेषां मनसि यदा जायते तदा अस्माकम् आदिज्ञानराशेः वेदानां मूलत्वं निर्विवादेन स्वीक्रियते| अस्यां संस्कृतौ सनातनधर्मस्यापि समावेशः भवति। सनातनधर्मस्य आधार: वेदाः एव। तत्र मानवजातेः आचार-व्यवहारादीनां सर्वविधरूपेण प्रतिपादनमस्ति। वेदानां तदाधारीकृत्य लिखितानां ब्राह्मण-आरण्यक – उपनिषदां, दर्शनानां, रामायणमहाभारतादीनां काव्यानां, धर्मशास्त्र-अर्थशास्त्रादीनां, किं बहुना चतुर्दशविद्यानां च इत्येषां सर्वेषां भाषा संस्कृतमेवास्ति? अतः सांस्कृतिकपरम्परासंरक्षणे यावत्संस्कृतस्य योगदानं विलोक्यते तावत् अन्यस्य कस्यापि? अभिनवभारतीयशिक्षानीतौ शिक्षाविद्भिः

* Assistant prof. (Dept. of Sanskrit), Dr. S.P.M. Govt. Degree College, Bhadohi, UP, Email-at.bhu.5432@gmail.com

भारतीयज्ञानपरम्पराया: महत्त्वं विज्ञाय अमुं विषयं केन्द्रीकृत्य शिक्षानीति: निर्मिता| अस्यां ज्ञानपरम्परायां भारतीया संस्कृतिरपि भारतस्य प्राणभूतं तत्त्वमस्ति| अतः भारतीयसांस्कृतिकपरम्परायाः संरक्षणे संस्कृतस्य योगदानं स्थालीपुलकन्यायेन संदर्शयते।

वैदिकसाहित्यस्यावदानम् –

संस्कृतस्य स्थूलरूपेण द्विविधः विभाजनं कर्तुं शक्यते तत्र वैदिकसंस्कृत साहित्यम्, लौकिकसंस्कृतसाहित्यञ्च| वैदिकसंस्कृतसाहित्ये ऋग्वेदादारभ्यः उपनिषदां यावत् यत्किमपि साहित्यमस्ति तत् परिगण्यते| लौकिकसाहित्ये च वाल्मीकिरामायणतः सांप्रतिकं यावत् लिखितस्य साहित्यस्य गणना भवति| साहित्येऽस्मिन् तत्तत्कालिकं सांस्कृतिकं महत्वं प्रतिपादितमस्ति |

भारतीयसनातनसंस्कृतौ आत्मतत्वस्य परिगणनं भवति । तत्र परमात्मनः अंशभूतः जीवात्मा कथ्यते। अस्यात्मतत्वस्योत्पत्ति: परमात्मन: अंशरूपेण भवतीति यथोक्तम्- तैत्तिरीयोपनिषदि-

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।[1]
येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।

किञ्चास्यैव आत्मनः शाश्वतसत्ता विनाशाभावश्च प्रतिपादितं मिलति महाभारतोक्तश्रीमद्भगवतगीतायाम्-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।[2]
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो- न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

भारतीया संस्कृतिः धर्माधारितम् अस्ति। धर्मस्य रक्षा वर्णव्यवस्थाद्वारा भवति । तेषां वर्णानां कया रीत्या समुद्भवः जायते इति ऋग्वेदे लिखितम्-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य: कृत:।[3]
ऊरू तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्यां शुद्रोऽजायत।।

इयं संस्कृतिः त्यागभावनां विकसति तथा आध्यात्मिकीं जीवनपद्धतिञ्च विकसति। अत्र संग्रहस्य भावना नास्ति जीवाय त्यागपूर्वकं भोगस्य निर्देशः मिलति। अतः लिखितम् ईशावास्योपनिषदि-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।[4]
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

---

[1] 3-1-1- तैत्तीरीयोपनिषद्
[2] 02-20-श्रीमद्भगवद्गीता
[3] 10.90.12-ऋग्वेदसंहिता
[4] 01-ईशावास्योपनिषद्

पंचतत्त्वात्मकमस्मदीयं शरीरमिति वैज्ञानिकैरपि स्वीक्रियते। तत्र अग्नितत्त्वमपि एकम्। अस्य तत्त्वस्य महत्तां विज्ञाय ऋग्वेदस्य आदिमं मन्त्रमग्नितत्त्वस्य स्तुतिरूपम् –

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्नधातमम्।[1]

एवमेव वैदिकसाहित्ये ज्ञानस्य महत्त्वं विज्ञाय निजगाद मंत्रदृष्टा - **'विद्ययामृतमश्नुते'**[2] अर्थात् अस्मिन् जगति यदि अमृततत्त्वस्य आशास्ति तर्हि तत् विद्यया प्राप्तुं शक्यते| मानवानां जीवनस्याधारभूतं तत्त्वम् अन्नमस्ति। अतः- **'अन्नं ब्रह्म, अन्नं न निन्द्यात्'**[3]इत्यादिकै उद्घोषैः अन्नस्य उपादेयता कीर्तिता। भारतीयसंस्कृत्यानुसारेण जीवने निःस्वार्थरूपेण त्रयः जनाः उत्कर्षं जीवस्य वाञ्छन्ति तत्र माता पिता गुरुश्च। अत: भारतीयसंस्कृति -संरक्षणे वेदः कथयति-

मातृदेवो भव ,पितृ देवो भव,आचार्य देवो भव।[4]

एवमेव बहुत्र भारतीयसंस्कृतेः संरक्षणार्थं वैदिकसाहित्ये वर्णनमस्ति।

लौकिकसाहित्यस्यावदानम्-

'यतो धर्मः ततो जयः' इत्यपि भारतीयसंस्कृतेरुद्घोष:। अतःधर्मविषये बहुचर्चितं अस्माकं शास्त्रेषु तत्र धर्मस्य नैकाः भेदाः मिलन्ति। धर्मस्य परिभाषापि लौकिकसाहित्ये बहुधा कृता वर्तते। महर्षिवाल्मीकिना रामायणे भगवतः श्रीरामचन्द्रस्यादर्शचरित्रं वर्णितम्। तत्र प्राधान्येन भारतीय-सांस्कृतिकपरम्परासंरक्षणे बहुधा वर्णनं मिलति। यथा रामस्य पितृभक्तिः, पुत्रप्रेमः, स्वामिभक्तिः भातृस्नेहः, सत्यनिष्ठा, धर्मपरायणता, सदाचारः, कर्तव्यनिष्ठा च। अन्यान्यपि बहूनि सांस्कृतिकमूल्यानि वर्णितानि विलोक्यन्ते। तत्र प्राधान्येन वर्णितमस्ति यत् अन्ततः न्यायस्य विजयः अन्यायस्य पराजयः। अधुना पश्चिमीसभ्यतायां जनाःस्वार्थनिष्पादनपराः दृश्यन्ते। रामायणे श्रीरामस्य वनगमने सीतापि तेन सह दुर्गमक्षेत्रे वने वा गच्छति स्म। अतः आधुनिकसमाजकृते अयं संदेश: अस्ति यत् भर्तु: विपद्गतेऽपि तस्य त्याग: न करणीय: ।रामायणे लिखितं यत् राज्ञः अभावे निर्बले वा राज्ये सर्वम् असुरक्षितं भवति-

नाराजके जनपदे नराश्शास्त्रविशारदाः।[5]

संवदन्तोऽवतिष्ठन्ते वनेषूपवनेषु च।।

एवमेव रामायणस्य वाक्यानि अधुनापि समाजं प्रेरयन्ति। यथा-

---

[1] ऋग्वेद: 1.1.1

[2] ईशावास्योपनिषद् 11

[3] बृहदारण्यकोपनिषद्

[4] तैत्तिरीयोपनिषद्

[5] बाल्मीकिरामायणम् 2.67.26

उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु ।[1]
उत्साहमात्रमाश्रित्य सीतां प्रतिलभेमहि ।।

साम्प्रतिकं स्वार्थकारणात् मानवाः मूल्यरहिताः दृश्यन्ते । गृहेषु नैकाः कलहवृत्तान्ताः भवन्ति। भ्रातारः परस्परं द्वेषभावं विकसन्ति। किञ्च भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य भातृस्नेहः नूनमेव अस्माकं भारतीयसंस्कृतिं संरक्षयति। यथोक्तं रामायणे-

देशे देशे कलत्राणि,देशे देशे च बान्धवाः।[2]
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ।।

रामस्थ आदर्शचरित्रं निश्चितमेव अनुकरणीयम्।तत्र रावणस्य मृते सति विभीषणं कथयति-

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।[3]
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।

समाजे अज्ञानस्य चरमोत्कर्षः सत्वेऽपि सर्वे पण्डितमन्यः गर्वेण अहङ्कारेण वा युक्तः सन् भ्रमन्ति। ज्ञानाभावेऽपि परान् शिक्षयति। अज्ञानेऽपि जिज्ञासा न कुर्वन्ति।परंच अस्माकं भारतीयसंस्कृति तु विदुषः सर्वथा मानं कर्तुं प्रेरयति तथा ज्ञानसत्वेपि नम्रतायाः आचरणं शिक्षयति। रावणस्य पृथ्वियां पतिते सति श्रीरामः ज्ञानार्जनाय लक्ष्मणमादिशति । गच्छ लक्ष्मण! रावणः महाज्ञानी पंडितः। अतः तस्मात् ज्ञानं स्वीकुरु इति।

भारतीयसांस्कृतिकपरम्परासंरक्षणे महाभारतस्यापि महत्त्वपूर्णं योगदानमस्ति। यत्र न केवलं राजनीतिविषयकं ज्ञानमस्ति अपितु तत्र पारलौकिकं, आध्यात्मिकं, सामाजिकं, सांस्कृतिकं, व्यावहारादिकं सर्वविधज्ञानं विद्यते । भीष्मपर्वणि निगदिता भगवता श्रीकृष्णेन श्रीमद्भगवद्गीता आधुनिकसन्दर्भे भारतीयासंस्कृतेः मन्ये तावत् मूर्तरूपमेवास्ति ।एतदतिरिक्तं महाभारतस्य विषये लिखितमस्ति-

यदिहास्ति तदन्यत्र । यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्[4]

वर्णव्यवस्था विषये संस्कृते तादृशं पार्थक्यं न वर्णितं यादृशं अधुना समाजे दृश्यते । तत्र कर्माधारेण वर्णनिर्धारणं भवति तथा प्रत्येके मनुष्ये चतुर्णां वर्णानां समावेश भवति। इत्यपि बहुत्र मिलति। अस्यैव समर्थनं गीतायां भगवता कृष्णवाक्यमिदमायाति-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।[5]
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।

---

[1] वाल्मीकिरामायणम् 4.1.122
[2] युद्धकाण्डः –श्रीमद्वाल्मीकिरामयणम् 56-13
[3] युद्धकाण्डः –श्रीमद्वाल्मीकिरामयणम् 99.39
[4] स्वर्गारोहणपर्व –महाभारतम् 5.50
[5] श्रीमद्भगवद्गीता 4.13

गीतायां मानवानां कृते बहुसम्यक् जीवनमार्गरूपात्मकः उपदेशः वर्णितः। तत्र उपस्थापितः कर्मयोगः यथा 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु (श्रीमद्भगवद्गीता) इत्यादिकः मानवानामं निष्कामकर्मं कर्तुं प्रचोदयति यस्तु भारतीयासंस्कृत्याः परमोपदेशः।अस्माकं संस्कृतिः आत्मन: अमरत्वं अजरत्वादिं स्वीकरोति अतः गीतायां –

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।[1]

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

भारतीयासंस्कृतिः पुरुषार्थचतुष्टयस्य पोषिका वर्तते।

धर्मस्य विषये यथा –

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्,[2]

धर्म त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः[3]

अर्थस्य महिमा अपि दर्शनीया-

धनमाहु परमं धर्म,धने सर्वं प्रतिष्ठितम्।

जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः।।[4]

एवमेव महाभारते सर्वविधरूपेण भारतीयासंस्कृतिसंरक्षणं दरीदृश्यते ।

संस्कृतमहाकाव्यानि भारतीयासंस्कृत्याः विपुला प्रचारकाः । तत्र रघुवंशमहाकाव्ये कालिदासेन बहुविधरूपेण संस्कृत्याः स्वरूपं दर्शितम्।जीवरक्षार्थं राज्ञः प्राणत्यागे तत्परता निश्चितमेव अंहिसाधर्मस्य पोषिका संस्कृत्याः प्रकाशिका च ।

सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण न्याय्या मया मोचयितुं भवत्तः।[5]

न पारणा स्याद् विहता तवैवं भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः।।

यज्ञप्रधानभारतीयासंस्कृत्याः पोषणं रघुवंशे सर्वत्रैव दरीदृश्यते। यथा महाराजा रघु गृहे अभ्यागत: तपोनिष्ठाः ब्रह्मचारिणः यज्ञशालायां निवसितुम् आग्रहं चकार-

'स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये वसंश्चतुर्थोग्निरिवाग्न्यागारे।[6]

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीता 2.23

[2] महाभारत, स्वर्गारोहणपर्व, 5.63

[3] श्रीमद्भगवद्गीता, 3.34

[4] महाभारतम् 5.71.31

[5] रघुवंशम् 2.55

[6] रघुवंशम् 5.25

यज्ञरक्षणार्थं महाराजा दशरथः स्वबालकौ विश्वामित्रेण सह प्रेषितवन्तः रघुवंशे एव क्षत्रियधर्मस्य चर्चा मिलति तस्य शब्दस्य कोऽर्थ: इति तत्र लिखितम्-

क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़ः।[1]
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा||

एवमेव वेदे, उपनिषदि, दर्शने, पुराणे, महाकाव्ये, गद्ये, पद्ये, नाटके सर्वत्रैव विशालसंस्कृतसाहित्ये भारतीयासंस्कृत्याः विशदं स्वरूपं परिलक्ष्यते।यथा-पुरुषार्थचतुष्टयम्, वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था, षोडषसंस्कारपरम्परा, योगः, विज्ञानः, कला, धर्मः, दर्शनं, अर्थशास्त्रं, कामशास्त्रं, व्याकरणशास्त्रं, ज्योतिषं, गणितं,त्रिकोणमिति, पंचयमाः, परोपकारः, पवित्रतायाः भावना, कर्मयोग: इत्यादयः विस्तृतेन चर्चितं विलोक्यते ।

संस्कृतज्ञानाब्धौ भारतीयसांस्कृतिकपरम्परासंरक्षणं पदे पदे मिलति | एकस्मिन् लघुकाये शोधपत्रे तत्प्रतिपादनं उडुपेन सागरतरणमिव| यदि एकैकं ग्रन्थमधिकृत्य अस्मिन् विषये शोधप्रबन्धलेखनं क्रियते तदा शताधिकेषु शोधप्रबन्धेषु अस्य विषयस्य साङ्गोपाङ्गं विवेचनं संभाव्यते| अतः विदुषां अध्येतृणां दिग्दर्शनाय शोधपत्रमिदं अस्मिन् विषये लिखितम्|

निष्कर्षः-

उपर्युक्तवर्णनात् अवश्यमेव स्पष्टं भवति यत् संस्कृतसाहित्यं भारतीयसांस्कृतिकपरम्परायाः लिखितरूपं प्रतिबिम्बं वा संस्कृतसाहित्ये यत् किमपि अस्ति तत् संस्कृतिः – एतत् वक्तुं अतिशयोक्तिः न स्यात्। भारतीयसांस्कृतिकपरम्परा अतीव प्राचीना विशाला च अस्ति ।अपि च संस्कृतसाहित्यपरम्परायाः विपुलता अपि स्वतः एव दृश्यते । अतः प्रस्तुतलेखद्वारा तेषां सह किञ्चित् अपि सम्पर्कः सम्भवः अभवत् । एतेन सिद्धं भवति यत् यदि भारतीयासांस्कृतिकपरम्परा सदा रक्षणीया तर्हि संस्कृतस्य संरक्षणं अनिवार्यम्। यतः संस्कृतिः संस्कृततः अस्ति तथा च वयं भारतीयाः संस्कृतितः एव विद्यते।यदुक्तमेव-'भारते प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतिः संस्कृतस्तथा'।

❐

[1] द्वितीयसर्गे- रघुवंशम्

किरातार्जुनीयस्य पदप्रयोगवैशिष्ट्यम्

डॉ. सुदेष्णादाशः*

भारतवर्षस्य समस्तमपि प्राचीनं वाङ्मयं संस्कृतमाश्रित्यैवावतिष्ठते। ज्ञानस्य विज्ञानस्य न तादृशं किमप्यङ्गम्, यत्रैवौपलभ्यते संस्कृतभाषायाम्। प्राचीनानां ऋषीणां कवीनां तत्त्वज्ञानम् अनारताश्रमस्यैव फलमेतद् यदीदृशं विपुलं संस्कृतवाङ्मयं दृष्टिपथमुपयाति। महाकविभारविः पदानां प्रयोगे स्वपाण्डित्यस्य महत्त्वं विदधाति । अतः भारवेरर्थगौरवमिति सम्मानेन अलंक्रियते । पुनः पदज्ञानेनैव कवेः रचनाकारस्य वा काव्यमार्गस्य निर्धारणं भवति। भारवेः पदप्रयोगः सर्वान् आह्लादयति -

नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते ।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथोचितम्[1]।।

भारवेः नारिकेलफलोपमिता वाक् समाह्लादयति मनोनिलयं विदुषां रसमञ्जरीव । भारवेः विशिष्टपदप्रयोग एवार्थगौरवं स्फुटीकृत्य भारवेरर्थगौरवम् इत्युक्तिञ्चरितार्थीकरोति । यद्यपि भारविः बहुत्र सामान्यमपि पदं प्रयुक्ते तथापि सामान्यं तत् प्रयुक्तं प्रसङ्गानुसारेण तादृशं गभीरमर्थ बोधयितुमशक्तं सत् शक्तं पदं इति परिभाषितं चरितार्थीकुर्वत् भारवेरर्थगौरवमिति अभियुक्तोक्तिं न्याय्यत्वं प्रापयति । अर्थगौरवञ्च नाम अल्पीयाभिः पदैः विपुलानां भावानामभिव्यक्तिः इति ।

एतादृश्याः स्फुटताया विषये भारविः स्वयमेव सूचयति स्वीये काव्ये । तथा हि -

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् [2]।।

अनेन यैः पदैः स्वीयस्फुटता विशदर्थता न त्यक्ता, अर्थगौरवमपि स्वीकृतमेव तेषां प्रयोगः एव भारविना विहित इति सूचितम् । सम्प्रति तादृशानि पदानि स्वीकृत्य तद्वैशिष्ट्यम्, विषयगाम्भीर्य, प्रयोगसङ्गतिश्च यथामति प्रस्तूयते । तत्रादौ –

1. वर्णिलिङ्ग इति पदम्

श्रियः करुणामधिपस्य पालनीं प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः [3]।।

अत्र हि ब्रह्मचारिवेशवान् यः किरातः तस्य प्रशस्तिं सुचयितुमयं प्रयोगः तथा वर्णो नाम

---

* Assistant Professor (Guest), Dept. of Sanskrit, Rajendra University, Balangir, Odisha, 767002, Email- dashsudeshna6@gmail.com

[1] मल्लिनाथः (किरातार्जुनीयघण्टापथटीका)

[2] किराता.-२२७

[3] किरात.-१.१

ब्राह्मणादितत्तद्वर्णोचितवसन्तादिकालमुपनयनम्, अस्यस्तीति वर्णी। ब्रह्मचारीत्यर्थः। वर्णाद्ब्रह्मचारिणि इति प्रत्ययो मत्त्वर्थीयः। तस्य लिङ्गमस्यास्तीतिवर्णलिङ्गीति। अत्र प्रयोगे तदानीन्तनशासनव्यवस्थानुगुणं ब्रह्मचारिणां वैशिष्ट्यं प्रस्फुटितं भवति। यत् पुराकाले यस्य कस्यचिदपेक्ष्यया देशे निर्बोधः प्रवेशः आसीत्। ब्रह्मचारिणामतः तादृशं वेषवन्तं

प्रेषितवान् युधिष्ठिरः सर्वमपि वृत्तान्तं ज्ञातुम् केवलं भारविना अत्र ब्रह्मचारिवृत्तिमुत तादृश वेषवन्तं सूचयितुं वर्णिलिङ्गि पदस्य प्रयोगः कृतोऽपि तु तदानीन्तनव्यवस्थाऽपि सहसा निर्दिशति- अर्थात् अन्यस्मिन् वेषे कश्चिद्दूते गच्छति चेत् कदाचित् संदिहानो गृहितो भवदतो ब्रह्मचारिवेषविशिष्टः पेरषयितुमुचित इति सारः- एवञ्च

2. चारचक्षुषः इति पदम् -

क्रियासु युक्तैर्नृप चारचक्षुषो न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः ।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः [1]॥

अस्मिन् पदे स्वामिभिर्नियुक्तानामनुजीविनां भृत्यानां कर्तव्यपरायणता विश्वसनीयता च परिलक्षिता च भवति तथा हि चरतीति चरः। पचाद्यच्। त एव चराः। चरेः पचाद्यजन्तचात्प्रज्ञादित्वादण्प्रत्ययः । त एव चक्षुर्येषां ते चारचक्षुषः स्वरमण्डले कार्याकार्यावलोकने चाराश्चंपि क्षितिपतीनाम् इति नीतिवाक्यामृते इत्थं मल्लिनाथः । अत्र मल्लिनाथव्याख्यानेन स्पष्टं प्रतिपाद्यते यत् अनुचराः सेवकाः चाराः दूताः वा एव चक्षुः येषां प्रभूनां ते प्रभवोऽनुजीविभिर्न वञ्चनीया इति वक्तुरभिप्रायोऽन्वयसङ्गतिश्च । न हि सर्वे राजानः स्वामिनो वा एकत्रोपविश्य समग्रं वृत्तान्तं ज्ञातुं प्रभवन्ति । तस्मादर्थ नियुक्ताश्चाराः चक्षुरूपेण तत्तत्कार्याकार्य समवलोकयन्ति । यदि त एव स्वीयान् प्रभून् वञ्चयेयुः तर्हि कर्तव्यपरायणताहानेरापत्तिरतः चारानिश्छलं व्यवहारं विदधीरन्। अत्र हि भारवेरयमभिप्रायो यत् ये च प्रभवः केवलं चाराणां द्वारैव ज्ञातुं सर्वं शक्ता भवन्ति न कदाचित् ते वञ्चनीयाः चारैः । अनेन चाराणां महत्वं कर्तव्यपरायणतोभयमपि प्रतिपादितम् । एतदपेक्षया पदान्तरेण नैतादृशः गभीरोऽर्थः प्रकटितो भवेत् ।

३. किंसखा इति पदम् -

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संश्रृणुते स किं प्रभुः ।
सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः[2] **॥**

अत्र हि प्रयोगे मित्रस्य मन्त्रिणो वा किं प्रथमं कर्तव्यं लक्षणं वेति सूचयति कविः यत् यः सखा स्वाधिपं साधु न शास्ति उपदिशति सः सखेति वक्तुमयोग्यः एव । यतो मन्त्रिणो सख्युः वा

[1] किरात.-१.४
[2] किरात.-१.५

सतः प्रधानं कार्यं सदुपदेशः परन्तु यस्सखा न तथाकारः स किं सखा एव निन्द्यः इत्यर्थः। अत्रार्थे पाणिनेरपि सम्मतिर्वर्तते यत् राजाहः सखिभ्यष्टच् (पा. सू. ५.४.९१) इति सूत्रेण विहितस्य समासान्तस्याचः किमः क्षेपे (पा.सू.-२.१.९४) इति अनेन सूत्रेण निन्दायां गम्यमानायां प्रतिषेधात्। किं क्षेपे (पा.सू. २.१.९४) इत्यनेन समानाधिकरणसमासः। निन्द्यत्वं तु असदुपदेशत्वमिति बोध्यम्।

४. दुरोदर इति पदम् -

विशङ्कमानो भवतः पराभवं नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः ।
दुरोदरच्छद्मजितां समीहते नयने जेतुं जगतीं सुयोधनः[1] ॥

अत्र दुरोदर-पदेन द्यूतक्रीडायां छद्मतां कुटिलतां च द्योतयति काव्यकारः। यथाऽऽह अमरः दुरोदरो द्यूतकारे पणे द्यूते दुरोदरम् इति । दुष्टमासमन्तादुदरमस्य इति पृषोदरादित्वात् साधु बहुव्रीहिसमासः इति भानुजीदीक्षितोऽर्थयति। अनेन द्यूतकारस्य द्यूतक्रीडाया वा छद्मता द्योतिता यद्यत्र पूर्णतया दुष्टतैव निवसति। तादृशरीत्या या पृथ्वी अपहृता इत्यादिप्रसङ्गानुगुणमर्थः।

५. दर्शयते इति पदम् -

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः समानमानान्सुहृदश्च वन्धुभिः ।
स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् [2]॥

अत्र दर्शयते इति प्रयोगेऽस्ति किञ्चिद्रहस्यम्। सः सुयोधनः सेवकान् सखीन् इव सुहृदो बन्धुभिः समानमानाम्, स्वामिवत् बन्धून्श्च दर्शयते सेवते इति। अत्र यद्यपि सुयोधनस्य नैतादृशः स्वभावः परन्तु छद्मजितपृथिवीपालकोऽयं सर्वेष्वपि विश्वासं सम्पादयितुं तथा प्रवर्तते। अत्र पश्यति इति प्रयोक्तव्ये दर्शयते इत्यस्य प्रयोगात् अन्येषामेव दर्शयते न तु स्वयं पश्यति इति गूढतया सर्वान् एव वञ्चयति इत्यर्थः प्रकटित-जोनराजटीकायाम् । दर्शयत इति आत्मनेपदं णिचश्च (पा.सू.१.३.७४) इति सूत्रेण कर्तृगामिनि क्रियाफले णिजन्ताद्विहितम्। यद्यपि स्वीयव्यवहारेण सर्वान् तोषयति तथापि तत्तोषणवञ्चनया विश्वासं प्रापयति इति स्वयं फलभाग्भवति। कथन्नु अत्र वक्तव्यं भारवेर्निगूढार्थप्रकाशिका पदप्रयोगशैली।

६. गतस्मयः इति पदम् -

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः समानमानान्सुहृदश्च बन्धुभिः ।
स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु बन्धताम्[3] ॥

पदमिदमत्र श्लोके दुर्योधनस्य विशेषणतया प्रयुक्तम्। एतस्मात् श्लोकात् प्रागपि पूर्वस्मिन् श्लोके कृतारिषड्वर्गजयेन इति प्रयुक्तमासीत् दुर्योधनाय। वस्तुतः कामक्रोधलोभमानमदहर्षा ये षट् शत्रवः वर्तन्ते, एतैराक्क्रान्तः पूर्वमयं धृतराष्ट्रसुतः सुयोधन आसीत्। परन्तु एतान् षटशत्रून्

[1] किरात.-१७
[2] किरात.-१.१०
[3] किरात.-१.१०

जित्वाऽयं गतस्मयः (गतः अपगतः स्मयोऽभिमानः यस्य सः) सन् दुर्योधन-सम्पन्नः । एवञ्च सुयोधनाय दुर्योधन इति प्रयोक्तुं हेतुरनेन पदेन प्रदर्शितः अपि च कृतारिषड्वर्गजयेन इति पदस्यापि सार्थकतां समुपवर्णयामास भारविरनेन पदेन। परन्तु दुर्योधनस्तु केवलं वञ्चनामेव कुर्वन्नास्ते इति सूचयति जोनराजः स्वटीकायाम्। गतः इव स्मयोऽभिमानः यस्य सः गतस्मयः इति। अत्र इव शब्दः तात्पर्यग्राहकः यत् अभिमानः गतः इव भाति वस्तुतस्तु न गतः इत्यर्थः।

7. मूढधियः इति पदम्

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः[1]॥

मूढधियः इत्यस्यार्थः मूढा धीर्येषां ते मूढधियः अर्थात् निर्विवेकबुद्धय इत्यर्थः। अत्र व्यक्तिविवेककृद् द्वितीयविमर्शे एतस्मिन् पदे आर्थी पुनरुक्ता वर्तते इति समुद्भावयति। अत्र भट्टमहिस्रोऽयमभिप्रायः स्याद्यत् मूढशब्दस्यार्थो मूर्ख इति मूढधीः शब्दोऽपि तमेवार्थं प्रकटयति। किञ्च मूढत्वं नाम धीशून्यत्वञ्चेत् मूढधीरिति कथं। परन्तु कवेहृदयं ज्ञातुं न शक्तः व्यक्तिविवेककारः इति मन्ये। यतः वेदान्तसारे सदानन्दः उल्लिखति।

अज्ञानसन्दर्भ अज्ञानं तु सदसदभ्यामनिर्वचनीयं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किंचितदति वदन्त्यहमज्ञ। तत्रैव उद्धरति च -

अज्ञानं ज्ञातुमिच्छेद् यो मानेनात्यन्तमूढधीः।
स तु नूनं तमः पश्येत् ज्ञानेनोत्तमतेजसा[2] ॥

अत्रापि पद्ये मूढधीः इति पदस्य प्रयोगो विद्यते । कथयितुश्चाभिप्रायः स्पष्ट एव । व्याख्याकारश्च वदन्ति नाहं किञ्चिद्वेद्मि इति वदन् कश्चित् तावद्वा जानाति यत् सः न किञ्चिज्जानाति। तदज्ञानस्वरूपमिति। अत्रापि भारविना अज्ञानसन्दर्भ एव मूढधीः इति पदस्य प्रयोगोऽकारि। तथा हि द्रौपदी युधिष्ठिरं बुबोधयिषया सूचयति ज्ञानविवेकयोश्च भेदमपि प्रकटयति यत् ज्ञात्वाऽपि द्यूतक्रीडायां प्रवृत्तिरज्ञानवशात् विवेकराहित्यादिति तात्पर्यम्। अतो भारवेरयं प्रयोगो नितरां युक्तः पुनरुक्तिदोषरहितश्च एतादृगर्थं निगूढं पुनरपि शक्तं पदम् इति परिभाषितञ्चरितार्थी करोति। यच्चोक्तं पूर्व मूढधीः इति कथमितिचेदुच्यते धियो मान्द्यत्वं नाम मूढत्वमिति स्वीकार्यम्। यद्वा अभावज्ञानं प्रति प्रतियोगिज्ञानस्य कारणातायाः सर्वसम्मत्वात् धीशून्यत्वमिति वक्तुं धियः सत्वमपेक्षितम्। एतद्धि वेदान्तसारानुसारम् अज्ञानव्याख्यासन्दर्भे सङ्गच्छते। आहत्य मूढधीरिति प्रयोगः नात्र दृष्टः इति मेऽभिप्रायः।

---

[1] किरात.-१.३०

[2] वेदान्तसारः

८. आविष्कृतजिह्मवृत्तिना इति पदम् -

अथ चेदवधिः प्रतीक्ष्यते कथमाविष्कृतजिह्मवृत्तिना ।
धृतराष्ट्रसुतेन सुत्यजाश्चिरमासाद्य नरेन्द्रसम्पदः[1]।।

पदमिदं दुर्योधनस्य विशेषणत्वेन प्रयुक्तम्। आविष्कृता प्रकटीकृता जिह्मवृत्तिः कपटव्यापारौ येनाऽसौ इत्यर्थः । अनेन पदेन दुर्योधनस्य स्वाभाविकीं मनोवृत्तिं सूचयति कविः । यतो निसर्गतो दुर्योधनः कपटव्यवहारः अस्तादृशमर्थं वोधयितुं पदमिदम्।अपि च यस्यै राजलक्ष्मै भवता एकोऽवधिः (त्रयोदशवर्षपरिमितः) प्रतीक्षते ताम् उपभुज्यापि कथमयं धृतराष्ट्रसुतः त्यजति अर्थात् अस्य मनोवृत्तिरेव तादृशी यत् न प्रत्यक्षतया कपटव्यवहारे करोति।

९. अचिरांशुविलासचञ्चला इति पदम्-

अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभिः रथास्नु यशश्चिचीषतः।
अचिरांशुविलासचञ्चला ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम्[2]।।

पदमिदमस्ति लक्ष्मीविशेणम्। तद्यथा लक्ष्मीर्हि चञ्चला चपला इत्याद्युपमीयते। यतस्तस्याः स्वभावो हि नैकत्र चिरं तिष्ठति। एतादृशं स्वभावं वर्णयितुं कवेरयं यत्नः। तदुक्तं नृसिंहकृदन्वयदीपिकाख्यटीकायाम् अचिरं अंशवो यस्याः सा अचिरांशुः। एतादृक्स्वभाववशादेव लक्ष्मीर्नाम चञ्चला, विद्युतादिभिः उपमिता बाणेन कादम्बर्या शुकनाशोपदेशे भृशं भर्त्सिता ।

१०. आदर्श इव इति प्रयोगः-

अपवर्जितविप्लवे शुचौ हृदयग्राहिणि मङ्गलास्पदे।
विमला तव विस्तरे गिरां मतिरादर्श इवाभिदृश्यते।।[3]

अत्र श्लोके भीमस्य बुद्धिः कथं वाक्प्रपञ्चे प्रकटीभवति, तदुक्तं भारविः दर्पणेन उपमां प्रस्तावयति। तद् तथा दर्पणे वास्तविकीच्छटा प्रतिविम्बं वा स्पष्टं प्रतीयते तद्वत् भवतो मतिरपि योजनान्वितप्रियहितकरे वाक्प्रपञ्चे स्पष्टं प्रतीयते।

११. न च न स्वीकृतम् इति नञ्द्वयप्रयोगः-

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्[4]।।

पद्येऽस्मिन् भारविः युधिष्ठिरेण भीमस्य प्रशस्तिं प्रकटयन् स्वीयार्थगौरवोक्तिविषयिकीं ख्यातिमपि दृढीकरोति। अत्र हि न च न स्वीकृतमर्थगौरवमिति नञ्द्वयघटितप्रयोगः अवश्यकर्तव्यतां बोधयति। अर्थात् अवश्यमेव स्वीकृतमित्यर्थः।

---

[1] किरात.-२१६
[2] किरात.-२१९
[3] किरात.-२२६
[4] किरात- २.२७

१२. दुष्टेन्द्रियवाजिवश्यता इति पदप्रयोगः-

क्व चिराय परिग्रहः श्रियां क्व च दुष्टेन्द्रियवाजिवश्यता।
शरदभ्रचलाश्चलेन्द्रियैरसुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रियः[1]॥

युधिष्ठिरस्य भीमं प्रतीयमुक्तिः। तत्र हि स सूचयति।तत्र हि स सूचयत जितेन्द्रिय एव श्रियः रक्षणं कर्त्तुं पारयति यस्तु चलेन्द्रियोऽजितेन्द्रियो वा भवति न च स चिरं श्री भाग् भवति।

सुब्बृत्तिप्रयोगः-

राजशेखरस्य मन्तव्यं वर्त्ततेयद्दक्षिणात्याः सुब्बृत्तिप्रियाः भवन्ति दयितसुब्बृत्तियो विदर्भा। विदर्भदेशियस्य भारवेः किरातार्जुनीय एतादृशान्युदाहरणानि प्राप्यन्ते येन कथनस्यास्यौचित्यं सिद्धयति। यथा-

उपकारकमायतेर्भृशं प्रसवः कर्मफलस्य भूरिणः।
अनपायि निर्बहणं द्विषां न तितिक्षासममस्ति साधनम्॥

समासवृत्तिप्रयोगः -

महाकविभारविः प्रसङ्गानुकूलं समासवृत्तेः प्रयोगं कुरुते । चतुर्दशसर्गादारभ्य अष्टादशसर्ग यावत् युद्धविषयकं वर्णनं परित्यज्य सर्वत्राप्यल्पसमासा-मध्यमसमासयोरेव प्रयोगो विहितः दरीदृश्यते । आनन्दवर्धनो भणति सर्वासु सङ्घटनासु प्रसादाख्यो गुणो व्यापी। स हि सर्वरससाधारणः सर्वसङ्घटनासाधरणश्चेत्युक्तम् । वीररसप्रधानेऽस्मिन् महाकाव्ये युद्धप्रसङ्गे एवोद्धतरचना दृश्यते त्वसमासामध्यमसमासयोः निवद्धा प्रसादगुणयुक्ता सहृदयहृदयाहारिणी वर्तते। असमासारचनाया उदाहरणं यथा-

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलब्धा स्वयमेव सम्पदः[2]॥

तद्धितवृत्तिप्रयोगः -

धातुमतिरिच्य प्रातिपदिकाद्विहिता सुब्भिन्नन्प्रत्ययाः तद्धितसंज्ञकाः भवन्ति। महाकविरसौ तद्धितान्तपदानामपि नवान् आकर्षकांश्च प्रयोगान् कुरुते प्रथमे श्लोके एव वर्णिलिङ्गी पदप्रयोगः कियद्युक्तियुक्तं वर्तते । वर्णः प्रशस्तिः स्मरणाद्यष्टविधमैथुनाभावः अस्यास्तीति वर्णा ब्रह्मचारी वर्णाद्ब्रह्मचारिणि[3] इत्यनेन इन्प्रत्ययः वर्णिनः लिङ्ग चिह्नमस्यास्तीति वर्णलिङ्गी ब्रह्मचारिवेशवानित्यर्थः।

---

[1] किरात.- ३.९
[2] किरात.-२.३०
[3] पाणिनीय अष्टाध्यायी- ४.२.१३४

कृद्वृत्तिप्रयोगः

पाणिनिमते धात्वधिकारे विहिताः तिङ् भिन्नप्रत्ययाः कृत्संज्ञकाः भवन्ति। कृदतिङ् अत्र वञ्चितुं योग्याः वञ्चनीयाः, तव्यत्तव्यानीयरः[1] क्त प्रत्ययस्य एकस्मिन्नेव श्लोके बाहुल्येन कियद्रुचिरं प्रयोगं कुरुते महाकविरिति दर्शनीयम्-

स्फुटता न पदैरपाकृता न च स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्[2]।।

तिङ्वृत्तिप्रयोगः -

महाकविभारवेः तिङवृत्तिप्रयोगः नितरामाकर्षकोऽस्ति एकैकस्मिन् पद्ये तिस्रः चतस्रः अपि क्रिया प्रयुक्ता सन्ति -

एवमेव-

जहीहि कोपं दयितोऽनुगम्यतां पुराऽनुशेते तव चञ्चलं मनः ।
इति प्रियं कांचिदुपैतुमिच्छतीं पुरोऽनुनिन्ये निपुणः सखीजनः[3]।।
भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये ।
नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा गभीरमर्थं कतिचित्प्रकाशताम् [4]।।

एतदतिरिक्तं लिट्लकारस्य प्रयोगे तु कवेः पदप्रयोगस्य सौन्दर्यं परिस्फुटति न विव्यथे तस्य मनो नहि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः। अत्र विव्यथे पदम् अथ चोपर्युक्तेषु पद्येषु जहीहि उपरराम अनुनिन्ये पदानि कियन्ति कोमलानि सन्ति । एकत्र तु कविरसौ एकस्मिन् पद्ये त्रिः लिट्लकारस्य प्रयोगं कृतवान् -

सजलजलधरं नभो विरेजे विवृतमियाय रुचिस्तडिल्लतानाम्।
व्यवहितरतिविग्रहैर्वितेने जलगुरुभिः स्तनितैर्दिगन्तरेषु[5] ।।

एवमेव विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा, धनं विदार्यार्जुनवाणपूगं ससारबाणेयुगलोचनस्य, ससारबाणोऽयुगलोचनस्य इत्यादीनि यमकालङ्कारस्योदाहरणानि विद्यन्ते । इत्थं महाकविभारवेः पदरचना प्रसादगुणयुक्ता प्रसङ्गानुकूला असमासा मध्यमसमासादीर्घसमासेति संघटनात्रयसमन्विता वर्तते, फलतः अस्यापि पदशय्या वैदर्भीरीतिसमन्वितैव स्वीकृता वर्तते ।

---

[1] तत्रैव-३.१.९६
[2] किरात. -२.२७
[3] किरात.-८.८
[4] किरात.-१४.४
[5] किरात.-१०.१९

महाकविः भारविः जानाति स्म यत्कविषु काव्याशास्त्रिषु च काव्यगतशब्दार्थयोः प्राधान्यमधिकृत्य विभेदो वर्तते। अत एवासौ अर्थगौरवस्य महत्वं ददानोऽपि कथमपि शब्दसौष्ठवं विजहाति। किरातार्जुनीयमहाकाव्यस्य इदमेव वैशिष्ट्यं वर्तते यदत्र प्रसङ्गानुकूलायाः पदशय्यायाः प्रयोगः कृतो वर्तते।

सन्दर्भग्रन्थसूची –

1. चतुर्वेदः रामबूझ, किरातार्जुनीयम् (द्वितीयसर्गः) चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वारणसी- २२१००१
2. शास्त्री सीताराम, किरातार्जुनीयम्, श्री वेङ्कटेश्वर वेदविश्वविद्यालयः, तिरहपतिः, आन्ध्रप्रदेश।
3. रेग्मी शेषराज शर्मा, किरातार्जुनीयम्, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, १९९९
4. जड्डीपाल विरुपाक्ष, किरातार्जुनीयम् अमरग्रन्थ पब्लिकेशन ८२५, विजयनगर, दिस्सी-११०००३२.
5. प्रजापति, अम्बलाल, किरातार्जुनीयम् प्रदीपिकीकायुतम्,वीरशासम्, सुरत – ३,२०११।
6. सूर्यमणि रथ किरातार्जुनीये लोकक्तिः पुरुषोत्तमप्राच्य-विद्याशोध- प्रतिष्ठानम्, पुरी, ओडिशा
7. पाण्डेय बाबूराम शास्त्री प्रेमकृष्ण, किरातार्जुनीयम् (प्रथमसर्गः) चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वारणासी,२०१०.

❐

रसास्वादनहेतवः समासाः

डा. बसन्तकुमारमुद्रा*

सारांशः –

समासः संस्कृतशास्त्राणां बीजभूतं तत्त्वमिति स्वीक्रियते । समासं विना पदानां वाक्यानाञ्च संरचनमसम्भवं किञ्च तस्मात्पदात् वाक्याद्वा निसृतार्थोऽपि विगर्हितो भवति। अतः शास्त्राचारप्रवृत्तिनिवृत्त्यर्थं सुधामयभणितिसन्निवेशनाय च विबुधैः समासस्य परिकल्पनं कृतम्। अनेन समासबलेन तत्तच्छास्त्रेषु सन्निविष्टस्य तत्त्वगाम्भीर्यस्य, अलौकिकचमत्कारितायाः, अनिर्वचनीयविलक्षणानन्दस्य लोकाचारादिपरिज्ञानस्य व्युत्पत्तेश्च यथायोगं सुकोमलमतीनां पाठकानाञ्च भवतीति बहुफलतया समासस्य लक्षणादिकमवश्यमवगन्तव्यं धीमतामिति बुधैः तल्लक्षणं व्याकरणशास्त्रेषु व्यधायि। तदनु तया पद्धत्या विविधशास्त्राणां सर्जनम्, ततः शास्त्रगततत्त्वानामानन्दानुभवः । अतः सोयं समासः व्याकरणशास्त्रप्रतिपादितवर्त्मानुगः किञ्चिद् विलक्षणतया साहित्यशास्त्रे आम्नातः तथा च रसचर्वणायां समासस्य महती उपादेयता वर्तत इति शास्त्रकारैः वर्णितो वर्तते ।

उपोद्घातः –

समसर्वगुणौ सन्तौ सुहृदादिव सङ्गतौ ।
परस्परस्य सोभायै शब्दार्थौ भवतो यथा[1]।।

इति एवंविधगुणमण्डितौ शब्दार्थौ काव्यमिति विचार्यमाणेनानेन अर्थगतचारुत्त्वप्रतिपादनमूलस्य शब्दस्यैव प्राधान्यं वरीवर्त्ति शास्त्रेषु तर्हि कस्तावत् शब्द इति विचारे "प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्द[2]" इत्युच्यते भाष्यकारैः। तस्यैव वचनमङ्गीकृत्य "येनोच्चारितेन अर्थः प्रतीयते स शब्द[3]" इति भोजराजः । किञ्च "तस्य हि ध्वनेः स्वरूपं सकलसत्कविकाव्योपनिषद्भूतमतिरमणीय-मणीयसीभिश्चिरन्तनकाव्यलक्षणविधायिनां बुद्धिभिरनुन्मीलितपूर्वम्[4]" इति आनन्दवर्धनाचार्यः। तदनु कस्तावदर्थ इति प्रश्नस्योत्तरे –

शब्दबोध्यो व्यनक्त्यर्थः शब्दोऽप्यर्थान्तराश्रयः ।
एकस्य व्यञ्जकत्वे तदन्यस्य सहकारिता[5] ।।

इत्यनेन अर्थः शब्दबोध्यः व्यनक्ति, शब्दोऽपि अर्थान्तराश्रयो भवति । तत् एकस्य व्यञ्जकत्वे अन्यस्य सहकारिता भवतीति विश्वनाथकविराजोऽभिप्रैति । "यः शब्देन प्रत्यायते सोऽर्थ[6]" इति भोजराजः । तयोः शब्दार्थयोश्चात्र साहित्यं काव्यमिति फलितम् । काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम् भवतु नाम शब्दाश्रयी अर्थः, शब्दोऽप्यर्थान्तराश्रयः तथापि शब्दः समासाश्रयः,

* सहायकाचार्यः, साहित्यविभागः, लक्ष्मीदेवीशराफआदर्शसंस्कृतमहाविद्यालयः, देवघरः, झारखण्डः।

सामासिकशब्दादेव सार्थकार्थस्योत्पत्तिः, सार्थकार्थादेव रसाः समुत्पद्यन्त इति । रसादिश्चात्मा, उच्यते – "वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्[7]" इति अग्निपुराणे । गुणाः शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत्, रीतयोऽवयवसंस्थानविशेषवत्, अलङ्काराः कटककुण्डलादिवत् तथापि रसचर्वणायां कथं समासस्योपादेयता इति तावदादौ समासः निरूप्यते ।

वैयाकरणनये कस्तावत् समासः –

तत्र "अनेकपदानामेकपदीभवनं समासः[8]", किञ्च "एकार्थीभावापन्नपदसमुदाय- विशेषत्वं समासत्वम्[9]", "समसनं समासो[10]" वा इति समासस्य या संज्ञा बुधैः व्याकरणशास्त्रे विहिता तया संज्ञया पदानां वाक्यानां वा संक्षिप्तीकरणमिति अर्थः स्वीक्रियते। यथोक्तं अव्ययीभावसमासप्रकरणे–

विभक्तिर्लुप्यते यत्र तदर्थस्तु प्रतीयते ।
पदानां चैकपद्यं च समासः सोऽभिधीयते[11] ॥

वैयाकरणानां सिद्धान्तानुसारं समासस्य भेदाः –

सोऽयं समासः पाणिनीयादिशास्त्रेषु अव्ययीभावादिभेदेन चतुर्विधः, क्वचित् वरदराजाचार्यमतेन केवलसमासस्य अवान्तरभेदोऽपि प्रतिष्ठितः, क्वचिच्च समासस्य पञ्चभेदा उपस्थापिताः, तत्पुरुषस्यापि अवयवानां सामानाधिकरण्ये कर्मधारयसंज्ञा विहिता, संख्यापूर्वकत्वे द्विग्वाख्यसमासस्य भेदः सुनिश्चितः, द्वन्द्वसमासस्यापि अर्थभेदेन इतरेतरसमाहाराख्यं भेदद्वयं प्रसिद्धम्, भट्टोजीदिक्षितेनापि सिद्धान्तकारिकायां अन्यथैव समासस्य भेदः वर्णितः, समासघटकपदानां पदत्वहेतुनिबन्धनात् समासस्य षट्भेदः परिकल्पितः । यथोक्तम् –

सुपां सुपा तिङां नाम्ना धातुनाऽथ तिङां तिङा ।
सुबन्तेनेति च ज्ञेयः समासः षड्विधो बुधैः[12] ॥

किञ्च तेनैव - **समासस्तु चतुर्धेति प्रायोवादस्तथापरः ।**
योऽयं पूर्वपदार्थादिप्राधान्यविषयः स च[13] ॥

तथा चास्य पृथगर्थपदानां एकार्थोपस्थितिजनकत्वरूपमिति एकत्र, किञ्च एकार्थवाचकतां प्राप्तो भिन्नार्थकानेकपदसमूह अथवा अनेकपदानामेकीभवनरूपमिति अपरत्रेति या चर्चा वैयाकरणैः तत् तच्छास्त्रेषु विहिता तदेव तत्त्वं स्वीकुर्वाणा आलङ्कारिकाः "बुधै यः समाम्नातपूर्वः[14]" अपि च "प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम्[15]" इति प्राशस्त्यमुक्त्वा यथासम्मानं व्याकरणशास्त्रप्रतिपादितसमासमङ्गीकृत्य किञ्चिद् विलक्षणरीत्या अलङ्कारशास्त्रे प्रतिपादितकाव्यतत्त्वसरण्यां समासं समुद्घाटयामासुः।

आलङ्कारिकनये समासः –

वस्तुतः समासोऽयं न तु अव्ययीभावादीनां द्योतकः अपितु कश्चित्

विलक्षणमालङ्कारतत्त्वम् इति । अतोऽलङ्कारशास्त्रे समासोऽयं साधकबाधकरूपेण प्रतीयते । आलङ्कारिकास्तु काव्यलक्षणप्रसङ्गे काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्, शब्दगता अनुप्रासादयः, अर्थगता उपमादयः, वर्णसङ्घटनाधर्माः माधुर्यादयः, वृत्तय उपनागरिकाद्याः, रीतयः वैदर्भ्यादय इत्यादिषु सर्वेष्वपि काव्यतत्त्वेषु साधकबाधकरूपस्य समासस्य प्रधानतां स्वीकुर्वन्ति ।

कुत्रचित् आलङ्कारिकतन्त्रेषु समासोऽयं सङ्घटनारूपो वर्तते। इयं सङ्घटना वामनोक्तरीत्या रीतिरित्युच्यते[16]। तथैव मम्मटाचार्येणापि अङ्गीक्रियते[17]।

आलङ्कारिकसिद्धान्तानुसारं समासस्य भेदाः –

प्रसङ्गोऽयं किञ्चिदनिर्वचनीयतया ध्वन्यालोकस्य तृतीयोद्योते अलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्य उपस्थापनविषये समागच्छति । तत्र तावत् कोऽयं सङ्घटनारूपः समासः कतिभेदाश्चास्य वर्तन्त इति जिज्ञासायाम् आनन्दवर्धनः वक्ति यद् –

असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता ।
तथा दीर्घसमासेति त्रिधा सङ्घटनोदिता ।।
गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ति माधुर्यादीन्व्यनक्ति सा ।
रसांस्तन्नियमे हेतुरौचित्यं वक्तृवाच्ययोः[18] ।।

अर्थात् अविद्यमानः समासो यस्यां सा वैदर्भीरूपैका प्रथमा, मध्यमेन अदीर्घेण समासेन विभूषिता पाञ्चालीरूपा च द्वितीया तथा दीर्घः समासो यस्यां सा गौडीरूपा च तृतीयेति त्रिप्रकारा सङ्घटना रीतिः क्रमेणोपनागरिका कोमला परुषा च वृत्तिर्वा निगदितेत्यर्थः। किञ्च अल्पसमास-मध्यमसमास-दीर्घसामासरूपेण त्रिविधरूपा चेयं सङ्घटना माधुर्यादीन् गुणानाश्रित्य रसाद् व्यनक्ति। तन्नियमे वक्तुर्वाच्यस्य च औचित्यं हेतुः भवतीति आलङ्कारिकाः निगदन्ति ।

यथोक्तं मम्मटाचार्येण –

अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा ।
वृत्तिर्दैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि ।
साधारणः समग्राणां च प्रसादो गुणो मतः[19] ।।

किञ्चात्र राजानककुन्तकेन –**असमस्तमनोहारिपदविन्यासजीवितम् ।**
माधुर्यं सुकुमारस्य मार्गस्य प्रथमो गुणः[20] ।।

विचित्रो यत्र वक्रोक्तिर्वैचित्र्यं जीवितायते ।
परिस्फुरति यस्यान्तः सा काऽप्यतिशयाभिधा ।।
सोतिदुःसञ्चरो येन विदग्धकवयो गताः ।
खड्गधारापथेनेव सुभटानां मनोरथाः[21] ।।

वैचित्र्यं सुकुमार्यं च यत्र सङ्कीर्णतां गते:।
भ्राजेते सहजाहार्यशोभातिशयशालिनी[22]।।

अपि च विश्वनाथकविराजेन–**अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते: ।**
समासबहुला गौड़ी।
समस्तपञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिका मता:[23] ।

एवं भामह-वामन-रूद्रट-पुरुषोत्तम-भोजादयः समासस्य त्रिविधरूपं स्वीकुर्वन्तः मतान्युपस्थापयामासुः। किञ्चात्र "परार्थाभिधानं वृत्तिः[24]" इति लक्षणमनुसृत्य यद्यपि कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः इति वैयाकरणनयेन कृदादीनां प्राप्तावप्यालङ्कारिकनयेन अत्र समासवृत्तिरेव ग्राह्या इति टीकाकारैः प्रतिपादितमस्ति। एवञ्च इमां समासवृत्तिमाश्रित्य साहित्यिकाः काव्यानि रचयन्ति। यतोहि काव्यस्य जीवनाधायकं तत्त्वं भवति रसः। रसस्तु परमानन्दस्वरूपः, अनुभवसाक्षिको जातिविशेषः, पौनःपुण्येनानुसन्धानेन एव आस्वादयोग्यः भवति धीमताम् इति। यथोक्तं तैत्तिरीयोपनिषदि शाङ्करभाष्यस्य ब्रह्मानन्दवल्याम् - रसस्तु "ब्रह्मानन्दसहोदरः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति[25]" इति ।

अत इयं समासवृत्तिः विशेषतः काव्यशास्त्रे, सन्निवेशितस्य काव्यस्य भेदकल्पनं कृत्वा तस्मिन् काव्ये विद्यमानान् वृत्ति-रीति-गुण-मार्ग-रचना-शय्या-पाक-काव्य-रसादीन् व्यनक्ति । अनया रीत्या काव्ये चारुत्वमभिवर्द्धते । एवंभूतं काव्यं पठित्वा पाठकाः सानन्दिताः विभोराश्च सन्तः मुहुर्मुहुः काव्यात् रसं आस्वादयन्ति। विशेषतः समासवृत्तिरियं रसचर्वणायां साधक-बाधकभावाभ्यां च काव्यादिषु परिलक्षत इति आलङ्कारिकाः निगदन्ति । समासोऽयं समस्तानां साहित्यिकतत्त्वानां नाम गुणरीत्यादीनां प्रकाशकः भवति अर्थात् एकस्य श्लोकवाक्यस्य पठनमात्रेण श्रवणमात्रेण च तत्र कः समासः वर्तत इत्यादौ तस्य परिज्ञानं भवति । तदनन्तरं तेन समासेन को गुणः, कश्च अलङ्कारः, का रीतिः, का वृत्तिः, कीदृशी रचना, किम्भूता शय्या, कः मार्गः, कश्च रसः, कीदृशं काव्यम् तत्र भवति इति अक्लेशेन ज्ञातुमस्माभिः शक्यते।

समासे काव्यतत्त्वानां व्यवस्थितिक्रमः -

अनेन शास्त्रोक्तप्रकारेण समासस्य व्यवस्थितिक्रमः मया प्रतिपाद्यते । तद्यथा सारण्याम्–

1.	अर्थवृत्तयः(4)	भारती	सात्त्वती	आरभटी	कैशिकी
2.	शब्दवृत्तयः(3)	प्रकरणानुसारम्	ग्राम्या	परुषा	सुकुमारा
3.	रीतयः (3)	प्रकरणानुसारम्	पाञ्चाली	गौडी	वैदर्भी
4.	गुणाः (3)	प्रकरणानुसारम्	प्रसादः	ओजः	माधुर्यम्
5.	मार्गाः (3)	प्रकरणानुसारम्	मध्यमः	विचित्रः	सुकुमारः
6.	रचनाः (3)	प्रकरणानुसारम्	मध्यमा	कठोरा	कोमला
7.	समासाः (3)	प्रकरणानुसारम्	मध्यमसमासः	दीर्घसमासः	असमासः
8.	शय्या (3)	प्रकरणानुसारम्	मध्यमा	कठोरा	कोमला
9.	पाकः (3)	प्रकरणानुसारम्	गुडपाकः	नारिकेलपाकः	द्राक्षापाकः

10.	काव्यम् (3)	प्रकरणानुसारम्	प्रकरणानुसारम्	प्रकरणानुसारम्	ध्वनिकाव्यम्, उत्तमकाव्यम् उत्तमोत्तमकाव्यम्
11.	रसाः (9)	प्रकरणानुसारम्	शान्तः,करुणः,हास्यः,भयानकः, अद्भुतः	रौद्रः, बीरः, वीभत्सः, हास्यः	द्विविधश्रृङ्गारः, शान्तः, करुणः

अत एवोक्तं महाकविना बाणभट्टेन –

स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।

रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव[26] ।। इति ।

आलङ्कारिकसमासानां परिज्ञानम् -

वर्णाः समासो रचना तेषां व्यञ्जकतामिताः[27] । इति ।

अलङ्कारशास्त्रे प्रतिपादितानां समासानां विशेषज्ञानं वर्णद्वारा भवति । वर्णाः न केवलं रसानाम् अपितु समस्तकाव्यतत्त्वानां नाम समासानाम्, गुणानाम्, रीतीनाम्, वृत्तीनाम्, मार्गाणाम्, शय्यानाम्, रचनानाम्, रसानाम्, काव्यानाञ्च व्यञ्जकाः द्योतकाः प्रकाशकाश्च भवन्ति । यथोक्तम्–

वर्णाः पदं प्रयोगार्हानन्वितैकार्थबोधकाः ।

अर्थो वाच्यश्च लक्ष्यश्च व्यङ्ग्यश्चेति त्रिधा मतः[28] ।। इति ।

वर्णात् पदानि जायन्ते, पदानि त्रिविधानि सन्ति । उच्यते – "स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यञ्जकस्त्रिधा[29]" इति । त्रिप्रकारकेषु पदेषु त्रिविधा अर्थाः जायन्ते । यथोक्तम् – "वाच्यादयस्तदर्थाः स्युः। वाच्य-लक्ष्य-व्यङ्ग्याः[30]" इति। ततः तत्तच्छब्देषु तदर्थावगमने शब्दशक्तीनामावश्यकता वर्तते । तद्यथा –

वाच्योऽर्थोऽभिधया बोध्यो लक्ष्यो लक्ष्यणया मतः ।

व्यङ्ग्यो व्यञ्जनया ताः स्युस्तिस्रः शब्दस्य शक्तयः[31] ।।

तदनु सङ्केतग्रहस्य आवश्यकता दरीदृश्यते । सङ्केतग्रहोऽपि चतुर्विधः – "सङ्केतो गृह्यते जातौ गुणद्रव्यक्रियासु च[32]" इति। सङ्केतग्रहाणां विशेषज्ञानसमनन्तरं काव्ये प्रयुक्तपदानां तात्पर्यज्ञानं भवति । ततः मुख्यार्थस्य बाधे तत्सामिप्यार्थस्य च योगे लक्षणायाः परिज्ञानं जायते । तदनु द्विविध-लक्षणाभ्यां रूढि-प्रयोजनाभ्यां प्रयोजनवतीलक्षणामालम्ब्य व्यञ्जना आस्वाद्यते । यतोहि तत्र व्यापारो व्यञ्जनात्मकः कुत इत्याह- **यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते ।**

फले शब्दैकगम्येऽत्र व्यञ्जनान्नापरा क्रिया[33] ।। इति ।

व्यञ्जनाव्यापारबलेन व्यङ्ग्यार्थस्य अवबोधनं भवति। व्यङ्ग्यार्थो हि अलौकिकानन्दरूपः, चिन्मयः, ब्रह्मास्वादसहोदर इति कथ्यते।

रसास्वादनप्रकाराः –

आलङ्कारिकाणां मतानुसारं विभावादिभिः व्यक्तः स्थायिभावः रस इति उच्यते। यथोक्तं मम्मटाचार्येण – "व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायिभावो रसः स्मृतः[34]" इति । किञ्च पण्डितराजजगन्नाथोऽपि - "समुचितललितसन्निवेशचारुणा काव्येन समर्पितैः सहृदयहृदयं प्रविष्टैः तदीयसहृदयतासहकृतेन भावनाविशेषमहिम्ना विगलितदुष्यन्तरमणीत्वादिभिर-लौकिकविभावानुभावव्यभिचारि-शब्दव्यपदेश्यैः शकुन्तलादिभिरालम्बनकारणैः, चन्द्रिकादिभिरुद्दिपनकारणैः, अश्रुपातादिभिः कार्यैः, चिन्तादिभिः सहकारिभिश्च सम्भूय प्रादुर्भावितेनालौकिकेन व्यापारेण तत्कालनिवर्तितानन्दांशावरणाज्ञानेनात एव प्रमुष्टपरिमितप्रमातृत्वादिनिजधर्मेण प्रमात्रा स्वप्रकाशतया वास्तवेन निजस्वरूपानन्देन सह गोचरीक्रियमाणः प्राग्विनिविष्टवासनारूपो रत्यादिरेव रसः[35]" इति । यद्यपि एवंभूतस्य रसस्य आश्वादनं विभावादिभिः व्यञ्जितः स्थायिभावद्वारा भवति तथापि स्थाय्यादिप्रकाशितानां पदानामेव मूले वर्णाः कारणीभूताः भवन्तीति पण्डितराजः युक्तिं साधयति। यथा – "रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्[36]" इति। अतः शब्द एव समस्ततत्त्वानां प्रकाशकः। किञ्च शब्दाश्रयी समासः । समासस्य प्रतिपत्तिनिमित्तं वर्णाः समुद्दिष्टाः । तदर्थं समासानां परिज्ञानाय विभिन्नव्यञ्जकवर्णा अपि सम्प्रवर्तिताः।

रसास्वादनहेतवः समासाः –

गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ति माधुर्यादीन्व्यनक्ति सा।
रसांस्तन्नियमे हेतुरौचित्यं वक्तृवाच्ययोः[37] ॥

इत्युक्तप्रकारेण समासः सङ्घटनारूपः। सङ्घटनारूपोऽयं समासः सर्वदा गुणानाश्रित्य जीवति । गुणास्तु अङ्गीभूतस्य रसस्य धर्माः किञ्च उत्कर्षाधायकाः भवन्ति । यथोक्तं काव्यप्रकाशे–

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः[38] ॥

उपर्युक्तप्रकारेण को गुणः किं भूतान् रसान् प्रकाशयतीति विचार्यते। यथा –

माधुर्यगुणे रसाः – **सम्भोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिकं क्रमात्[39] ।**

माधुर्यगुणे समासवृत्तिरचनाः – **अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा मधुरा रचना तथा[40] ।**

ओजगुणे रसाः – **वीरबीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु[41] ।**

ओजगुणे समासवृत्तिरचनाः – **तथा समासो बहुलो घटनौद्धत्यशालिनी[42] ।**

प्रसादगुणे रससमासवृत्तिरचनाः – **स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च[43] ।**

असमासस्य व्यञ्जकवर्णाः –

कीदृशाणां वर्णानां प्रयोगे को वा समासः तत्र भवेदिति अस्माभिः ज्ञातुं शक्यते । यथा –

मूर्ध्नि वर्गान्त्यवर्णेन युक्ताष्टठडढान्विना ।
रणौ लघू च तद्व्यक्तौ वर्णाः कारणतां गताः[44] ॥

अर्थात् मूर्ध्नि वर्गाणां कुचुटुतुपूनाम् अन्त्यवर्णेन ङञणनमरूपाक्षरेण सह मिश्रणं स्यात्, टठडढकारान् दुःश्रवत्वावहान् वर्णान् विहाय ककारादयो भकारान्ताः स्पर्शवर्णाः यथा अङ्कः, सङ्गः, रङ्गः, सङ्घः, दन्तः, कुञ्जः, गुञ्जादिरूपाः शब्दाः भवेयुः । रेफ-णकारौ च लघू भवेताम्। समासाभावोऽल्पसमासो वेति समासः। माधुर्यशब्दानां पदान्तरयोगेन रचना माधुर्यगुणस्य, वैदर्भीरीतेः, उपनागरिकावृत्तेः, सुकुमारमार्गस्य, मधुररचनायाः, द्विविधश्रृङ्गारस्य, शान्तस्य, करुणरसस्य च व्यञ्जकाः साधकाश्च भवन्ति । यत्र एवम्भूतेषु स्थलेषु यदि एवम्भूताः व्यञ्जकवर्णाः न परिलक्ष्यन्ते तर्हि तत्र समासः रसचर्वणायां बाधकः भवति ।

तस्य साधकत्वे उदाहरणम् –

लताकुञ्जं गुञ्जन् मदवदलिपुञ्जं चपलयन्
समालिङ्गन्नङ्गं द्रुततरमनङ्गं प्रबलयन् ।
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि[45] ॥

श्लोकेस्मिन् वसन्ततोः, श्रृङ्गाररसस्य, उद्दीपनविभावस्य, मलयपवनस्य च वर्णनं वर्तते। अत्र मधुकरसमूहः पवनसम्पर्केण मदमत्तः भवति, माधवीप्रभृतिलताकुञ्जं चपलीकरोति, परस्परविहारार्थं शरीरं संस्पृशति, मदनं दृततरं बलवन्तं करोति, प्रस्फुटितं कमलवनं तरलयति, मन्दं मन्दं यथा न विनश्येत् सुरभिश्च प्राप्येत तथा शनैः शनैः पुष्पान्तर्गतपरागसमूहं गृह्णन् वायुः दिशि दिशि पुष्परसं विक्षिपतीति प्रसङ्गः ।

श्लोकस्यास्य प्रथमपादे ञकारजकाराः, द्वितीयपादे डकारगकाराः, तृतीय-चतुर्थयोः नकारदकाराः, किञ्च प्रथमे चतुर्थे च पादे अल्पावृत्तिः, द्वितीये अपि पादे अवृत्तिरेव माधुर्यगुणं व्यनक्ति ।

तस्य बाधकत्वे उदाहरणम् –

अनवरतनयनजललवनिपतनपरिमुषितपत्रलेखं ते ।
करतलनिषण्णमबले वदनमिदं कं न तापयति[46] ॥

उदाहरणेस्मिन् ईर्ष्याविप्रलम्भाख्य श्रृङ्गारे व्यङ्ग्ये अपि दीर्घसमाससङ्घटना दृश्यते ।

अतोऽत्र दीर्घसमासः श्रृङ्गाररसप्रतीतौ बाधकः भवतीति व्यभिचारः स्फुटः।

दीर्घसमासस्य व्यञ्जकवर्णाः –

वर्गस्याद्यतृतीयाभ्यां युक्तौ वर्णौ तदन्तिमौ।
उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफौ टठडढैः सह ॥
शकारश्च षकारश्च तस्य व्यञ्जकतां गताः।
तथा समासबहुलो घटनौद्धत्यशालिनी[47] ॥

अर्थात् वर्गस्य आद्यः (कचटतपरूपः), तृतीयः (गजडदबरूपः), ताभ्यां सह तदन्तिमौ द्वितीयचतुर्थौ (खछठथफ-घझढधभरूपौ) वर्णौ संयुक्तौ यदि स्याताम् (उदाहरणम् – द्राक् खमति, द्राग् घर्षति, द्राक् फलति, द्राक् धावति, अच्छः, कच्छः, स्वच्छन्दः), तथा वर्णस्योपरि अधोभागे वा किञ्च द्वयोरुपर्यधश्च रेफेण सह विद्यमानौ वर्णौ भवेताम् (उदाहरणम् – अर्कः, तर्कः, विप्रः, क्षिप्रः, आर्द्रः), टठडढवर्णाः बहुशः स्युः (उदाहरणम् – अट्टहासः, विसंष्ठुलः, गड्डलिका, शण्ढः, शकटः, कमठः, डिम्भः, मूढः), तालव्यशकारः मूर्धन्यषकारश्च प्राचुर्येण भवेत् (उदाहरणम् – शुष्कः, शीर्षः), दीर्घसमासः, औद्धत्यशालिनी, उद्भटाक्षरबहुला, विकटासङ्घटना, गौडीरीतिः, परुषावृत्तिः, विचित्रमार्गः, वीरवीभत्सरौद्ररसानां च वर्णनं यत्र स्यात् तर्हि तत्र ओजगुणः वर्तत इति ज्ञायते। एते ओजसः साधकाः भवन्ति। एतद्वैपरीत्यं तु बाधकत्वरूप एव।

तस्य साधकत्वे उदाहरणम् –

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातः
सञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः[48] ॥

प्रसङ्गेऽस्मिन् मध्यमपाण्डवभीमसेनः द्रौपदीं प्रति कथयति – हे पाञ्चालराजतनये अचिरेणैव कालेन चञ्चलितभुजाभ्यां सञ्चलितभीषणगदाप्रहारैः सुयोधनस्य उरुयुगलं सञ्चूर्य क्लिन्नं संसक्तं बहलं च रक्तं हस्तौ गृहीत्वा अहं भीमसेनः भवत्याः शिरोरूहान् अवभूषयिष्यामि। दुर्योधनं हत्वा तवावमानस्य प्रतिकारं विधास्यामि इति। अत्र द्रु, द्ध, भ्र, ण्ड, र्णि, त्तम्, अन्ये च संयुक्तवर्णानाम् तथा च तालव्यशकारस्य च बहुलप्रयोगे काव्येऽस्मिन् दीर्घसमासः, औद्धत्यशालिनी उद्भटाक्षरबहुला, विकटा सङ्घटना, गौडीरीतिः, परुषावृत्तिः विचित्रमार्गाश्च परिलक्ष्यन्ते। अत्र रौद्ररसस्य च वर्णनं वर्तत इति कारणात् ओजः स्फुटत्वेनावभासते।

तस्य बाधकत्वे उदाहरणम् –

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां
यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा।

यो यस्तत्कर्मसाक्षी, चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः

क्रोन्धान्धस्तस्य तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तकोह्म्[49] ॥

अत्र प्रतिशोधपरायणः अश्वत्थामा पाण्डवानां विनाशार्थं अङ्गराजकर्णं प्रति कथयति यत् – पाण्डवसैन्यानां मध्ये बाहुगर्वेण यः शस्त्रं धारयति, पाञ्चालवंशे शिशुः अधिकवयोयुक्तः युवा प्रौढः वृद्धो वा भवतु, गर्भाशयगतो वा भवतु, यः तादृशबधरूपकर्मणः साक्षाद्द्रष्टा वर्तते, यो युद्धे मयि भ्रमति, यः प्रतिकूलाचारी च वर्तते, तेषां सर्वेषां क्रोधान्धोऽहं अश्वत्थामा स्वयं जगतां विनाशकस्य यमस्यापि विनाशकोऽस्मि। अद्य युद्धे सर्वान् मारयिष्यामि इति मे दृढसङ्कल्पः।

अत ओजोगुणस्य प्रख्यातोयं श्लोकः रौद्ररसेऽपि व्यङ्ग्ये समासदैर्घ्याभावात् व्यभिचारः भवति। उद्धतस्यार्थस्य वर्णनात् दीर्घसमासवाक्यवाच्यत्वाभावेऽपि अत्र ओजोगुणव्यञ्जकत्वं वर्तते।

मध्यमसमासस्य व्यञ्जकवर्णाः –

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।

स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च।

शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थबोधकाः श्रुतिमात्रतः[50] ॥

अयं गुणः समस्तासु रचनासु, सर्वेषु प्रबन्धेषु, समस्तेषु रसेषु च सर्वसाधरणतया तिष्ठति। श्रवणमात्रेण शब्दाः अस्मिन् अर्थबोधकाः भवेयुः। एवञ्च असमासस्थले कोमलशब्दव्यङ्ग्यत्वेऽपि प्रसादगुणः भवेत्। श्रुतिमाधुर्ये सति अकोमलशब्दव्यङ्ग्यत्वे माधुर्यगुणः, विकटाक्षरशब्दव्यङ्ग्यत्वे च ओजगुण इति मन्तव्यः। उदाहरणं यथा –

सूचीमुखेन सकृदेव कृतव्रणस्त्वं

मुक्ताकलाप लुठसि स्तनयोः प्रियायाः।

बाणैः स्मरस्य शतशो विनिकृत्तमर्मा

स्वप्नेपि तां कथमहं न विलोकयामि[51] ॥

अत्र श्रीकृष्णानन्दनिर्मिते सहृदयानन्दे द्वितीयाङ्के प्रियावियुक्तस्य कस्यचित्पुरुषस्य प्रियायाः स्तनन्यस्तं मुक्ताहारं परोक्षमपि भावोपनीतं सम्बोध्य वदति। हे मौक्तिकहार ! सूच्यग्रभागेन एकवारमेव त्वं कृतच्छेदः सन् तदारभ्य प्रियायाः स्तनयोरुपरि इतस्ततः सञ्चलितः लुठसि। अहं तु मनसिजस्य बाणैः अनेकशः विच्छिन्नहृदयः सन् स्वप्नावस्थायां तां मनोरमां प्रियां केनापि प्रकारेण न विलोकयामि। अनुभवजन्योऽयं विषयः सर्वथा पाठकानां हृदि आनन्दं जनयति। प्रसङ्गस्यास्य श्रवणमात्रत एव अर्थप्रतिपादकशब्दव्यङ्ग्यत्वेन झटिति अर्थावबोधनं भवतीति कृत्वा प्रसादगुणोऽत्र भ्राजते। तदर्थम् अस्मिन् साधकबाधकभावः न परिलक्ष्यते। यतो हि मध्यमसमासमाश्रित्य, मध्यमावृत्तिमालम्ब्य समस्तेषु रसेषु प्रबन्धेषु रचनासु च सन्निहितो

भवतीति कारणात्।

उपसंहारः –

एवं प्रकारेण आलङ्कारिकाः अलङ्कारशास्त्रे समासस्योपादेयतां रसस्य व्यञ्जकतां च उपस्थापयन्तः व्याकरणशास्त्रप्रतिपादितसमासमतिरिच्य साहित्यशास्त्रीयसमासस्य प्राधान्यं प्रदर्शयन्तीति निबन्धे मया समालोचि । किञ्च रसानामास्वादने यद्यपि बहुविधकाव्यतत्त्वानि कारणानि भवन्ति तथापि प्रामुख्येन समास एव प्रमुखहेतुरूपेण तिष्ठतीति प्रबन्धेऽस्मिन् मया प्रत्यपादीति शम्।

पादटिप्पणी –

1. वक्रोक्तिजीवितम्, 1.18
2. महाभाष्ये प्रथम आह्निके, पृ.सं.4
3. श्रृङ्गारप्रकाशे प्रथमप्रकाशः, पृ.सं.3
4. ध्वन्यालोके प्रथमोद्योतः, पृ.सं.13
5. साहित्यदर्पणे, 2.18
6. श्रृङ्गारप्रकाशे प्रथमप्रकाशः, पृ.सं.3
7. साहित्यदर्पणे, प्रथमः परिच्छेदः, पृ.सं.21
8. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, द्वितीयो भागः, पृ.स.365
9. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, द्वितीयो भागः, पृ.स.365
10. लघुसिद्धान्तकौमुद्याः समासप्रकरणे, पृ.सं.108
11. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, द्वितीयो भागः, पृ.स.366
12. वैयाकरणभूषणसारे समासशक्तिविमर्शे, श्लो.सं.28, पृ.सं.580
13. वैयाकरणभूषणसारे समासशक्तिविमर्शे, श्लो.सं.29, पृ.सं.588
14. ध्वन्यालोकः, 1.1
15. तत्रैव प्रथमोद्यते
16. अस्पृष्टा दोषमात्राभिः समग्रगुणगुम्फिता।
    विपञ्चिस्वरसौभाग्या वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥ - काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिः,द्वि.अ.श्लो.सं.1
    आश्लिष्टश्लथभौवां तां पुराणच्छायया श्रिताम्।
    मधुरां सुकुमारां च पाञ्चालीं कवयो विदुः ॥ - काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिः, द्वि.अ.श्लो.सं.6
    समस्तात्युद्भटपदामोजःकान्तिगुणान्विताम्।
    गौडीयामिति गायन्ति रीतिं रीतिविचक्षणाः ॥ - काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिः, द्वि.अ.श्लो.सं.4
17. माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते ॥ - का.प्र.9.9, पृ.सं.409
    ओजः प्रकाशकैस्तैस्तु परुषा कोमला परैः ॥ - का.प्र.9.10, पृ.सं.409
18. ध्वन्यालोके,62-3.61 ,पृ.सं256.
19. काव्यप्रकाशे, 8.74-76
20. वक्रोक्तिजीविते, 1.30
21. तत्रैव, 1.42-43
22. तत्रैव, 1.49

23. साहित्यदर्पणे, 9.3-4
24. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, द्वितीयो भागः, पृ.स.368
25. तैत्तिरीयोपनिषदः ब्रह्मानन्दवल्याम्, 2.7.1
26. कादम्बर्याः कथामुखे, श्लो.सं.8, पृ.सं.5
27. साहित्यदर्पणे, 8.3
28. तत्रैव, 2.2, पृ.सं.33-34
29. काव्यप्रकाशे, 2.1
30. तत्रैव, 2.2
31. साहित्यदर्पणे, 2.3, पृ.सं.34
32. तत्रैव, 2.4, पृ.सं.37
33. काव्यप्रकाशे, 2.43, पृ.सं.58
34. तत्रैव, 4.10, पृ.सं.83
35. रसगङ्गाधरस्य प्रथमानने, पृ.सं.71-74
36. तत्रैव प्रथमानने, पृ.सं.8
37. ध्वन्यालोके,3.62 ,पृ.सं256.
38. काव्यप्रकाशे, 8.1, पृ.सं.379
39. साहित्यदर्पणे, 8.2, पृ.सं.736
40. तत्रैव, 8.4, पृ.सं.737
41. तत्रैव, 8.5, पृ.सं.738
42. तत्रैव, 8.7, पृ.सं.739
43. साहित्यदर्पणे, 8.8, पृ.सं.740
44. काव्यप्रकाशे, 8.73
45. तत्रैव, 8.4
46. ध्वन्यालोके, 3.312
47. साहित्यदर्पणे, 8.5-7
48. वेणीसंहारनाटके, 1.21
49. तत्रैव, 3.32
50. साहित्यदर्पणे, 8.8
51. साहित्यदर्पणस्य अष्टमपरिच्छेदे, पृ.सं.740

सन्दर्भग्रन्थाः –

1. कादम्बरी, चन्द्रकला संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकारः आचार्यशेषराजशर्मा रेग्मीः, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशनम्, वाराणसी-221001, 1979.
2. काव्यप्रकाशः, मणिव्याख्यया समलंकृता, व्याख्याकारः प्रो. सूर्यमणिरथः, शाम्बिदीप्रकाशनम्, पुरी, ओडिशा-752001, 2012.
3. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिः, विद्याधरी हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकारः श्री पं. केदारनाथशर्मा, चौखम्बाकृष्णदासअकादमी, वाराणसी-221001, 2010.
4. तैत्तिरीयोपनिषद्, श्रीशङ्कराचार्यः, गीताप्रेसः, गोरखपुरम्.
5. ध्वन्यालोकः, प्रकाश हिन्दीव्याख्योपेतः, व्याख्याकारः आचार्यजगन्नाथपाठकः, चौखम्बाविद्याभवनम्, वाराणसी-221001, 2009.

6. वक्रोक्तिजीवितम्, सुधासंस्कृतहिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकारः पं. परमेश्वरदीनपाण्डेयः, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशनम्, वाराणसी-221001, 2014.
7. वेणीसंहारनाटकम्, गङ्गा-भूषणसंस्कृतहिन्दीव्याख्योपेतौ, व्याख्याकारः आचार्यमाधवजनार्दनरटाटे, भारतीयविद्याप्रकाशनम्, वाराणसी-221001, 2000.
8. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, द्वितीयः भागः, श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दीव्याख्यासमन्विता, व्याख्याकारः श्रीगोविन्दाचार्यः, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशनम्, वाराणसी-221001, 2023.
9. वैयाकरणभूषणसारः, द्वितीयो भागः, प्रभाकरीसंस्कृतहिन्दीव्याख्याविभूषितः, व्याख्याकारः डा. प्रभाकरमिश्रः, चौखम्बाविद्याभवनम्, वाराणसी-221001, 2017.
10. महाभाष्यम्, प्रथमनवाह्निकः, अनुवादकः चारुदेवशास्त्री, मोतीलालबनारसीदासः, वाराणसी-221001, 1968.
11. रसगङ्गाधरः, चन्द्रिका संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकारः पण्डितमदनमोहनझा, चौखम्बाविद्याभवनम्, वाराणसी-221001, 2013.
12. लघुसिद्धान्तकौमुदी, तर्कसङ्ग्रहकारिकावल्युपवृंहिता, सम्पादकः श्रीगोविन्दाचार्यः, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशनम्, वाराणसी-221001, 2010.
13. श्रङ्गारप्रकाशः, भोजदेवः, प्रथम-द्वितीयप्रकाशात्मकौ, सम्पादकः शास्त्री पि. पि. सुब्रह्मण्यः, श्रीविनिलासप्रेसः, 1939
14. साहित्यदर्पणः, चन्द्रकला संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकारः आचार्यशेषराजशर्मा रेग्मीः, कृष्णदासअकादमी, वाराणसी-221001, 1999.

❐

पाणिनीयव्याकरणे सांस्कृतिकदृष्टिः

डॉ. मनीषशर्मा*

शोधसारः

पाणिनिव्याकरणं शब्दशास्त्रमिति सर्वत्र व्यवहारः लोके दरीदृश्यन्ते। शब्दसाधुत्वान्वाख्यानं तु अनेन शास्त्रेण क्रियते चेत् शब्दप्रतिपादकं शास्त्रमित्यपि श्रुतिः। अस्त्येव अत्र नास्ति कश्चित् मतभेदः किन्तु पाणिनिव्याकरणे न केवलं साधुशब्दान्वाख्यानं वर्तते अपि तु पाणिनिः भारतीयसंस्कृतिञ्च स्वसूत्रेण निबध्नाति यतः शास्त्राणां प्रवृत्तिः सदैव लोकानुसारी भवति लोकानुगतं शास्त्रमिति प्रथितम्। तथैव व्याकरणशास्त्रे नाना सूत्रेषु बहूत्र अवलोक्यते तथाहि ***शब्ददर्दुरं करोति, पक्षिमत्स्य मृगान् हन्ति*** *तथा* ***अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्*** *अत्र गोत्रसञ्ज्ञा विधायकं सूत्रं तस्य योऽर्थः तमर्थं पाणिनिना विचार्य व्यरचि अर्थात् अपत्यं सन्ततिः तच्च यदि पुत्रस्य पुत्रः अपत्येऽर्थे पौत्रः एवमेव या वंशावली अस्मदीय भारतीयपरम्परायां वर्तते तदनुगतेन सूत्रकारस्य अभिप्रायः किं नाम गोत्रमित्युक्ते सति पिण्डदानावसरेषु माङ्गलिककार्येषु वा गोत्रं विना कदाचिदपि संस्कारः नैव विधीयते। भारतीयसंस्कृतौ तर्हि सूत्रकारस्य एष विचारः सर्वोत्कृष्टः पौत्रप्रभृतिः अपत्यं यद् भवति तस्यैव गोत्रसञ्ज्ञा कथ्यते। स्त्रीप्रकरणे लोके व्यवहरामः वयं पुंयोगेन स्त्रीत्वं विज्ञायन्ते जनैः यथा अयं गोपः तस्य स्त्री अस्ति चेत् गोपी इति व्यवहारः अनेन अस्माकं भारतीयसंस्कृतौ पुरूषेण स्त्रीत्वं सम्यक् परिचीयते इत्यपि आशयः। एवमेव बहूनि सूत्राणि सन्ति तानि तु सांस्कृतिकदृष्ट्या निबद्धानि सन्ति।*

पारिभाषिकशब्दाः -

गोत्रम्, भारतीयसंस्कृतिः, अपत्यम्, धर्मवत्, आस्तिकः, स्वरः, क्षेपः, श्राद्धः काठकः इत्यादयः शब्दाः सन्ति।

वयसि प्रथमे सूत्रमधिकृत्य दीक्षितः व्याचष्टे प्रथमावयोवाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् कुमारी इति उदाहरणम्। वस्तुतः भारतीयसंस्कृतिदृष्ट्या प्रथमावयववाचकत्वेन कथं बोधः इति मनसि निधाय पाणिनिसूत्रं निर्माणमेव संस्कृतिञ्च शास्त्रेण आविष्करोति अथ च स्त्रीणां स्वान्त्र्यं नैव वर्तते आजीवनं कथितञ्च –

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति जीवने।

पुत्रस्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वान्त्र्यमर्हति ।।[1]

तर्हि जीवने पुरूषस्य दायित्वं संरक्षणाय चेत् तन्नाम्ना तस्याः स्त्रीत्वविवक्षायां यथा

---

* व्याकरणविद्याशाखा, सहायक प्राध्यापकः, केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, श्रीरघुनाथकीर्तिपरिसरः, देवप्रयागः, उ.ख.।

[1] वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी लक्ष्मी व्याख्योपेता पृष्ठसंख्या 705

स्यादिति विचार्य पुंयोगाख्यामिति पाणिनिना सूत्रं कृतं येन एतेषामाचार्याणां व्याकरणे इति सूक्ष्मा दृष्टिः इति नैव विस्मरणीया। अस्मदीया भारतीयसंस्कृतिः सनातनपरम्परोपेता तथैव माङ्गलिककार्ये पत्नी सर्वदैव साहचर्या तथा धर्मानुवर्तनी भवति। सर्वे व्यवहरन्ति जानन्ति च शब्दान्वाख्यानदृष्टया अपि च आचार्येण कथितम् **पत्युर्नो यज्ञसंयोगे**[1] संयोगः यज्ञेन सह यज्ञकर्मणि सम्बन्धः तदा पति शब्दस्य नादेश ङीष् प्रत्ययोऽपि भवति अन्तरमेव पत्नी शब्दस्य साधुत्वं सङ्गच्छते व्याकरणे ईदृशसूत्राणां विशेषव्याख्यानमेव संस्कृतिमाचिनोति। **श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते**[2] सूत्रेण वेदमधीते सः श्रोत्रियः, निपातितः नकारस्तु स्वरार्थः प्रकृतिप्रत्ययाभ्यां विना उपतिष्ठते निपातः तर्हि अत्रापि सर्वशास्त्रमूलकं वर्तते वेदः तद् अध्येता श्रोत्रियः इति उपदिशति अथ च अन्वाख्यानं यत् करोति तदेव वैशिष्ट्यमस्ति शब्दशास्त्रस्य इतोऽपि बहुधा प्रपञ्चितं महाभाष्यकारेण तथाहि **ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति**[3] एतादृशी दृष्टिः आचार्याणां वर्तते । षोडश संस्कारेषु नामकरणसंस्कारः सर्वप्रसिद्धः वस्तुतः शाब्दिकः नामकरणसंस्कारं सम्यक् सुस्पष्टतया आचरति यतः महाभाष्यकारेण उक्तम् **जातस्य पुत्रस्य नाम विदध्यादघोषवदाद्यन्तरन्तःस्थमवृद्धं त्रिपुरूषानूकमनरिप्रतिष्ठितम्**[4] अनेन घोषवन्तः वर्णाः आद्यन्तरन्तस्थसञ्ज्ञकवर्णाः इतोऽपि वृद्धसञ्ज्ञं विहाय वंश्ये त्रिपुरूषोच्चारणनामघटितवर्णं यदि स्यात् तदेव कर्तव्यमिति विना व्याकरणेन कथं सम्भवः द्विवर्णात्मकः चतुर्वर्णात्मको वा नामकरणे अक्षराः शब्दाः भवेयुः इयमस्ति भारतीयसंस्कृतिः या च व्याकरणशास्त्रे सर्वथैव दरीदृश्यन्ते वेदाशाखां ये अधीयते तदनुकूलेन आचरणमपि विदध्यात् । तथैव **जीवति वंश्ये तु युवा** इति सूत्रेण युवसञ्ज्ञा भवति गोत्रसञ्ज्ञां प्रबाध्य सूत्रमिदं प्रवर्तते अर्जुनस्य अपत्यमभिमन्युरस्ति अभिमन्योरपत्यम् परीक्षितः तर्हि परीक्षितस्य अपत्यं जनमेजयः तस्मात् अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् इत्यनेन जनमेजयः अर्जुनस्य 'गोत्रापत्यम्' विद्यते इति कथयितुं शक्यते । परन्तु यदि अर्जुनाभिमन्युः तथा परीक्षितः सर्वेषु कश्चन् जीवति तर्हि जनमेजयः अर्जुनस्य 'युवापत्यम्' वर्तते इति कथ्यते। अत्र गोत्रसंज्ञां बाधित्वा युवसंज्ञाविधानं साक्षात् दृश्यते । यतो हि अपत्यं पौत्रप्रभृतेः पितरि जीवति सति युवसञ्ज्ञा विधीयते अनेन पाणिनिना ध्वन्यते यत् भारतीयसांस्कृतिकदृष्टेः तावद् अस्य समपयोगिता अस्माकं व्यवहारे यथा गार्ग्ये जीवति गार्ग्यायणः भ्राता कनीयानिति ।

पाणिनिना कथितम् – **चरणेभ्यो धर्मवत्**[5] चरणशब्दाः कठकपालादिवाचकः ये शाखारूपेण प्रसिद्धाः तादृश शब्देभ्यः समूहार्थे धर्ववत् प्रत्ययाः भवन्ति अत्र वत् सादृश्यार्थकेन स्वीक्रियते

---

[1] पाणिनीय अष्टाध्यायी सम्पादकः गोपालदत्तपाण्डेयः चतुर्थाध्यायस्य प्रथमपादस्य 33 सूत्रम्

[2] पाणिनीय अष्टाध्यायी सम्पादकः गोपालदत्तपाण्डेयः पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयपादस्य 84 सूत्रम् ।

[3] महाभाष्यं पस्पशाह्निकम्।

[4] महाभाष्यं पस्पशाह्निकम्।

[5] पाणिनीय-अष्टाध्यायी सम्पादकः गोपालदत्तपाण्डेयः चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयपादस्य 46 सूत्रम् ।

धर्माम्नाययोः सत्वात् चरणशब्दः कठकपालादिवाचकः अतः छन्दोगानां धर्मः आम्नायो वा छान्दोग्यमिति कथ्यते एतस्य नाम सर्वत्र उपनिषद् ग्रन्थेन प्रथितं तथा कठानां धर्मः काठकं समूहार्थे । अस्मदीया भारतीयसंस्कृतिः सूक्ष्मरूपेण व्याकरणशास्त्रे सर्वथैव सुप्रसिद्धः , अस्ति मतिः अस्य आस्तिकः , नास्ति मतिः अस्य सः नास्तिकः अत्र **अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः**[1] सूत्रेण व्याख्यायते सूत्रार्थदृष्टया व्यवहारे भारतीयसंस्कृतौ च किदृशी अभिशीलता तेषां मुनीनां लक्ष्यैकचक्षुष्कानां वर्तते स्म तावती तु आस्मकीनः दृष्टिः यातुं नार्हति । पुराकाले गुरोर्राज्ञया विवाहं प्रतदि छात्राः गच्छन्ति स्म अध्ययनान्तरमिति नियमः सर्वथैव अनुपालनीयः भूमिशयमनपि तेषु नियमेषु कश्चन विशेषः यदि तथापि विस्मृत्या अथवा उद्दण्डेन हठात् कश्चन बालकः खट्वारोहति खट्वायां स्वपिति तदर्थमेव खट्वारूढोऽयं जाल्मः निन्दित गर्हितप्रयोगः शास्त्रेषु अस्माकं मिलति तदधिकृत्य पाणिनिना सूत्रं व्यरचि **खट्वा क्षेपे**[2] निन्दायां खट्वा शब्दस्य समासः तदुदाहरणं पूर्वं कथितं तर्हि आचार्याणां सूत्रनिर्माणशैल्या ज्ञायते व्याकरणे बहुविधं सूत्रं भारतीयसंस्कृतिमाधीरीकृत्य सूत्रकारः रचयामास । व्याकरणे च सञ्ज्ञासूत्रेषु सर्वत्र आदौ सञ्ज्ञी भवति पश्चात् सञ्ज्ञा , कार्यिणः कार्येण भवत्येव यथा कश्चन मांसपिण्डः सञ्ज्ञी तस्य देवदत्त इति सञ्ज्ञा विधीयते इतोऽपि अदेङगुणः इत्यत्र पूर्वमेव सञ्ज्ञी वर्तते तर्हि व्याकरणशास्त्रस्य प्रथमं सूत्रं वर्तते वृद्धिरादैच् पश्यन्तु अत्र किमर्थं पाणिनिना आदौ सञ्ज्ञिनं नोपस्थापितम् । तच्च महाभाष्यकारेण कथितं **मङ्गलार्थमिति**[3] छात्राणां वृद्धिः मङ्गलञ्च यथा स्यात् अध्ययने सति इत्यपि आकाङ्क्षया आदौ वृद्धिपदं सञ्ज्ञापदमुच्चारितम्। एतादृशं मङ्गलानुशासनं कृत्वा शास्त्रकारः सूत्रं रचयामास, आचार्यः तदेव विशेषरुपेण संस्कृतिं बोधयति। क्रियमाणं पित्र्यं कर्म यत् भवति शरद् ऋतौ तदर्थमपि विशेषरूपेण **श्राद्धे शरदः**[4] इत्यपि सूत्रेण विज्ञायते अत्र न श्राद्धशब्द श्रद्धावान् इत्यस्मिन् अर्थे अपितु पितृनिमित्तकं यत् कर्म तदर्थं श्राद्धपदमुक्तमिति। शारदिकः श्राद्धं अनेन परिलक्ष्यते पाणिनिना सर्वं भारतीयसंस्कृतिमेव आलोच्य स्वीकृतम्। व्याकरणे शब्दसाधुत्वप्रतिपादनमेव मुख्यं किन्तु शाब्दिकाः यथा साध्नुवन्ति तथैव व्यवहरति अपि च तेन वेदोच्चारणमन्त्रवत् पुण्यं लभते अतः महाभाष्यकारेण कथितम् **शास्त्रपूर्वके प्रयोगेऽभ्युदयस्तत्तुल्यं वेदशब्देन**[5] यथा शास्त्रप्रचोदितं तद्वत् संसाध्य व्यवहारे प्रयोगः भवति चेत् वेदोच्चारणमन्त्रस्य यावत् पुण्यं लभते तदनुगुणेन तद्वत् पुण्यमेव लप्स्यते इति आशयः भाष्यकारस्य। अनेन अभ्युदयेन मोक्षप्राप्तिः व्याकरणदृष्टया सङ्गच्छते तथा च शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति इत्यपि सर्वत्र प्रसिद्धमेव वर्तते चेत्

---

[1] पाणिनीय- अष्टाध्यायी सम्पादकः गोपालदत्तपाण्डेयः चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थपादस्य 60 सूत्रम् ।

[2] पाणिनीय- अष्टाध्यायी सम्पादकः गोपालदत्तपाण्डेयः द्वितीयाध्यायस्य प्रथमपादस्य 26 सूत्रम् ।

[3] वृद्धिरादैचसूत्रस्थमहाभाष्ये

[4] पाणिनीय अष्टाध्यायी सम्पादकः गोपालदत्तपाण्डेयः चतुर्थाध्यायस्य तृतीयपादस्य 12 सूत्रम् ।

[5] महाभाष्यं पस्पशाह्निकम्।

शाब्दिकानां वस्तुतः मोक्षद्वारा शास्त्रसम्पूर्तिः अनेन शास्त्रकारेण शब्दज्ञाने सति कथं भारतीयसंस्कृतौ प्रवृत्तिः तदनुगुणमाचरणञ्च सर्वं ज्ञापयति। वेदाध्यापनाय छात्रः गुरोः पार्श्वे याति मुहुर्तादिकं दृष्टवा वेदारम्भः कर्तव्यः इति नियमः भारतीयसंस्कृतौ वर्तते अत्र सूत्रकार्य अभिप्रायः नियमपूर्वकमेव आख्यानं अध्यापनं भवेदिति यतः अध्यापकात् अधीते प्रयोगः परिलभ्यते तथाहि **आख्यातोपयोगे**[1] इति सूत्रेण नियमपूर्वकाध्यापनं निर्दिष्टं तेन अत्रापि सनातनसंस्कृतिः परिलक्ष्यते। भगवान् पाणिनिः सूत्रं रचयामास **उच्चैरुदात्तः नीच्चैरनुदात्तः समाहारःस्वरितः**[2] एतैः सूत्रैः प्रमाणीक्रियन्ते स्वरविषयकं ज्ञानं शब्दशास्त्रेणैव भवितुमर्हति अथ च व्याकरणे अनुबन्धाः भवन्ति। इत् सञ्ज्ञायोग्यस्यत्वात् सत्वात् तेषां प्रयोजनमपि स्वरार्थमेव वर्तते यतो हि व्याकरणे तु अनुबन्धविनिर्मुक्तस्यैव पदार्थस्य बोधः भवति चेत् अच् ठक् प्रत्यययोः अवशिष्टः विनिर्मुक्तः अकारः किन्तु अनुबन्धणकारचकारयोः प्रयोजनं वर्तते स्वरार्थमेव चकारस्य इत् सञ्ज्ञा भवति **चितः**[3] सूत्रेण अन्तोदात्तः विधीयते तथैव ककारानुबन्धस्य इत् सञ्ज्ञा कृते सति **कितः**[4] सूत्रेण अन्तोदात्तः सङ्गच्छते अनुबन्धगतवैशिष्ट्यमेव वर्तते । स्वरज्ञानेन शाब्दबोधः भवति तथाहि महाभाष्यकारेण कथितम् **दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।**[5] अनेन यथा इन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधादेव स्वकीयं मृत्युं प्राप्तवान् यतः वृत्रेण आरब्धः इन्द्रशत्रुर्वधस्व इति मन्त्रोच्चारितः।

इन्द्राभिचारः यो हि शातयिता इन्द्रस्य क्रिया पदेन अत्र शत्रुबोधः कर्तव्यः न तु रूढिवाचकार्थः तथा स्वीकारे बहुब्रीहिसमासः अन्यार्थप्राध्यान्येन इन्द्रः शत्रुः यस्य वृत्रनामधेयराक्षसस्य अत्र बहुब्रीहिः क्रियमाणे पूर्वपदप्रकृतिस्वरः अन्तोदात्तः क्रियते चेत् तत्पुरूषः वृत्रेण पूर्वपदप्रकृतिस्वरमुक्तं मन्त्रेषु तस्मात् बहुब्रीहिसमासस्य बोधः , तेन स्वरापराधादेव स्वीयमेव मृत्युमाप्तवान्। अथ च वर्णविकारः यत्र भवति तैत्तरीयसंहितायां मन्त्रे उद्ग्राभं च निग्राभ्रं च ब्रह्मदेवा अवीवृघन् अत्र ह्यग्रहोर्भश्छन्दसि अनेन हकारस्य भकारः जातः। शाब्दिकाभिप्रायः वैदिकमन्त्रेषु अर्थबोधदृष्टया अथवा क्रमपादविषये वा यदि व्याकरणशास्त्रदिशा प्रतिपाठः न स्यात् कदापि सार्थक्यमेव नैव सम्पत्यस्यते अतः महाभाष्यकारेण उक्तं **रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्**[6] यतो हि व्याकरणमध्येता वेदार्थं वर्णविकारं जानाति स एव रक्षयितुं वेदानां समर्थः। मन्त्रेषु याज्ञिकाः वदन्ति स्थूलपृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत् अस्मिन् मन्त्रे स्थूला चासौ पृषती स्थूलपृषती

---

[1] पाणिनीय अष्टाध्यायी सम्पादकः गोपालदत्तपाण्डेयः प्रथमाध्यायस्य चतुर्थपादस्य 29 सूत्रम् ।

[2] पाणिनीय अष्टाध्यायी सम्पादकः गोपालदत्तपाण्डेयः प्रथमाध्यायस्य द्वितीयपादस्य 29,30,31 सूत्राणि ।

[3] पाणिनीय अष्टाध्यायी सम्पादकः गोपालदत्तपाण्डेयः षष्ठाध्यायस्य प्रथमपादस्य 163 सूत्रम् ।

[4] पाणिनीय अष्टाध्यायी सम्पादकः गोपालदत्तपाण्डेयः षष्ठाध्यायस्य प्रथमपादस्य 165 सूत्रम् ।

[5] महाभाष्यं पस्पशाह्निकम्।

[6] महाभाष्यं पस्पशाह्निकम्।

अथवा स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सा स्थूलपृषती अत्र हि महान् क्लेशः स्वरविषये शाब्दबोधे च यतः बहुब्रीहिसमासस्वीकारे पूर्वपदप्रकृतिस्वरः तत्पुरूषसमासस्वीकारे अन्तोदात्तः अत्र व्याकरणदृष्टया समाधीयते यत् स्वरक्रमेण अर्थसमासो ग्राह्यः तर्हि शाब्दबोधः स्पष्ट एव । तस्मात् एवमेव अस्मदीया गौरवभूता सांस्कृतिकदृष्टिः व्याकरणे सर्वत्र दरीदृश्यते अत्र नास्ति कश्चिदपि सन्देहः।

सन्दर्भग्रन्थसूची –

- अष्टाध्यायी – गोपालदत्तपाण्डेयः
- महाभाष्य - पतञ्जलिः
- वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी आचार्यश्रीभट्टोजिदीक्षितः

❐

वैलक्षण्यगुणोपेता भ्राजते व्यासभारती

डॉ0 त्रिपुरसुन्दरी*

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधिका लोकरञ्जिका वैलक्षण्यगुणोपेता व्यासभारती वर्तते। अनेनकारणेन शोभायमाना देववाणी सुधामयी अस्ति। भक्तवत्सलेन भगवताश्रीकृष्णेन श्रीमद्भगवद्गीतायां इदमुद्घोषितम्–

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।।[1]

महर्षि व्यासदेवः स्वयमेव भगवान् अस्ति। सर्वे जानन्ति एव यत् अखिलब्रह्माण्डनायकः परमात्मा मायाविशिष्टः सन् रजोगुणसम्पन्नो ब्रह्मभूत्वा सृष्टिमुत्पादयति सत्त्वगुणयुक्तो विष्णुस्वरूपः सन् सृष्टिं पालयति। तमोगुणयुक्तः शिवोभूत्वा विश्वं संहरति। यद्यपि परमात्मा निर्गुणो निर्विकारश्चास्ति तथा भक्तेष्टसाधनाय विश्वकल्याणाय च सगुणो भवति। स निःस्पृहो दयालुः अस्ति। अस्य भक्ताः कदापि कथञ्चिदपि अधोगतिं न गच्छेयुः एतदर्थं नानाविधलोकमङ्गलकारिणं कार्यं करोति। महर्षिव्यासरचिताः ग्रन्थाः एतेषां कार्याणां सर्वोत्तमाः उदाहरणस्वरूपाः सन्ति। महाभारतपुराणब्रह्मसूत्र इत्येते महर्षेः वेदव्यासस्य विश्वप्रसिद्धाः प्राचीनतमाः जीवनोद्धारकाः ग्रन्थाः सन्ति। यज्ञदृष्टया वेदानां चतुर्विधविभाजनं अनेनमहर्षिणा कृतमस्ति। महाभारते व्यासमुनिना इदमुद्घोषितम्–

गीता सुगीता कर्तव्या विमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता।।[2]

शास्त्राणां अवलोकनान्तरम् महापुरुषाणां व्याख्यानश्रवणान्तरम् च मया इदं निर्णीतं यत् अस्मिन् संसारे श्रीमद्भगवद्गीतासदृशं आत्मकल्याणार्थं कोऽपि उपयोगी ग्रन्थः नास्ति। विश्वस्य कोऽपि जनः गीताप्रतिपादितजीवनदृष्टिम् अङ्गीकृत्य आत्मनः कल्याणं कर्त्तुम् समर्थो भवति। गीतायां भगवान् वासुदेवः कथयति –

"यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।"[3]

* संस्कृत विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी।

पूर्वाचार्यैः मनीषिभिः मानवानां ऐहिकपारलौकिक समुन्नत्यर्थम् धर्मार्थकाममोक्षरूपाः चत्वारः पुरुषार्थाः विनिश्चिताः। आत्मकल्याणार्थं लोकानुरंजनार्थं शास्त्रेषु पुरुषार्थचतुष्टयस्य सिद्धिः आवश्यकी निर्दिष्टा। एते पुरुषार्थाः मानवानां सर्वाङ्गीण विकासस्य मूलभूतानि कारणानि सन्ति। एतेषु धर्मार्थकामानां समूहः त्रिवर्ग इति कथ्यते। महाभारते एकस्मिन् प्रसङ्गे भगवताव्यासेन इदृशमुक्तम् –

ऊर्ध्वबाहुर्विरोम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते।।[4]

सर्वे जानन्ति भारतीयसंस्कृतिः धर्मप्राणा देवसंस्कृति अस्ति। धर्माचरणात् अर्थरूपसमस्तसाधनानि प्राप्तव्यानि कामनापूरितव्यानि च भवन्ति। महाभारतस्य कर्णपर्वणि धर्मस्वरूपं प्रतिपादयन् महर्षि इदृशं कथयति –

धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तं सः धर्म इति निश्चयः।।[5]

गौतममुनिना कथितम् यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः सधर्मः मनुना अपि उपदिष्टम्–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतत् चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।।[6]

यैः साधनैः मानवाः सम्पन्नाः भूत्वा अन्येषां पुरुषार्थानां सिद्धयर्थं समर्थाः भवन्ति तानि सर्वाणि साधनानि अर्थस्वरूपाणि मन्यन्ते। अर्थं विना जीवननिर्वाहं अपि सम्भवम् नास्ति। अतएव महाभारते इदम् उक्तम् –

"धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
जीवन्ति धनिनो लोके मृताःये त्वधना नराः।।"[7]

किन्तु धर्माचरणं विना अर्थोपार्जनम् श्रेयस्करम् नास्ति। तृतीयः पुरुषार्थः काम एव स्वीकृतः। मानवानां आसक्तिमूलकसमस्तवृत्तीनां वासनां जन्य प्रवृत्तीनां सन्धानं कामोऽस्ति। कामपूर्तिः तु इन्द्रियार्थसंयोगेन भवति। यथा व्यासदेवः कथयति–

धर्ममूलः सदैवार्थः कामोऽर्थंफलमुच्यते।
संकल्पमूलास्ते सर्वे सङ्कल्पो विषयात्मकः।।[8]

भगवता श्रीकृष्णेन गीतायां उक्तम् –

धर्माविरुद्धो कामोऽस्मि भूतेषु[9]

धर्मानुसारं धर्मसंगतः कामः सेव्यो भवति। धर्मस्य अर्थस्य च उपेक्षां कृत्वा कामो न सेव्यः। सम्यक्प्रकारेण धर्मार्थकामरूपत्रिवर्गं पालयित्वा मानवजीवनं सफलं सार्थं च भवति यः पुरुषः कस्मिनचिद् एकस्मिन् पुरुषार्थे आसक्तः स एवं निन्दनीयः भवति।

मनुना प्रोक्तम् –

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च।
अर्थं एवेहं वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः।।[10]

मोक्षः चतुर्थः पुरुषार्थः अस्ति। आधिभौतिक–आधिदैविक–आध्यात्मिकतपानां आत्यान्तिकं विमोचं मोक्षोऽस्ति। मोक्ष एव मुक्तिः। अस्याः द्विप्रकारम् अस्ति। जीवन्मुक्तिः विदेहमुक्तिश्च। जीवन्मुक्तिः जीवनकाले तात्त्विकज्ञानलाभेन भवति। विदेहमुक्तिः तु मरणान्तरं भवति।

इन्द्रियातीतं बुद्धिप्रयासेन अगम्यं आत्मस्वरूपमस्ति। मनसा वाचा अगोचं ब्रह्मस्वरूपम्। अनित्यसाधनैः नित्यस्वरूपं आत्मनः स्वरूप न ज्ञायते। किन्तु महर्षिव्यास भारत्यां नेति–नेति कथनेन चन्द्रदर्शनन्यायेन ब्रह्मनिरूपणं कृतमस्ति। मनसा वचसा अगोचरं तत्त्वं सरलतया श्रोत्रिये ब्रह्मनिष्ठसद्गुरुणा उपदिष्टैः महावाक्यैः बोधगम्यं भवति। अयं व्यासभारत्याः चमत्कारः एव। इदं महर्षिव्यास भारत्याः वैलक्ष्यणम् अस्ति। इदं रहस्यं विषयं तत्त्वदर्शिनो विद्वान्सः एव जानन्ति। अतः इदं सत्यमुक्तम् –

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधिका लोकरञ्जिका, वैलक्षण्यगुणोपेता व्यासभारती।।

सन्दर्भसूची –

(1) श्रीमद्भगवद्गीता 10/37
(2) महाभारत भीष्मपर्व 23/1
(3) श्रीमद्भगवद्गीता 16/22–23
(4) महाभारत स्वर्गारोहण – 18/5/49
(5) महाभारत कर्णपर्व – 69, 59
(6) मनुस्मृति – 2/12
(7) महाभारत उद्योगपर्व – 5/70/23 /72/23
(8) महाभारत
(9) श्रीमद्भगवद्गीता – 7/11
(10) मनुस्मृति – 2/224

❐

वाक्यपदीयस्थब्रह्मकाण्डवैशिष्ट्यविमर्शः

शिवप्रसादपाण्डेयः*

अस्याञ्जगत्याङ्के नाम जीविनो गतिमन्तोऽगतिकाश्च कालभुजगभिया नाजस्रं भयनिधिधनिकाः? तथापि लौकिकसुखस्नेहानुबन्धननिबन्धनमुपगता नराः। स्वीयविकासोपलब्धये बहून् पथ उपगूहन्ते नरः प्रतिदिनम्। ज्ञानार्जनविधौ बहूनि शास्त्राणि यथासमयं धीजनकदम्बैस्सम्प्रथितानि। पुराकाले चञ्चच्चन्द्रमसो गभस्तिभिर्नितरां विभान्तीह संख्यावन्तो महान्तः। सम्पूर्णस्यास्य जगतोऽशेषस्य विधानं सञ्चालनञ्च शब्दत एव सञ्जायमानं दरीदृश्यते। सर्वेषामाधारभूतत्वात्। सूरयस्सर्वंसहा अपि निगदन्ति यत् काव्यादर्शे –

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।[1]

भर्तृहरिरपीमामेव पङ्क्तिं परिचाययन् भणति –

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।[2]

एवमेव स्पष्टीयते यच्छब्दा सूत्रे मणिगणा इवानुस्यूतास्सन्ति सर्वत्र। व्याकरणशास्त्रं सर्वशास्त्रोपकारत्वेन शुद्धाशुद्धविवेकज्ञानराशिसंवलितत्त्वेन च सर्वैस्सदा समाद्रियते। तत्र आ प्रक्रियाग्रन्थाद् व्याख्यानग्रन्थं यावद् बहुशो धीमन्तः प्रयतनपरा समवलोक्यन्ते। अस्मिन्नेव पथि विचारसञ्चारविदधाना आधिक्येन शब्दनिर्माणपरिपाट्यान्निरतास्सन्ति कियन्त आचार्याः। भगवतः प्राप्त्यर्थं भक्तेराश्रयणङ्क्रियते, तत्र सामान्यमतिविशिष्टः पण्डितो वा स्वीयमतिमास्थातुं शक्नोति। किन्तु ज्ञानमार्गव्रतिभिः केवलमनेनैव ज्ञानपथेन तच्चरणरेणुष्ववगाहनङ्कर्तुं पार्यते। अत्र मुख्यतो दर्शनशास्त्राणां प्रभाव: प्रचुरतया दृग्गोचरीभवति। प्रायस्सर्वाण्यपि शास्त्राणि, तदीश्वरसामुख्यकर्मणि जीवस्य साधारणविषयमुपस्थाप्य स्वीयां महतीं भूमिकामावहन्तीति विपश्चिताञ्चेतांसि पुनः पुनर्निगदन्ति। यथा मम्मटोक्तिः 'सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।'

एवमेव स्पष्टीयते यच्छब्दा सूत्रे मणिगणा इवानुस्यूतास्सन्ति सर्वत्र। व्याकरणशास्त्रं सर्वशास्त्रोपकारत्वेन शुद्धाशुद्धविवेकज्ञानराशिसंवलितत्त्वेन च सर्वैस्सदा समाद्रियते। तत्र आ

---

* अतिथिप्राध्यापकः, डी.ए.वी. पी.जी कॉलेज, वाराणसी।

[1] काव्यादर्शः – 1/4

[2] वाक्यपदीयम् – ब्रह्मकाण्डम् - 123

प्रक्रियाग्रन्थाद् व्याख्यानग्रन्थं यावद् बहुशो धीमन्तः प्रयतनपरा समवलोक्यन्ते। अस्मिन्नेव पथि विचारसञ्चारविदधाना आधिक्येन शब्दनिर्माणपरिपाट्यान्निरतास्सन्ति कियन्त आचार्याः। भगवतः प्राप्त्यर्थं भक्तेराश्रयणङ्क्रियते, तत्र सामान्यमतिविशिष्टः पण्डितो वा स्वीयमतिमास्थातुं शक्नोति। किन्तु ज्ञानमार्गव्रतिभिः केवलमनेनैव ज्ञानपथेन तच्चरणरेणुष्ववगाहनङ्कर्तुं पार्यते। अत्र मुख्यतो दर्शनशास्त्राणां प्रभाव: प्रचुरतया दृग्गोचरीभवति। प्रायस्सर्वाण्यपि शास्त्राणि, तदीश्वरसामुख्यकर्मणि जीवस्य साधारणविषयमुपस्थाप्य स्वीयां महतीं भूमिकामावहन्तीति विपश्चिताञ्चेतांसि पुनः पुनर्निगदन्ति। यथा मम्मटोक्तिः 'सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।'

एवमेव श्रृङ्गाररसपरिपाककर्मकुशलैश्श्रीमद्भि: कालिदासैरुच्यते यत् – **'ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः'**[1] अर्थात् समेषामिदमेव तात्पर्यं यन्मोक्षलब्धिरेव बुद्धिविशिष्टस्य मनुजस्योद्देश्यं भवति। व्याकरणशास्त्रेऽपि दर्शनग्रन्थस्योत्पादयितारो बहवो बहुधा समभूवन्। एतस्यामेव परम्परायां श्रीमान् भर्तृहरिः चन्द्रद्युतिरिव प्रकाशमान् वाक्यपदीयन्नामकं ग्रन्थरत्नमानीय सर्वेषां व्याकरणशास्त्रे दत्तचित्तानां दोषादोषविवेकध्याननिमग्नानामाचार्याणां मनांस्याकृष्टवान्। ग्रन्थेऽत्र त्रिकाण्डानि विविधविषयगुणविशिष्टानि वर्तन्ते। तत्र प्राथम्येन ब्रह्मकाण्डविषयिणी चर्चा समर्चितास्ति। मुख्यत्वेन दर्शनविषया अत्र सुगुम्फिता वर्तन्ते। तत्रैवं प्रकारेण विचाराः प्रस्तूयन्ते –

शब्दब्रह्मणो विचारमार्गे प्राक्तनशास्त्राणां कथङ्कारं भावास्सन्तीति प्रथमतया तन्निदर्शनम् - यथा द्वे ब्रह्मणी सर्वैस्सश्रद्धं ज्ञातव्ये। एकं शब्दब्रह्म परञ्च परब्रह्म। शब्दब्रह्मैव विज्ञाय धीमान् जनः परब्रह्म लभते।

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।।[2]

महाभारतेऽप्येतादृशमेव पद्यं प्राप्यते –

वेदाः प्रमाणं लोकानां न वेदाः पृष्ठतः कृताः।
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।
शरीरमेतत् कुरुते यद्वेद कुरुते तनुम्।।[3]

अत्र शब्दब्रह्मणोऽर्थो वेदस्य कर्मोपासनाकाण्डत्वेन कृतोऽस्ति। उपचारतो वेदा अपि शब्दब्रह्मत्वेनाभिधीयन्ते। इदं ब्रह्म भोक्तृभोग्यभोगात्मकतया विशालतायास्सृष्टेरस्या महद्बीजमस्ति।

---

[1] अभिज्ञानशाकुन्तलम् – 7/35

[2] मैत्रायणी उपनिषद् – प्रपाठकः – 6, कण्डिका - 22

[3] महाभारतम् – शान्तिपर्व – अध्यायः - 270

महाप्रलयकाले ब्रह्माण्डीयन्निखिलञ्जगच्छब्दब्रह्मण्येव सूक्ष्मरूपतया नैजिकीं स्थितिमातनुते। पूर्व-पूर्वशास्त्रेषु प्रोक्तमिदमेव ब्रह्माङ्गीकृत्य श्रीमता भर्तृहरिणा ब्रह्मकाण्डं वाक्यपदीयस्यादावेवोपन्यस्तम्। यस्माज्जगदिदमुत्पत्तिविनाशाभ्यां रहितञ्शब्दतत्त्वात्मकं ब्रह्म यदक्षरेणाहोस्विदोङ्कारनाम्ना विज्ञायते। यस्योङ्काराख्यया भगवता श्रीकृष्णेन श्रीमद्भगवद्गीतायां विवृतिर्वितन्यस्ता –

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।[1]

एकस्मिन्नेवाक्षरे दत्तचित्ता मानवास्तद्विष्णोः परमं पदं विविधेषु कर्मसु रता लभन्ते। अमुमेव विषयं प्रतिपादयन् भर्तृहरिः प्रावोचत् यत् सर्वेषां प्राणिवर्गाणां श्वासादयो गतिविधयस्तत्रैव शब्दब्रह्मण्येवानुभूयन्ते। वैयाकरणाश्शब्दनिर्माणपटवस्तेषां मनांसि तत्रैव रमन्त इति विचारयद्भिस्तत्र हरिभिः श्लोकोऽयमुपात्तः। मनोवैज्ञानिकरीत्या येषाञ्चेतनमतां बुद्धयो येषु मार्गेषु लिप्ता भवन्ति तत्रैव ते विलासश्वासीभूता जायन्ते। वैयाकरणास्तथैव व्यवहारशीलाः। अत एव शब्दब्रह्मणि निष्णातास्सन्तो ब्रह्मपदं विन्दन्ति। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' इति शङ्कराचार्योक्तिबलात् प्रतीयते यत्तत् परमेश्वरातिरिक्ततया न किञ्चिदवभाषते। अस्यैव तत्त्वस्य प्रतिपादनङ्कुर्वन् ग्रन्थकार एवं ब्रूते -

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।[2]

अत्र श्लोके न केवलं मङ्गलाचरणमाचरितमपितु वेदान्तविषयास्समूहितास्सन्ति अपितु आद्यन्तभावशून्यविशिष्टमर्थात् कालकृतसीम्नो बहिर्भूतमथवा पूर्वापरविभागाद्धीनमर्थाद् देशकृतपरिच्छेदान्मुक्तम्। अकारादिवर्णनिमित्तत्वादक्षरम्। अर्थात् प्रणवात्मकञ्शब्दतत्त्वं गोघटादिबाह्यार्थरूपेऽनेकधा तच्छक्तिप्राबल्यात् सम्पूर्णं संसारं निजामितप्रभया प्रतिभासयति। यस्मात्समस्तं वाङ्मयञ्जगत् तथा सरित्सागरपर्वतवनात्मकञ्चराचरात्मकं भुवनमण्डलं प्रसूतिपदमवगाहते। वेदान्तसारे 'वस्तु सच्चिदानन्दाद्वयं ब्रह्म तथाज्ञानादिसकलजडसमूहोऽवस्तु' सूक्ष्मतया विवेचनेनाद्यतनीया वैज्ञानिका अपि ऊर्ध्वबाहवो भणन्ति यद् वयमीषदेव विजानीमः, स विराडीश्वरस्तु, सर्वज्ञोऽस्तीति नास्ति सशंयलेशः। विवर्तवादस्य विवरणमपि ग्रन्थेऽस्मिन् प्राप्यते।

माण्डुक्योपनिषदो वचनमस्ति – **'ओमित्येदक्षरमिदं सर्वम् ओमिति ब्रह्म'** इति। छान्दोग्योपनिषद आरम्भ एवोद्गीथात्मकोमित्यक्षरस्यैवोपासनास्माभिर्विधेया। उपनिषदामुक्तयोऽत्र ग्रन्थकृद्भिर्विवेचिताः। यच्छब्दब्रह्मपरस्परं भिन्नत्वे सति विविधशक्तीनामाश्रयत्वादेकस्मिन्नेव वेदे

[1] श्रीमद्भगवद्गीता – 8/13
[2] वाक्यपदीयम् – ब्रह्मकाण्डम् - 1

पठितमस्ति, परञ्च यत् स्वीयशक्तिभ्योऽभिन्नत्वे सत्यपि पृथगिव वर्तते। यथा वाक्यपदीयग्रन्थस्य वृत्ताविति टीकायां - तद्यथा सलिल एवैको द्रष्टाऽद्वैत एक एवाभवत्। तथा - सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयमिति। पुनश्चाह प्रणव एवैकास्त्रिधा व्यभज्यत इति। तथा - असद्वा इदमग्र आसीत्। किं तदसदासीत् ऋषयो वाव तेऽग्रे तदसदासीत्। य ऋषयः प्राणा इति। भगवान् वृत्तिकारो बृहदारण्यकाम्नायमुद्धृत्य तस्याखण्डतत्त्वस्य महिमानमचकथत्। एकमेव कथमाम्नातमिति विषये पद्यमिदमेवमभाणि –

एकमेव यदाम्नातं भिन्नशक्तिव्यपाश्रयात्।
अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः पृथक्त्वेनेव वर्तते॥[1]

एकमेव ब्रह्म सर्वशक्तीति प्रमाणेन सिद्धेऽस्मिन्नर्थेऽविद्यापरिकल्पितस्य भावभेदस्यापारमार्थिकत्वात् कार्यनानात्वोन्नीयमानशक्तिभेद एवैकस्य युक्तो न तु स्वरूपभेदः। सृष्टौ षड्भावविकारा भवन्ति। एतैरेव सर्वेषां प्राणिवर्गाणाञ्जीवनसरणिर्गतिमती सती जीवनास्तित्वं प्रबोधयति। एतेषां विकाराणां विवृत्तिरन्येष्वपि ग्रन्थेष्ववलोक्यते। कालशक्तिमाश्रित्य विकारादीनां सृष्टिर्यथा –

अध्याहितकलां यस्य कालशक्तिमुपाश्रिताः।
जन्मादयो विकाराः षड् भावभेदस्य योनयः॥[2]

यस्य शब्दब्रह्मण आरोपितकलात्मिका भेदात्मिका वा शक्तीराश्रित्य जन्म-स्थिति-विपरिणामवृद्ध्यपक्षयनाशा इमे षड् भावविकारा अनुसन्धानतो विशदीकृताः। ब्रह्मणः कालशक्तिरेव स्वातन्त्र्त्या उत वा कर्तृशक्तिरस्ति, या पदार्थानामुत्पत्तौ लये च कारणभूतास्ति। कालनाम्न्यास्स्वातन्त्र्यशक्त्यास्समस्ताः पारतन्त्र्यमुपगता जन्मवन्तः पदार्था व्याप्ता भवन्ति। यद्यप्यत्र बहवो विकारास्संश्रूयन्ते, तथाप्येतेषामत्रैव षड्भावविकारेष्वन्तर्भावो भवति। चेतनमचेतनं वा समेषाङ्गतिविधयो बहुलतया एतेष्वेव भावविकारेषु प्रकाशितवत्यो वर्तन्त इति विदुषां विचाराः। पद्धतिरियन्न केवलं शास्त्रावलोकनविलोडनविधावेव सार्थकतामालिङ्गति, अपितु वाच्यविक्लवधियां मानुषाणामपि जीवनावधावेतदवलोक्यत एव। निरुक्त उच्यते षड्भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः। समस्तकारणकार्यात्मकशक्तिभ्यः सम्पन्नमभिन्नमेकं शब्दब्रह्मास्ति। यस्य शब्दब्रह्मणः परमात्मनो गतयः प्रत्येकं क्रियासङ्क्रान्तत्वेन विभ्राजमाणास्सन्ति। इदमेव सर्वेषां बीजमस्ति।

एकस्य सर्वबीजस्य यस्य चेयमनेकधा।
भोक्तृभोक्तव्यरूपेण भोगरूपेण च स्थितिः॥[3]

---

[1] वाक्यपदीयम् – ब्रह्मकाण्डम् - 2

[2] हेलाराजः (जातिसमुद्देशः)

[3] वाक्यपदीयम् – ब्रह्मकाण्डम् - 3

व्याख्याङ्कुर्वता वृत्तिकारेणैवं भण्यते यच्छब्दब्रह्मानिर्वचनीयाभ्योऽविरोधिनीभ्यः शक्तिभ्यश्च सुसम्पन्नमस्ति। शक्तयस्तत्त्वात्मिका वा ब्रह्मरूपिण्यस्सन्ति। शब्दब्रह्मणः प्राप्त्युपायोऽनेन शास्त्रेण प्रोक्तोऽस्ति। 'यस्य निःश्वसितं वेदाः' इति श्रुतिप्रामाण्यादेतज्ज्ञायते चतुष्पादवेदा एव सन्ति। परन्त्वेतेषु नैके पण्डिता अनेकैर्मार्गैः सत्येकस्य वेदस्यापि ऋग्वेद-यजुस्सामाथर्वभेदैर्बहुधा विभागो विहितस्तद्विदैः –

प्राप्त्युपायोऽनुकारश्च तस्य वेदो महर्षिभिः।
एकोऽप्यनेकवर्त्मेव समाम्नातः पृथक् पृथक्॥[1]

भगवतो वेदस्य सामादिचत्वारो ये भेदा प्राप्ता इदानीन्तेषामनेकाश्शाखाः क्षेत्रप्रान्तविभेदात् समभूवन्। किन्त्वेतेषां प्रतिपाद्यो विषय एक एवासीत् किञ्च शाखाभेदस्य कारणत्वादेव शब्दानां रूपाणि स्वरभेदाश्चावलोक्यन्ते। उदाहरणत्वेन काठक-कालापक-पैप्पलादयः। एतेषामुपयोगस्सर्वविधसौलभ्य-सम्पादनाय बहुभिराचर्यते। वेदान्नेवाश्रित्य बह्व्यस्स्मृतयास्सरलबुद्धिसम्पन्नेभ्यो ज्ञानविधायकैर्महर्षिभिः प्रकल्पिताः। किङ्कर्तव्यं किमकर्तव्यमेतद् विवेचनं स्मृतिषु प्रथितमस्ति। वेदेभ्य एव विभिन्नानां दर्शनानां प्रादुर्भावो जातः। अस्या वाचो निरूपणमस्याङ्कारिकायां प्रस्तुतमस्ति।

तस्यार्थवादरूपाणि निश्रिताः स्वविकल्पजाः।
एकत्विनां द्वैतिनां च प्रवादा बहुधा मताः॥[2]

तस्य वेदस्यार्थवादरूपवाक्यानामाश्रयङ्गृहीत्वैकत्ववादिनो द्वैतवादिनश्च स्वीय-स्वीय कल्पनाभिः विनिर्मितवन्तोऽनेकधा प्रवादाः। अत एव दर्शनविषये चिन्तनमननप्रक्रियाणां विकासयात्रा विस्तारततिमवाप्नोत्। अर्थवादमूलकदर्शनानां मध्ये किं वास्तविकं दर्शनमिति विचिकित्सायां पद्यमिदं पुर आयाति –

सत्या विशुद्धिस्तत्रोक्ता विद्यैवैकपदागमा।
युक्ता प्रणवरूपेण सर्ववादाविरोधिना॥[3]

तस्मिन् वेदे समस्तानां वादप्रवादानां दर्शनानां मध्ये सेतुत्वेन प्रणवात्मकरूपमेव मुख्यां भूमिकां निर्वहति। अस्य ज्ञानात्वादेव दर्शनेषु वैमत्यं दूरं भवति। सर्व एकतत्त्वस्य प्राप्त्यर्थं कटिबद्धास्सन्त आनन्दार्णवे निमग्ना भवन्ति। अस्मात् कारणादेकपदागमा विद्यैव सत्यशोधनत्वेनोक्ता वर्तते। त्रयाणां लोकानामुत्पत्तेरेवं व्यवस्थायाः कर्ता अङ्गोपाङ्गनिबन्धनत्वात् ज्ञानसंस्कारयोः कारणभूता अनेका विद्या विकसिता जाताः। समस्तलोकानां मूलकारणं

[1] वाक्यपदीयम् – ब्रह्मकाण्डम् - 5
[2] वाक्यपदीयम् – ब्रह्मकाण्डम् - 8
[3] वाक्यपदीयम् – ब्रह्मकाण्डम् - 9

वेदास्तथार्गादिरूपत्वेन परिणता इमे सदुपदेशव्यशनशीलाः। अतो घटपटादिजागतिक-विवर्तकार्याणां कारणत्वादेवं वर्णाश्रमव्यवस्थाया उपदेशकत्वाच्च वेदो विधाता जोघूष्यते चिन्तकैः।

वेदविषये द्वे मते स्तः। केचन वदन्ति यत् प्रणव एव वेदो यथा प्रमाणम् –**'ॐ खं ब्रह्म। खं पुराणं वायुरं खमिति ह स्माह कौरव्यायणी पुत्रो वेदोऽयं ब्राह्मणा विदुः वेदैनेन यद्वेदितव्यम्। वेदोऽयमोङ्कारः'**[1] इति शङ्कराचार्यः। अयं वेदः समस्तशब्दजगतोऽर्थजगतश्च मूलकारणम्। प्रणव एव वेद इति स्वीकारोक्त्यामशेषा विद्याः प्रणवात्मकवेदतत्त्वस्यातिक्रमणन्नाचरन्ति। यथोक्तम् - समस्ता विद्याजातयो वेदान्तर्गतास्तन्ति। यः प्रणवात्मकं वेदन्न जानीतेऽसौ शब्दार्थजगतः कमप्यशं ब्रह्मत्वेनाङ्गीकर्तुं नो पारयति जनः। विधित्वेन येषां व्यवहारो भवति ते ब्राह्मणग्रन्था द्वितीयमतानुसारं ज्ञायन्ते। यथा - **विधिर्विधेयस्तर्कश्च वेदः षडङ्गात्मकः।**[2] षडङ्गानि वेदस्य यानि प्रोक्तानि तत्र मुख्यं किमिति प्रस्तूयते –

आसनं ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः।
प्रथमं छन्दसामङ्गं प्राहुर्व्याकरणं बुधाः।।[3]

विद्वांसः तद्वेदाख्यब्रह्मणस्साक्षादुपकारकं तपसामुत्तमत्वेन व्याकरणमेवाङ्गीक्रियन्ते। तस्य शब्दब्रह्मणो हि यतः स्वरूपसंस्कारः साधुत्वप्रतिपत्यर्थस्तदासन्नं साक्षादुपकारि। अत्र व्याकरणशास्त्रस्य प्रशंसोक्तास्ति।

इदमाद्यं पदस्थानं सिद्धिसोपानपर्वणाम्।
इयं सा मोक्षमाणानामजिह्मा राजपद्धतिः।।[4]

मोक्षस्य सोपानपर्वणि व्याकरणशास्त्रं प्रथमं पदस्थानमस्ति। अत्राष्टानां पदार्थानां विवेचनङ्कृतमस्ति। स्फोटत्त्वन्नाम किमिति सूक्ष्मतया विवेचनमस्ति। साधुत्वसम्पादनार्थं स्मृतिरियं हृत्तोऽङ्गीक्रियते –

साधुत्वज्ञानविषया सैषा व्याकरणस्मृतिः।[5]

अपभ्रंशशब्दानां विनिवारणार्थं ग्रन्थोऽयं सर्वदा सुस्पष्टङ्करोति। तिसृणां भाषाणामेवात्राङ्गीकारः। अन्यत्र तु चतस्रः प्रोक्तास्सन्ति।

वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्।
अनेकतीर्थभेदास्त्रय्या वाचः परं पदम्।।[6]

---

[1] बृहदारण्यकम् – 5/1
[2] पारस्करगृह्यसूत्रम् – 2/6, 5/6
[3] वाक्यपदीयम् – ब्रह्मकाण्डम् - 11
[4] वाक्यपदीयम् – ब्रह्मकाण्डम् - 16
[5] वाक्यपदीयम् – ब्रह्मकाण्डम् - 132
[6] वाक्यपदीयम् – ब्रह्मकाण्डम् - 133

जीवनोपयोगिनो विषया अत्रोहितास्सन्ति।

उपसंहारः -

वाक्यपदीयनामकेऽनके विषया ग्रन्थे निरूपिताः। दर्शनग्रन्थत्वेनास्य प्रसिद्धास्सर्वेऽप्यंशा विहिताः लोकोपकारायात्र। ईश्वरः कथङ्कारमात्मसात् करणीय इति तत्त्वं विवेचितमत्र। सर्वप्रथमं व्याकरणशास्त्रेषु दर्शनपरम्पराया प्रस्फोटनं, विवेचनं, तद्धारणाशक्तयश्चाङ्गीकृताः। सर्वेषां प्रायशो ये दर्शनग्रन्था वेदान्तसार-पञ्चदशी-आदयः ऐहिकं प्रपञ्चं दूरीकुर्वन्तः परब्रह्मणा सह तादात्म्यं संस्थाप्य विद्यातन्तेतराम्। तद्वदेव तत्सर्वमेकालावच्छेदेनात्र वाक्यपदीये श्रीमद्भिः भर्तृहरिभिः सुप्रथितमस्ति। आशब्दसाधुत्वप्रतिपादनाद् ब्रह्मणोऽवाप्ति पर्यन्तमत्र नितरां सरलतयोदीरितं वर्तते। किं बहुना, समेऽपि बिन्दवो जीवनोपयोगिनो विभान्तीह नात्र संशीतिरिति शम्।।

❐

श्री अरविन्दः

साम्प्रतिकसमाजे तदीयदर्शनस्य दार्शनिकविचारस्य प्रासङ्गिकता च

नवकुमारपण्डा*

श्री अरविन्दः -

महान् योगी राष्ट्रभक्तो दार्शनिकः श्री अरविन्दः पश्चिमवङ्गप्रदेशस्य कोन् नगरनामके स्थाने 1872 ख्रीष्टाब्दे अगष्टमासस्य पञ्चदशदिनाङ्के आविर्भूतोऽभवत्। पित्रोः डॉ. कृष्णधनघोषः श्रीमती स्वर्ण्णलतादेव्यास्तृतीयपुत्ररूपेण लब्धजन्मा अरविन्दो मातृस्नेहाद् वञ्चितः सन् एकस्याः आङ्ग्लोधात्र्याः यत्नेन शैशवमतिवाहितवान्। दार्जिलिङ्गस्थिते लोरेटोकनभेण्टविद्यालये प्राम्भिकशिक्षामवाप्य अष्टवर्षवयः क्रमे इल्ङ्ददेशं गत्वा माञ्चेष्टरनिवासिनः त्रिवेट नामकस्य योग्यशिक्षकस्य तत्त्वावधाधेन स्थित्वा लाटिन्-आङ्ग्लोभाषयर्दक्षः सन् 1885 तमे ख्रीष्टाब्दे लण्डनस्थिते सेण्टपलविद्यालये विद्याध्ययनं कृतवान्। तत्र ग्रीक् फ्रेञ्चभाषयोरपि सुदक्षः संजातः। 1893 तमे ख्रीष्टाब्दे भारतभूमिं प्रत्यागत्यवरोदाराज्यसेवायां राजस्वादिविभागे योगदानं कृत्वा परवर्त्तिनिकाले शिक्षाविभागे अध्यापकाध्यक्ष्यादिरूपेण नियुक्तमवाप्तवान्। भारतीयज्ञानराज्ये प्रवेशार्थं सः स्वयं संस्कृत-हिन्दी-गुजुराती-मराठी-वाङ्गप्रमुखाः भाषाः ज्ञातवान्। स्वकीयकर्मक्षेत्रे सन्तुष्टिमनसादी राष्ट्रजनन्याः सेवार्थं राजनीतौ योगदानं कृतवान्। 1901 तमे ख्रीष्टाब्दे 29 वर्षवयः क्रमे राञ्चिनिवासिनः श्रीभूपालचन्दरवसुमहोदयस्य सुन्दरीं विदुषीं च कन्यां मृणालिनी धर्मपत्नीरूपेण अङ्गीकृतवान्। 1908 तमे ख्रीष्टाब्दे नियतिः किञ्चिद् भिन्नं कार्यं कर्त्तुं प्रेरयति इत्यन्तर्भावना एकं सक्रियं राजनीतिज्ञं परवर्त्तिकाले योगित्वेन परिवर्त्तितं कृतवती। आध्यात्मिकचेतनया वशीभूतः सन् 1910तमे ख्रीष्टाब्दे एप्रिलमासे पण्डिचेरीनामके पवनक्षेत्रे स्वकीयं निवासं निर्मितवान्।

पण्डिचेरीस्थिते निवासपरिसरे स्वकीयाध्यात्मिकविचारस्य योगस्य च सार्थकरूपप्रदानार्थमेकामाश्रमं स्थापितवान्। कालक्रमेण 'मीरा रिचार्ड' नाम्नी एका विशिष्टा विदेशिनी शिष्या आश्रमस्य पूर्ण्णदायित्वमङ्गीकृत्य अन्तेवासिनां कृते माता (श्रीमा The Mothers) अभवत्। 1950 ख्रीष्टाब्दे डिसेम्वरमासस्य पञ्चमदिनाङ्के अरविन्दः अपवर्गमार्गस्य यात्री अभवत्। परन्तु तस्य दार्शनिकविचारः आश्रमस्य पावनप्रभावश्च अद्यापि असंख्यकान् सज्जनान् वशीभूतान् करोति, आध्यात्मिकानुशासनेन निवध्नाति च। 'Savitri' (सावित्री) महाकाव्यं 'The life Divine' 'दिव्यजीवनम्' चेत्यादय आङ्ग्लोभाषानिवद्धा ग्रन्थास्चतदीयं वैदुष्यं

* शोधछात्रः, सर्वदर्शनविभागः, जगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य, श्रीविहारः, पुरी

विज्ञापयन्ति नितराम् ।

साम्प्रतिकसमाजे तस्य दार्शनिकविचारः -

श्री अरविन्दः स्वल्पेवयसि पाश्चात्यदर्शनसाहित्ययोरध्ययनं कृतवान्। प्लेटो आरिस्टोटलप्रमुखानां ग्रीक्-दार्शनिकानां तत्त्वविचारैः सह स परिचितासीत् । हेरोल-ह्वाइटहेड-वर्गसां प्रमुखानामाधुनिकपाश्चात्यदार्शनिकानां तत्त्वमीमांसीयचिन्ताधारया सह तस्य परिचितिरप्यासीत्। परवर्त्तिनिकाले भारतीयदर्शनानि विशेषतः अद्वैतवेदान्तदर्शनं योगदर्शनञ्चाधीत्य प्रभावितोऽभवत्। अरविन्दस्य भवनावलीविश्लेषणेन ज्ञायते यत् स वैयक्तिकचिन्तनेन एतेषां विचाराणां सज्जीकरणं विधाय सर्वथा व्यापिकां तथा नवीनां सद् दृष्टिं प्रतिष्ठापयितुं प्रयत्नवान् आसीत् ।

श्री अरविन्दस्य दर्शन व्यापकार्थेन अध्यात्मवादस्य (Idealism) एकमुदाहरणमिति वक्तुं शक्यते । स सतः स्वरूपमाध्यात्मिकं मत्वा एकस्य चरमादर्शस्य कल्पनामपि कृतवान् । 'to become or to appear as an indivisual passing from birth to death and from death to new life M A cycle of Persistent and recuent human and animal existence.'[1] अर्थात् ईश्वरत्वस्य उपलब्धेः रीतिः जन्मपुर्जन्ममार्गेण सम्भूता क्रमिकोपलव्धिरेव । सम्भवतः ईश्वरीयलीलया एतत्तु उपकरणमात्रम्। परन्तु वैयक्तिकप्रकिया विकासस्य सार्वभौमप्रकियायां कथं सहायिका इति चेदुच्यते । विकासस्तु स्तरद्वयोपरि अग्रेसरति वैयक्तिकस्तरे सम्पूर्णेब्रह्माण्डस्तरैव उभयोः स्तरयोनिवार्यसम्वन्धो विद्यते । व्यक्तेः चरमस्थितिर्यथा मानसिकी ब्रह्माण्डविषयको बोधस्तरोऽपि तथा मानसाधृतः । अस्मिन् जन्मनि मानवो 'मानस' तरमवाप्तुं तत्परो भवति । परन्तु अस्मिन्नेव जन्मनि उपस्तराणामतिक्रमणं सम्भवतोनैव भवति । अतः पुनर्जन्मः स्वीकरणमवश्यम्भावि । अरविन्दो निगदति - यन्मानवविकासक्रमस्य एकमनिवार्यमुपादानं भवति पुनर्जन्म । यतो हि विकास एका क्रमिकप्रक्रिया यत्र एकं जन्मनैव पर्याप्तम् । यस्या व्यक्तेः जीवनं प्रति अत्यधिकासक्तिस्तिष्ठति सम्भवतः सा यथाशीघ्रं कस्मिंश्चित् नूतनशरीरे प्रविशति । पुनश्च पुनर्जन्म केवलं नूतन कलेवरधारणं कृत्वा नैव भवति, नूतनं व्यक्तित्वं विधृत्याऽपि भवति, यत्तु भिन्नमभौतिकमशारीरिकस्तरं प्रददाति अर्थात् शरीरधारणं विनाऽपि जीवनसत्ता प्रचलितुं शक्नोति। अस्या अभौतिक सम्भावनाया उपरि श्री अरविन्दस्य गम्भीरविमर्शः दिव्यजीवनादिग्रन्थेषु परिदृश्यते । तन्मत् यथा जन्म आवश्यकं तथा पुनर्जन्माऽपि । यतोहि पुनर्जन्मं विना जन्म एतादृशप्राथमिक सोपानरूपेण पर्यवसितं भविष्यति । यस्य परवर्त्तिसोपानरूपेण किञ्चिदपि न स्थास्यति। अनेनागमिष्यति समस्येयं यदेकस्य यात्रामार्गस्यारम्भो वर्त्तते परन्तु परवर्त्तिपादपातनिमित्तं किमपि सोपानं नास्ति यद्वारा लक्ष्यस्थलप्राप्तिः कदाचिदपि नैव सम्भविष्यति । अतः पुनर्जन्मैव शरीरस्थाया असम्पूर्णसभायाःपरिपूर्णताप्राप्तये निर्भरां प्रतिशृतिं

प्रददाति। तत्र -

"जातस्य हि ध्रुवोमृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च इत्यादिगीतावचनम्",[2]

अपि च कर्मानुगान्यनुक्रमेणदेही स्थानेषु रूपाण्यभिसम्प्रपद्यते। स्थूलानि सूक्ष्माणि वहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैदृणोति।[3] इत्याद्युपनिषदवचनम् पुनर्जन्मवादस्य परिपोषकाणि भवन्ति। परन्तु तस्य अध्यात्मवाद आदर्शवादो वा अमूर्त्त एकवादः (Abstract Monism), एकेश्वरवादः (Theism) इत्याभ्यां सार्द्धं नैव समानम्। श्रीहरिदासचौधरीमते The Philosophy of Sri Aurobinda malyaptly be described as integral Nondualism (पूर्णाद्वैतम्) or Internal Idealism (पूर्णविज्ञानम्) or just Integralism (पूर्णवाद)[4] Integral शब्दस्य तात्पर्यं भवति। यत्र सर्वा विभिन्नतां परित्यज्य एकरूपतामासादयन्ति इति अनया दृष्ट्या अरविन्दस्य अद्वैतविचारो बौद्धिकैकवादाद् भिन्नः। अरविन्दमते Internal (पूर्णवादः) इत्यस्य तात्पर्यं भवति यद् यस्मिन् विचारे सतः चित्रणमेवं भवेत् यत्र द्रव्य-आत्म-निम्नतररूप-उच्चतरूजीनां भेदः पूर्णतया समन्वितो भवति। अतस्तन्मते 'सत्' भवति पूर्णं पूर्णाद्वैतं वा पूर्णद्वैतस्य निहितार्थआवगतये अरविन्दस्य निषेधद्वयमवश् वोद्धव्यम्। तयोरेको भवति जडवादिनिषेधः (Materialistic Denial), अपरो भवति वैराग्यमूलकास्वीकृतिः (The refusal of the asectic)। तन्मते यै वैचारिकसिद्धान्तैः जगद् व्याख्यानस्य प्रयत्नो भवति। तत्र प्रमुखतां भजते जडवाद(Materialism) अद्यात्मवादः (Sprituas) चेति अर्थात् केवलमात्मनि गुरुत्वप्रदानं नैव यथेष्टम्, जडत्व द्रव्यत्वादीनां महत्त्वप्यवश्यमवन्तव्यम्।[5]

पादटीका -

1. Ibid, P- 672
2. श्रीमद्भगवद्गीता - 2/27
3. श्वेताश्वेतोपनिषद् - 5/11-12
4. Sri Aurobinda, the life Divine, P - 8
5. Haridas Choudhary, Ed, The Integral Philosophy Sri Aurobindo, P - 19

अधिशाकुन्तलं सौन्दर्यम्

श्वेता*

शोधसारांशः-

साहित्यस्य द्वे विधे स्तः - दृश्य-श्रव्यृ=काव्यम्। श्रव्यस्यापि त्रयः प्रकाराः सन्ति। दृश्यकाव्यत्वेन सह नाटकं श्रव्यमित्यपि कथ्यते, यतः तत् मञ्चे प्रस्तुतं भवति। नाटकं मनोरञ्जनस्य प्राचीनतमं रूपमस्ति। संवादसूत्राण्यपि ऋग्वेदे प्रचलन्ति स्म। ऋग्वेदे २० संवादसूक्ताः प्राप्यन्ते, येषु चत्वारि सम्वादसूक्तानि विश्वामित्रनदीसंवादसूक्तं, सरमापणिसंवादसूक्तं तथा पुरूरवा-उर्वशी संवादसूक्तं, यम-यमी संवादसूक्तं च सन्ति। एषापि नाट्यविधासीत्। तदनन्तरं ब्राह्मणग्रन्थेषु, आरण्यकेषु, उपनिषदेषु चानेकान्याख्यानानि च प्राप्यन्ते स्म। तत्रापि ते नाटकरूपेण प्रचलिताः आसन् - यथा शुनःशेपकथा ऐतरेयब्राह्मणः सप्तमपञ्जिकायां ३३ अध्याये प्रचलितास्ति। शतपथब्राह्मणः वाङ्गमनसाख्यानं, छन्दोपनिषदि इत्यत्रापि अनेकानि कथात्मकाः आख्यानानि प्राप्यन्ते, तान्येव आख्यानानि च पश्चात् नाटकरूपेण, दशरूपकरूपेण, १८ उपरूपकरूपेण च प्रसिद्धाः अभवन्। यथा - कालिदासः विश्वप्रसिद्धः कविः, कविकुलगुरुः ऋग्वेदस्य पुरूरवा-उर्वशी संवादसूक्तस्याधारेण विक्रमोर्वशीयमेति पञ्च-अङ्क-नाटकं रचितवान् । रामायण-महाभारत-पुराणेषु चाख्यान-कथाः प्रचलिताः सन्ति । महाभारतस्यादिपर्वस्य ६८-७२ अध्यायेषु ३०० श्लोकेषु शकुन्तलोपाख्यानात् सामग्रीं गृहीत्वा विश्वस्याधिकांशभाषास्वनुवादितं विश्वप्रसिद्धं, सप्तमङ्कीनाटकमभिज्ञानशकुन्तलमेति रचितवान्। शाकुन्तलनाटककथा पद्मपुराणेऽपि प्राप्यते। कालिदासः शाकुन्तलस्य कथायाः मूलस्रोतसामग्रीयां बहुधा परिवर्तनं कृतवान् यत् सा यथासम्भवं नाटकीयं ध्वनिमयं च भवतु – "**अभिज्ञायते अनेन इति अभिज्ञानम्। अभि+ज्ञा+ल्युट्(अन)"। अभिज्ञानेन स्मृता इति अभिज्ञानस्मृता, अभिज्ञानस्मृता शाकुन्तला अभिज्ञानशाकुन्तला –** इति व्युपत्तिरस्ति। शकुन्तला मुग्धनायिका अस्ति। प्रस्तुते पत्रे उत्तमनायिकायाः मुग्धाशकुन्तलायाः सौन्दर्यस्य वर्णनं कृतमस्ति तथा च सा एकाद्वितीयासुन्दरी, गुरुजनानामादरपूर्वकं भक्तिः, आदर्श सखी, आदर्शपुत्री, आदर्शप्रिया, आदर्शमाता, आदर्शभारतीयनारी, काव्यरचनायां कुशला, लज्जाशीला, सरलतायाः प्रतिमूर्तिः, संयमी, कोमलहृदया स्वाभिमानी, प्रकृतिकन्या, शान्ता बालिका इति वर्णितास्ति तथा च सरल स्वभावयुक्ता, स्वाभिमानी नायिका इति दर्शितास्ति।

मुख्यतया द्वे प्रकारे काव्यस्य सामान्यतया विचार्यन्ते, दृश्यकाव्यं श्रव्यकाव्यं च। नेत्रेण प्रतीयमानं काव्यं दृश्यकाव्यमिति कथ्यते, श्रवणेन्द्रियाभ्यां प्रतीयमानं काव्यं श्रव्यकाव्यमिति

* गवेषिका, साहित्यविभागः, महर्षिवाल्मीकिसंस्कृतविश्वविद्यालयः, मून्दडी (कैथल) हरियाणा।

कथ्यते। मञ्चेऽभिनयितं दृश्यं वयं पश्यामः। सामान्यतः दशरूपकारः इत्यनेन "**रूपं दृश्तयोच्यते, रूपकं तत्समारोपात्**"[1] इति वदन् नाटकं रूपं रूपकं च समानं वर्णितमस्ति तथा च विश्वनाथः अपि तस्य व्युत्पत्तिं "**तद्रूपारोपात्तु रूपकम्**"[2] दत्तवानर्थादस्मिन् मूलपात्रस्योपरि चन्द्रादिवत् दुष्यन्तशकुन्तलेत्यादिनाभियोगः अथवा परिचयः भवति। आरोपः अस्ति। दृश्यमेव अभिनयः इत्यपि कथ्यते – "**दृश्यं तत्राभिनेयम्**"[3]। अभि नयति इति अभिनयः। अभिनयः चतुर्विधः अस्ति। अथोक्तमभिनयः अनुकरणं वा चतुर्विधं भवति- आङ्गिकः, सात्विकः, वाचिकः, आहार्यश्च। आङ्गिके मूलपात्राणां (मुख-नेत्र-नासिका, पाद-कटि-आदि) शरीराङ्गैः सह समानरूपेण क्रियमाणानां कर्मणां सटीकमनुकरणं भवति, वाचिक्-भाषायां वाक्-गीत-आदि-अभिनयमागच्छति, आहार्य-भाषायां वेषभूषाः .सात्विके च सात्विकव्यञ्जनानां विषये सूचनाः सन्ति - स्तम्भः, स्वेदता, उत्साहः, स्वरभङ्गः, कम्पः, मुखस्य विवर्णता, अश्रुपातः तथा शारीरिकगतिः सुखे वा दुःखे वा ज्ञानमित्यस्य गणनागच्छति। कस्यचित् कलाकारस्य अभिनयकौशलस्य न्यायः केवलमुपर्युक्तानां सात्विकभावनानां सफलाभिनयेनैव भवति।

रचनाशैल्याः दृष्ट्या श्रव्यकाव्यस्य त्रयः प्रकाराः गण्यन्ते - काव्यं, गद्यं च गद्यकाव्यमर्थात् चम्पू। पद्यं चरित-मात्र-गति-यति-आदि-नियमैः बाध्यं भवति, छन्दयुक्तं च भवति, यदा तु गद्ये तादृशः प्रतिबन्धः नास्ति। सः स्वतन्त्रः अस्ति। गद्यं द्विविधं कथ्यते - आख्यायिका कथा च। पद्यः त्रिधा प्रचलति – महाकाव्यं, खण्डकाव्यं, मुक्तकं च। ऋग्वेदेऽपि काव्यपरम्परा प्रचलितासीत् स्वीकृतासीत् च । शिष्येन सहजतया कण्ठस्थत्वात्, गीतात्मकत्वेन, शीघ्रमर्थं प्रदातुं समर्थत्वेन च काव्यपरम्परायां सर्वेषां रुचिः अभवत्।

नाटकं दृश्यकाव्यमिति कथ्यते चेदपि मञ्चे दृश्याः कृतत्वात्, तेन उक्ताः संवादाः च कथ्यमानाः श्रव्यं वा भवन्ति, तत् दृश्य-श्रव्य-काव्य-नाट्यं मन्यते। अपि च **दशधैव रसाश्रयम्** –

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति।।[4]

१० रूपकाणां १८ उपरूपकाणां च मध्ये मुख्यतया नाटकं, त्रोटकं, सट्टकं च श्रव्य-दृश्य-काव्यस्यान्तर्गतं मन्यन्ते।

कस्यापि कार्यस्य सफलता तस्य कर्तुः, तस्य सहकारिणां चोपरि निर्भरं भवति, ये स्वलक्ष्यस्य प्राप्त्यर्थं कार्याणि सम्यक्रूपेण कुर्वन्ति। अत्र उल्लेखनीयं यत् नाटकेऽपि पात्राणां

[1] हिन्दी दशरूपक, 1.7
[2] साहित्यदर्पणम्, 6.1
[3] तत्रैव, 6.1
[4] हिन्दी दशरूपक, 1.8

समाना भूमिका भवति । आरम्भादन्त्यपर्यन्तं नाटकं संवादैः बद्धं, पात्रैः चतुर्भिः प्रकारैः अभिनयः क्रियते, लक्ष्यं प्राप्तुं, प्रेक्षकान् मनोरञ्जयन् निरन्तरं नियोजितं करोति। नाटकस्य कथानकं प्रसिद्धं भवेत्। राजा धीरोदात्तः स्वभावस्य भवेत्-

अभिगम्यगुणैर्युक्तो धीरोदात्तः प्रतापवान्।।
कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपतिः।
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायकः।।
तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम्।[1]

अनेकप्रकाराः नाटककाराः स्वविशिष्टप्रतिभायाः आधारेण उत्तमनाटकानि रचयन्ति । विशाखदत्तः एकं राजनैतिकं नाटकं लिखितवान् – मुद्राराक्षसं, यस्मिन् बुद्धिबलेनैव लक्ष्यं प्राप्तम् । भवभूतिना नाटकस्य लक्षणात् दूरं गत्वा करुणाधारितं नाटकं "**उत्तररामचरितम्**" लिखितमस्ति । परन्तु अद्यापि पण्डितानां मध्ये एकमेवोद्धरणं प्रसिद्धमस्ति – "व्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।" अभिज्ञानशाकुन्तलमधुना सर्वोत्तमं नाटकमस्ति यतः नाटके सर्वाणि लक्षणानि सन्ति।

परन्तु यदा नाटके नायकविरोधीप्रतिनायकः, विदूषकः, चेटः, चेटी, अमात्य इत्यादीनां महत्त्वं वर्तते, अपरपक्षे नायकं नायिकां च विना सम्पूर्णं नाटकमप्यपूर्णं दृश्यते। नायकः एव मुख्यपात्रः यः अन्ते परिणामं प्राप्नोति। तच्च लक्ष्यं कृत्वा नाटककारः सम्पूर्णं कथानकं लिखति, परन्तु नायिकां विना नाटकमात्माहीनं शरीरं, यस्य मूल्यं नास्ति, उपयोगिता नास्ति, यत् निष्फलं भवति। मुद्राराक्षसनाटकेऽपि विशाखदत्तेन चाणक्यस्य बुद्धिः नायिकायाः रूपे इति वर्णितास्ति । उक्तनाटकेऽभिज्ञानशाकुन्तलेऽपि धीरोदात्तनायकः, हस्तिनापुरस्य सम्राटस्य दुष्यन्तस्य पूर्वपत्नीद्वयं हंसपदिकां वसुमतिं च स्तः, चेदपि तस्य प्रियैव शकुन्तला नायिका अस्ति, यस्याः दर्शनं सः प्रथमाङ्के कृत्वा भावुकः भूत्वा उपायानन्वेषयति तां प्राप्नुत। तृतीयाङ्केऽपि गन्धर्वविवाहानन्तरमपि तामविद्यावशात् विस्मरति । किन्तु हेमकूटपर्वते स्थिते मारीचाश्रमे सप्तमे दिने तस्य सम्पूर्णसिद्धिः भवति।

अत्र द्रष्टव्यं यत् राजा दुष्यन्तः शकुन्तलायाः सौन्दर्यं दृष्ट्वा मुग्धः भवति, या राज्ञः विश्वामित्रस्य, मेनकाप्सरसः च पुत्री आसीत् । तस्याः सौन्दर्यस्य वर्णने द्वितीयाङ्के विदूषकस्य पुरतः वदति, प्रथमाङ्के चेकान्ते तस्याः सौन्दर्यं प्रशंसति –

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।[2]

---

[1] तत्रैव, 3.22-23, पृ. 162.

[2] अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1.20, पृ. 57.

शकुन्तला रमणीया नायिका अस्ति। दशरूपककारेण नायिकायाः मुख्यतया त्रयः प्रकाराः वर्णिताः । उक्ताः च – **स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा।**[1] अर्थात् नायकस्य गुणानुसारेण नायिकाः त्रिविधाः विचारिताः - स्वकीया, परकीया, साधारणस्त्रीश्च। यथाशक्तिः नायिका नायकस्य सामान्यगुणानुसारेण भवति तथा च साहित्यदर्पणेऽपि त्रयः प्रकाराः नायिकाः वर्णिताः सन्ति – **स्वान्या साधारणा स्त्रीति त्रिविधा**[2] परन्तु नाट्यदर्पणकारेण चतुर्विधाः नायिकाः वर्णिताः - कुलजा, दिव्या, क्षत्रिया, पण्यस्त्री[3]। दशरूपककारेण स्वकीयानायिकायाः लक्षणं दत्तमस्ति – **मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक्ता।**।[4] स्वकीया स्त्री विनयेन सरलतया च पूर्णा भवति। सा त्रिविधास्ति - मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा च । सा लज्जावती, स्वपत्युः सेवायां निपुणः,पतिव्रतास्ति।

नाट्यदर्पणेऽपि सर्वविधनायिकायाः त्रयः प्रकाराः मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा च कृताः[5] । परं साहित्यदर्पणे दशरूपककारमनुकरणं कृत्वा स्वकीयायाः एव त्रयः प्रकाराः कृतास्ति – **सापि कथिता त्रिभेदा मुग्धा मध्या प्रगल्भेति**[6]**।**। अपि च भावप्रकाशने स्वकीयानायिकायाः एते भेदाः वर्तन्ते[7]।

सर्वप्रथमं मुग्धायाः लक्षणं दत्त्वा धनञ्जयाचार्यः वदति – **मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि**[8] अर्थात् यस्यां यौवनं कामभावनाश्च प्रथममागच्छन्तः या रतिक्रीडायां मैथुनाय योग्या नास्ति यतोहि तस्मादनभिज्ञास्ति, क्रोधत्वेन या सरलतया प्राप्तं भवेत्, सा मुग्धा नायिकास्ति। लज्जयाच्छादितः तस्याः अनुरागः अस्ति या नवोढा, मुग्धा या, यानुरागेण पतिं द्रष्टुमेच्छति, परं संकोचं करोति। साहित्यदर्पणेऽपि प्रायः एतादृशं विवेचनं प्राप्यते – **प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा। कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा**[9]**।** एवं पञ्चविधाः मुग्धानायिकायाः सन्ति, परन्तु भावप्रकाशने मुग्धायाः स्वरूपं स्पष्टतया चित्रितमस्ति – **शीलसत्यार्जवोपेता... न वदत्यप्रियं प्रिये**[10]**।।**

अभिज्ञानशाकुन्तलस्य नायिका शकुन्तला एतैः लक्षणैः युक्तास्ति। सापि षोडश-

---

[1] दशरूपक, 2/15, डॉ श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य शास्त्र, मेरठ

[2] साहित्यदर्पणम्, 3.56

[3] नाट्यदर्पणम्, 4.255

[4] दशरूपक, 2.15

[5] नाट्यदर्पणम्, 4.257

[6] साहित्यदर्पणम्, 3.57

[7] भावप्रकाशन, पृ. 94, पंक्तिः - 21

[8] हिन्दी दशरूपक, 2.16, पूर्वार्धम्

[9] साहित्यदर्णम्, 3.58

[10] भावप्रकाशन, पृ. 96, पंक्ति – 17-20

सप्तदशवर्षीया नवयौवना युवती लज्जावती चास्ति तथा च सा प्रथमाङ्के दुष्यन्तस्य मुखं द्रष्टुमेच्छति परन्तु सा लज्जया दूरं गच्छति तथा च अनेकैः व्याजैः यत् तस्याः वस्त्राणि प्राप्यन्ते लतासु संलग्नाः , राज्ञां च पश्यति। तस्याः क्रोधः क्षणिककालाय वर्तते। यदा सा सप्तमाङ्के भर्त्रा सह मारीचृषेः पुरतः आगन्तुं लज्जायुक्तास्ति। पादयोः पतित्वा क्षमायाचते सति नृपः सा क्षणमात्रेण क्षमति।

कविकुलगुरोः कालिदासस्य "**सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्**"। उक्तं च-

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।

महाभारतस्य शकुन्तलोपाख्यानाधारितमेकाङ्कं नाटकं नाटककारस्य प्रतिभया एतादृशमभवत् यत् जर्मनकविः नाटककारः गेटे अभिभूतः उक्तवान् –**"यदि भवान् वसन्तस्य विकसन्तानि पुष्पाणि ग्रीष्मस्य पक्वानि फलानि युगपत् द्रष्टुं इच्छति,यदि भवान् आत्मानन्दम् आत्मतृप्तिं च युगपत् प्राप्तुम् काङ्क्षति, यदि भवान् लौकिकम् अलौकिकं च एकत्रम् अनुभवितुमिच्छति तर्हि अहं कथयामि – शकुन्तला।"**[1]

अर्थात् जीवनमिव नाटकस्य प्राणवाहिनी धारा नायिका भवति, यस्यां मार्मिकं रसं प्रवहति। सापि नायकमिव धीरा, विनीता, माधुरी, त्यागशीला, प्रियंवदा, शुचिमानसी, कुलीना, मानिनी, तेजस्विनी, ललिता च । नायिकासु स्वकीया शीलार्जवादिगुणयुक्ता, पतिप्रेमपरायणा, व्यवहारनिपुणा, गृहकार्यदक्षा, विवाहिता, पतिव्रता नारी च। स्वकीयासु मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा च।

विश्वामित्रमेनकयोः परित्यक्ता कन्या शकुन्तला धर्मपित्रा ऋषिकण्वेन पालिता। यदा नाटकस्य प्रथमाङ्के नायकः दुष्यन्तः ऋषेः कण्वस्य आश्रमे प्रविशति सः आलवालपूरणे नियुक्तां नायिकां शकुन्तलामनसूयाप्रियंवदाभ्यां सह पश्यति तदा सः चिन्तयति-

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं।

प्रथमाङ्के यदा शकुन्तला स्वसखीभिः सह वृक्षसेचनं करोति , तदा राज्ञः मुखात् कविना वर्णनं कृतमस्ति । शकुन्तलाया अधरः किसलयराग अस्ति। बाहू कोमलविटपानुकारिणौ स्तः। तस्याः सुकोमलशरीरे वल्कलवस्त्राणि सुशोभितानि सन्ति। तस्या अङ्गेषु कुसुममिव लोभनीयं यौवनं सन्नद्धमस्ति। सा अप्सरसः पुत्री इति ज्ञात्वा दुष्यन्तः कथयति-

मानसीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।।[2]

तस्याः सौन्दर्यं दृष्ट्वा राजा दुष्यन्तः विस्मित एव तिष्ठति। । तस्याः सौन्दर्यं नैसर्गिकम् । आश्रमधर्मे नियुक्तां तामवलोक्य तस्याः धर्मपितरं काश्यपम् 'असाधुदर्शी' इति कथयन् दुष्यन्तः

[1] गेटे ऑन शकुन्तला।

[2] अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1.26

विचारयति -

इदं किलाव्याजमनोहरं वपु-
स्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया
शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति।।[1]

शास्त्रीयदृष्ट्या शकुन्तला मुग्धानायिकास्ति । राज्ञः दुष्यन्तस्य तां प्रति कथनमस्ति - मुग्धा तपस्विकन्यासु।। तपोवने पालितस्य कारणात् सा सौम्या, लज्जाशीला, सरलहृदया चास्ति। तस्या अप्रगल्भतायाः वर्णनं दुष्यन्तस्येतेन कथनेन व्याख्यायते – निसर्गादेवाप्रगल्भस्तपस्विकन्याजनः। सा नायिकास्ति या जनव्यवहारेभ्यः सर्वथानभिज्ञास्ति, शीघ्रं विश्वासं करोति। दुष्यन्तं राजानं दृष्ट्वा एव तस्याः मनसि अव्याख्यातः प्रेमविकारः उत्पद्यते, यत् सा तपोवनस्याचरणविरुद्धं मन्यते, परन्तु लज्जाकारणात् सा स्वस्य निकटसखिभ्यः अप्येतत् भावः न प्रकटयति । सा कामवेदनादुःखेन दुर्बलतां प्राप्तवती तथापि स्वसखिभिः पुनः पुनः अनुरोधं कृत्वापि तस्याः मनसि विकारं प्रकटयितुं साहसं नास्ति । किन्तु यदा सा प्रकाशयति तदाप्यर्धवाक्यमेवोक्त्वा लज्जावती भवति –

यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः सः तपोवनरक्षिता राजर्षिः ।[2]

सैवमेव वदन्त्याः मौनं भवति। इदमेवोक्त्वा सा लज्जया मौनं भवति । यदा राजा तां प्रेम्णा याचते तदापि सा लज्जिता भवति, पितुः अनुज्ञां विनात्मसमर्पणं कर्तुं न सज्जा भवति ।

राजा दुष्यन्तः सौन्दर्येन मुग्धः भवति, वृक्षाणां पृष्ठतः तां पूर्णनेत्रेण द्रष्टुमेच्छति । शकुन्तलाया अलौकिकसौन्दर्येणाभिभूतः नायकः उद्घाटयति स्वमनसि –

चित्रे निवेश्य परिकल्पितमसत्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।[3]

तस्याः लावण्यं दुष्यन्तं मुग्धं करोति। तस्य मनसि शकुन्तलां प्राप्तुं कामना वर्धते।

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।

---

[1] तत्रैव, 1.18

[2] तत्रैव, तृतीयोऽङ्कः, 9 इति श्लोकतः पूर्वम्

[3] अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 2.9

अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति भुवि।।[1]

तां दृष्ट्वा सः निर्वाणमिव अनुभवति, विदूषकं प्रति निवेदयति- अये ! लब्धं नेत्रनिर्वाणम्। तस्मादेव सः तां सुमुखि प्रिये सुतनु, करभोरु, तनुगात्रि, मदिरेक्षणे, रम्भोरु, सुन्दरि इत्यादिभिः सम्बोधनैः अभिभूषयति।

एतानि सम्बोधनानि शकुन्तलायाः बाह्यं सौन्दर्यं निरूपयन्ति। आन्तरिकं सौन्दर्यं विना बाह्यं सौन्दर्यं सुगन्धहीनं पुष्पमिव भवति। शकुन्तलायाः सौन्दर्यमन्तर्मनः क्लेदयति आर्दीकरोति। तस्याः पारलौकिकी नखशिखशोभा नारीणामाभूषणेन लज्जयालङ्कृता। यदा सा आश्रमपदेऽतिथिं राजानं पश्यति तदा तस्याः मनसि प्रस्फुटति –

किं नु खल्विदं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो
विकारस्य गमनीयाऽस्मि संवृता।।[2]

सा प्रथमावतीर्णयौवनविकारा किन्तु तस्याः भावः निगूढः अव्यक्तः लज्जावशात्। तस्याः दुष्यन्ते आसक्तिः तीव्रा। अनसूया तस्याः कामयमानाम् अवस्थां प्रेक्ष्य तस्याः संतापस्य कारणं पृच्छति किन्तु लज्जावती शकुन्तला आत्मगतमेव अनुभवति –

बलवान् खलु मेऽभिनिवेशः।
इदानीमपि सहसैतयोर्न शक्नोमि निवेदयितुम्।[3]

प्रकृतिं प्रति तादृशः सहजः तीव्रः च प्रेम्णः अस्ति। अतः सा "निसर्गकन्या" इत्युच्यते परवर्तीविद्वांसैः, प्रकृतेराङ्के जन्म प्राप्य पालिता, अतः तस्याः लता, वृक्षादिषु प्रेम्णः अभवत् यथा सोदरः। अनसूया कथयति यत् इदं प्रतीयते यत् पिता कण्वः तवापेक्षया एतानाश्रमवृक्षानधिकं प्रेम करोति, अतः सः त्वां तान् जलं दातुं नियुक्तवान्, या नवपुष्पाणामपेक्षया मृदुतरास्ति, अस्मिन् विषये सा शकुन्तला वदति यत् एतत् केवलं मम पितुः अनुमतिः एव नास्ति, अधुना तेषु तस्याः सोदरस्नेहः अपि वर्तते। पतिगृहगमनं प्रति वनदेवताः तस्याः कृते प्रसाधनसाम्रग्यः यच्छन्ति अनुग्रहन्ति च। काश्यपः वनतरुभ्यः शकुन्तलया कृतानुपकारान् गणयन् तान् निवेदयति - सा तान् जलं दत्त्वा जलं पिबति स्म। यद्यपि सालङ्कारप्रिया, तथापि पत्राणि न भङ्गयति स्म-

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[4]

---

[1] तत्रैव, 2.10

[2] तत्रैव, प्रथमोऽङ्कः, शकुन्तलायाः सम्वादः, 25 इति श्लोकादनन्तरं

[3] तत्रैव, तृतीयोऽङ्कः, शकुन्तलायाः सम्वादः, 7 इति श्लोकतः पूर्वम्

[4] अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4.9.

शकुन्तला कालिदास्य नाटकेषु रूपकेषु सर्वेत्कृष्टनायिकास्ति। डॉ. एस. के. बेल्वकरः श्रीरामस्वामीशास्त्रीवर्यः शकुन्तलाया अस्मिन् नाटके प्रकृतिकन्यारूपे चित्रणमत्यन्तं प्रशंसनीयं कथितवान्। अति च तस्याः प्रकृत्या सह तादात्मयः निरूपितवान् - **एषः वातेरितपल्लवाङ्गुलीभिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्षकः। यावदेनं सम्भावयामि।**[1] न केवलं तस्या स्नेहः वृक्षाणां प्रतिरासीदपितु सर्वेषामाश्रमवासीनामपि तां प्रत्यधिकस्नेहः अभवत्। आश्रमात् गतायां शकुन्तलायां तपोवनं शून्यमिव भवति –

उदगलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।।[2]

यदा अनसूया पृच्छति – इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमालिका। एनां विस्मृतासि। शकुन्तलात्मनः उद्घाटयति – तदात्मानमपि विस्मरिष्यामि।

तस्याः ममता वृक्षेषु वनस्पतिषु मृगेषु दृष्टा। पतिगृहगमनकाले तया पुत्रवत् पालितः मृगः तस्याः मार्गं न परित्यजति स्नेहात् इति कण्वः सूचयति –

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुहीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टि परिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।।[3]

श्रेयान् प्रति तस्याः व्यवहारं तदनुरूपं श्लाघनीयं च। यदा दुष्यन्तं प्रति वृत्तमनोरथायाः तस्याः अङ्गानि तपन्ति तस्यां प्रेमासक्तः नायकः संतापहारकैः नलिनीपत्रैः शीतलवातान् सञ्चारयितुं तस्याः चरणौ स्वाङ्के निधाय संवाहयितुमिच्छति तदापि शीलपरायणा सा मर्यादायाः सीमोल्लङ्घनं न करोति – **न माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्ये।**[4]

शकुन्तला स्वाभिमानी नायिका अस्ति । यदा तस्याः प्रेम्णः अवहेलना भवति, तदा सातिक्रुद्धा भवति। यदा शकुन्तला राजभवनमागच्छति, तदा दुष्यन्तः कथयति – "एवमादिभिरात्मककार्यनिवर्तिनीनीमनृतमयवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः।" तदापि शकुन्तला स्वं नियन्त्रयति। परन्तु यदा सः पुनः गौतमीं वदति यत् मानवजातेः अतिरिक्तं, चतुरतापि प्रशिक्षां विना पशुपक्षिजातादिषु स्त्रीसु दृश्यते, तर्हि ज्ञानसम्पन्नानां मानवजातीनां महिलानां विषये किम्।" शकुन्तलायाः क्रोधः तदा प्रज्वलितः भवति , तदा सा दुष्यन्तमनार्यः इत्यपि वदति। यदा शार्ङ्गरवः तस्य निन्दां करोति तदा सा स्वसमीपस्थैः अपि तिरस्कृता अपमानिता च भवति, तदा

---

[1] तत्रैव,प्रथमोऽङ्कः, 21 इति श्लोकतः पूर्वम्

[2] तत्रैव, 4.12

[3] तत्रैव, 4.14

[4] अभिज्ञानशाकुन्तलम्, शकुन्तलायाः सम्वादः, 18 इति श्लोकादनन्तरम्

सा कष्टप्रदं दुःखमनुभवति – **"भगवती वसुधे! देहि मे विवरम्।"**[1]

शकुन्तला प्रथमश्रेण्यापतिव्रतानारी अस्ति। दुष्यन्तस्य वियोगः तस्याः कृते असह्यः वर्तते। राज्ञः हस्तिनापुरं गत्वा सा स्वचेतनतां त्यजति। दुर्वासाशापविषये सा न जानाति स्म यत् हस्तिनापुरे दुष्यन्तः तस्याः परित्यागं निर्ममतया सह करोति। परन्तु शकुन्तला तस्मात् विमुखं न भवति। सा तु स्वभाग्यमेवारोपणं करोति – नूनं मे सुख प्रतिबन्धकम्। पञ्चमाङ्के यदा पतिपरित्यक्ता करुणपरिदेविनी गौतम्यादीः अनुगच्छति सरोषं निवृत्तः शार्ङ्गरवः तां 'पुरोभागिनि' इति सम्बोधयन् दुर्वचति – आः पुरोभागिनि ! किमिदं स्वातन्त्र्यमवलम्बसे? सा भीता वेपते।

शकुन्तला एकादर्श कन्यास्ति । सा कण्वदत्तमतिथिसेवादायित्वं वृक्षसेचनं पूर्णभक्त्या निर्वहति। पितुः आदेशानुसारं सा वृक्षानाश्लेषयति , महता विनयेन च वदति यत् इदानीं कथं अहं पितुः अङ्कात् मुक्तः मलयपर्वतस्य पार्श्वे उद्धृतचन्दनलतैवान्यस्मिन् देशे जीवितुं शक्नोमि। पुनः गच्छन्ती पितरं आलिंग्य याचते - **तपश्चरणपीडितं तातशरीरम्। तन्माऽतिमात्रं मम कृत उत्कण्ठस्व**[2]**।।** कण्वं प्रति तस्याः श्रद्धा तदाशीर्वचनैरेव सिद्धा।

शकुन्तला पतिव्रता नारी अस्ति। दुष्यन्तेन सह तस्याः गान्धर्वविवाहः जातः। तत्पश्चात् सः स्वराज्यं याति। विरहाकुला सा अन्यमनस्का दुर्वाससः आगमनं न जानाति। सः तां शपति किन्तु सानभिज्ञा। यदा पञ्चमाङ्के राजा तां त्यजति तदापि सा पतिव्रता तपस्विनी च मारीचाश्रमे निवसति। सा तपस्विनीवत् स्वचरित्रं रक्षति तत्र।

वसने परिधूसरे वसाना
नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला
मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति।।[3]

तस्याः तपस्यायाः फलमेवास्ति यत् राजा दुष्यन्तः पादयोः पतित्वा क्षमायाचते। राज्ञा सह मारीचं प्रति गन्तुं सा लज्जावती। अपि चान्तेऽनुपमसुखभोगाय स्वराजधानीं प्रति नयति।

उपसंहारः -

एवमत्रानेन ज्ञायते यत् शकुन्तला एका सर्वोत्कृष्टा नायिकास्ति। अस्माभिः पूर्वमेव कथ्यते यत् **"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।।"** केवलं पञ्चमाङ्कातिरिक्तं सा सर्वत्रैव शिष्टा शालीनादर्शनारीरूपेण परिलक्ष्यते। तस्यै हासपरिहासं रोचते । स्वसखिभिः कृते हास्ये सा पूर्णरूपेण स्वस्थितिं निर्धारयति।

---

[1] तत्रैव, पञ्चमोऽङ्कः, शकुन्तलायाः सम्वादः, 29 इति श्लोकादनन्तरम्

[2] तत्रैव, चतुर्थोऽङ्कः, शकुन्तलायाः सम्वादः, 21 इति श्लोकतः पूर्वम्

[3] तत्रैव, 7.21

संदर्भग्रन्थसूची -

1. नाट्यशास्त्र का इतिहास, डॉ पारसनाथ द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2004
2. नाट्यशास्त्रम्, भरतमुनिः, गायकवाड़ ऑरियन्टल सीरिज, बडौदा
3. नाट्यशास्त्रम्, श्रीबाबूलालशुक्लशास्त्री, चौखम्बा संस्कृतसंस्थान, वाराणसी, वि. स. – 2072
4. नाट्यदर्पणम्, रामचन्द्रः गुणचन्द्रश्च(हिन्दी व्याख्या), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
5. साहित्यदर्पणम्, विश्वनाथ, डॉ निरूपण-विद्यालंकार, साहित्य भंडार मेरठ, 2016
6. साहित्यदर्पणम्, डॉ. सत्यव्रतसिंहः(व्याख्याकारः), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी - 2021
7. साहित्यदर्पणम्, विश्वनाथ, विद्यावाचस्पति-साहित्याचार्य शालीग्रामशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2016, अष्टम संस्करण
8. साहित्यदर्पणम्, विश्वनाथः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1953
9. संस्कृतसाहित्येतिहासः, आचार्य रामचन्द्रमिश्रः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2019
10. संस्कृतसाहित्येतिहासः, आचार्य हंसराज अग्रवाल, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2011 - 12
11. संस्कृतसाहित्येतिहासः, आचार्यलोकमणिदाहालः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी - 2019
12. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 2019
13. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ A.B. Kith, डॉ मंगलदेव शास्त्री(अनुवादक), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2022
14. हिन्दी दशरूपक, डॉ. भोला शंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2015
15. दशरूपक, धनञ्जय, सम्पादक - डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, त्रयोदशी संस्करण
16. दशरूपक, धनञ्जय तथा धनिक, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, 1941(अवलोकसहित)
17. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, आचार्यः पं शिवप्रसाद-द्विवेदी, भारतीय विद्या प्रकाशनं, देहली, 1998
18. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डॉ राकेश शास्त्री तथा डॉ प्रतिभा शास्त्री, संस्कृत ग्रन्थागार, दिल्ली, 2017
19. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डॉ. निरूपण विद्यालङ्कार (सम्पादक), साहित्य भण्डार, 2015,
20. भावप्रकाशनम्, शारदातनय, ऑरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1930

❒

Visible Scars, Invisible Wounds: Women and Acid Violence in India

Swati Sucharita Nanda*, Hasan Bano**

Introduction:

Violence against women in India manifests in various forms, encompassing verbal, physical, and sexual abuse. The National Crime Records Bureau (NCRB) categories crimes against women into several legally defined categories.[1] These include domestic violence, harassment, and cruelty by in-laws (Section 498A of the IPC)[2], assault with intent to outrage modesty, which covers offenses such as sexual harassment, stalking, and voyeurism, and rape, including instances of gang rape and custodial rape (Section 376 IPC)[3]. Additionally, the NCRB identifies kidnapping and abduction, dowry deaths (Section 304B IPC)[4], violations under the Protection of Children from Sexual Offences Act[5] and cyber-crimes against women as significant forms of gender-based violence. These categories provide a legal framework for addressing and combating violence against women in India.

The types of violence against women have evolved in response to shifts in women's assertion of identity, independence, and agency over their own sexuality. In the contemporary period, Indian women are increasingly asserting their professional and rational identities in both private and public spheres, actively participating in the workforce, and challenging traditional gender roles. Additionally, they are exercising greater autonomy over their bodies and sexual preferences, redefining societal norms surrounding female

* Associate Professor of Political Science, DAV Post Graduate College, Varanasi

** Associate Professor of Sociology, DAV Post Graduate College, Varanasi

1 National Crime Records Bureau. (Latest Report Year). Crime in India: Statistics on crimes against women; Government of India. Retrieved from http://ncrb.gov.in; Accessed on November 21, 2024.

2 Ministry of Home Affairs (2014). Advisory on misuse of Section 498A of IPC and welfare measures for women. Government of India; Retrieved from https://www.mha.gov.in/sites/default/files/Adv498_220114_0.PDF; Accessed on November 23, 2023.

3 India Code. (1860). Indian Penal Code, 1860 (Sections 376 & 304B). Government of India; Retrieved from https://www.indiacode.nic.in/bitstream/123456789/15289/1/ipc_act.pdf; Accessed on November 23, 2023.

4 India Code. (1860). Indian Penal Code, 1860 (Section 304B - Dowry Deaths). Government of India; Retrieved from https://www.indiacode.nic.in/show-data?actid=AC_CEN_5_23_00037_186045_1523266765688&orderno=342; Accessed on November 23, 2023.

5 Ministry of Women and Child Development. (2012). The Protection of Children from Sexual Offences (POCSO) Act, 2012. Government of India. Retrieved from https://wcd.nic.in; Accessed on November 24, 2023.

agency and self-determination. These transformations, while marking progress toward gender equality, have also contributed to changing patterns of gender-based violence as patriarchal structures respond to these shifts.

Against this backdrop, this paper argues that the increasing cases of acid attacks in India as a form of gender-based violence is intrinsically linked to women's assertion of independence from patriarchal structures and their growing agency over their own sexuality. The rise in such attacks reflects a societal backlash against women's empowerment, particularly as they challenge traditional gender norms and seek greater autonomy in personal and professional domains.

Acid attacks: A statistical overview

Acid attacks, as a type of gender-based violence, continue to affect women worldwide.[1] While comprehensive global statistics are limited, available data from various countries provide insight into the prevalence and trends of such attacks. Globally, approximately 1,500 acid attacks are reported annually. However, their actual number is likely higher due to under-reporting, particularly in the developing countries. Young women and girls are disproportionately affected, often as a means to control or punish them. Many studies have concluded that acid attacks are higher in some of the Asian countries such as India, Pakistan, Bangladesh and Cambodia.[2]

For instance, between 1999 and 2011, Bangladesh reported approximately 3,000 acid attack victims, with incidents increasing at 262 cases in 2002.[3] Since then, there has been a significant decline primarily due to stringent lagal provisions that have controlled the selling of acids. Pakistan has also faced challenges of acid violence, predominantly affecting women. In 2011, 150 cases were reported, a rise from 65 in 2010[4]. In India, incidence of acid attacks have grown over the past decade for instance, between January 2002 and October 2010, 153 cases were reported in the newspapers. As many as 27 cases were documented in the year 2010. The National Crime Records

1 Acid Survivors Trust International. (2024). A worldwide problem. Retrieved from https://asti.org.uk/hocram/; Accessed on July 10, 2024.

2 Khan MA, Katiyar R, Verma M, Verma AK. (2024). Spectrum of vitriolage in India: A retrospective data record-based study. Journal of Family Medical Prim Care. 2024 Feb;13 (2): 556-567.

3 Naznin Akhter, Pratham Alo (2023, Feb 24). Acid Violence on the rise; Retrieved from https://en.prothomalo.com/bangladesh/7ms4ikztdh; Accessed on March 24, 2023.

4 Combating Acid Violence in Bangladesh, India and Cambodia (2011). Avon Global Center for Women and Justice at Cornell Law School and the New York City Bar Association, New York. Retrived from https://scholarship.law.cornell.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=1000&context=avon_clarke; Accessed on March 3, 2023.

Bureau (NCRB) reported 202 cases in 2022, up from 176 in 2021.[1] Accoring to NCRB report, West Bengal and Uttar Pradesh consistently report higher numbers of such attacks. The report informs that Uttar Pradesh recorded the highest number of cases (185 cases in 2014), followed by Madhya Pradesh (53 cases in the same year). Among Union Territories, Delhi reported 27 cases in the same year. Further, state-wise data up to 2021 indicates that West Bengal consistently reported the highest number of acid attacks. In 2021, West Bengal had 34 cases, followed by Uttar Pradesh with 22 cases, and Rajasthan with 15 cases. Other states with notable figures include Maharashtra (12 cases), Gujarat and Haryana (11 cases each). Focusing on Uttar Pradesh, the state reported 30 acid attack cases in 2022, showing a slight increase from the previous year.[2]

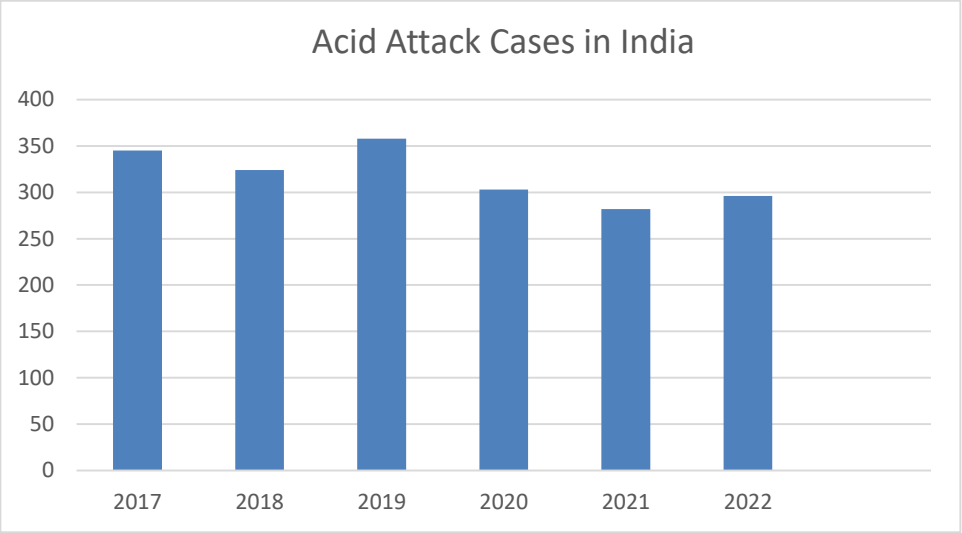

Source: Statista, 2022[3]

What is noteworthy is that most of the victims of acid attack are women. Motivations for attacks often include domestic disputes, rejected marriage proposals and dowry related conflicts. While these figures offer a glimpse into the situation, it would be pertinent to note that many cases of

1 National Crime Records Bureau. (2024). Spectrum of vitriolage in India: A retrospective data record-based study. Retrieved from https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC11006047/; Accessed on December 3, 2024.

2 National Crime Records Bureau. (2024). Spectrum of vitriolage in India: A retrospective data record-based study. Retrieved from https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC11006047/accessed on 13 October 2024

3 Statista. Number of acid attack cases investigated by the police across India from 2017 to 2022; Retrieved from https://www.statista.com/statistics/1103065/india-acid-attack-cases-investigated-by-police/on 13 November 2023

acid violence are not reported owing to fear of more serious injuries as well as lack of faith in accessing justice. Efforts to combat acid violence in India continue with a focus on stricter regulations, support for survivors, and public awareness campaigns.

Motivations behind acid attacks

Clearly, women especially the adolescent and teenager girls belonging to low-income households have been the targets in case of most acid attacks. Most cases of adolescent and unmarried girls being attacked show the reason to be rejecting sexual overtures of young boys and in many cases of older men. Many others have been thrown the chemicals for daring to initiate divorce proceedings against their husbands. Unmet dowry demands have also been the reasons in many cases. Scholars and activists working with the survivors have suggested that acid throwing is mostly used to teach a lesson to women who dare to defy men and the patriarchal norms and boundaries set by the society.[1]

Controlling sexuality by defacing the female

All societies and cultures throughout history have often sought to regulate and control female sexuality through various means, including physical, social, and psychological mechanisms. One such method involves "defacing" or altering the female body—whether through practices such as female genital mutilation (FGM), forced veiling, foot-binding, or even beauty standards that promote self-inflicted harm. These practices serve to restrict women's autonomy, diminish their sexual agency, and reinforce patriarchal structures that benefit from controlling female desire and reproductive capabilities. Many cases of acid violence on women have been driven by a desire of men to punish them for daring to reject their advances and in some other cases, for going beyond their traditional roles.

One such case is that of Preeti Rathi who succumbed to acid attack by her neighbour Ankur Panwar.[2] Shortly before the attack, Rathi had received the call letter from the Ministry of Defence to join the military nursing service in INHS Asvini (Mumbai). On 2nd May, 2013, she along with her family members has just deboarded the train at Bandra station when a man splashed

1 Ghosal, B. and Chattopadhyay, C. (2020). Acid attack: a devastating violence against women. ANTYAJAA: Indian Journal of Women and Social Change, 5 (2): 132-141.

2 PTI, Deccan Herald (2016, September 8). Panwar sentenced to death in Preeti Rathi acid attack case. Retrieved from https://www.deccanherald.com/india/panwar-sentenced-death-preeti-rathi-2084915; Accessed on January 13, 2024.

acid on her. Preeti succumbed to her injuries. The man was later recognized to be her neighbour Ankur Panwar who was not only a rejected suitor but nurtured the desire to teach Rathi a lesson for competing with him and getting a respectable job while he failed.

In another such case seventeen year old Sonali Mukherjee, an NCC cadet, was harassed and teased by a group of men in her hometown Dhanbad.[1] Repeated negative responses from her angered the men so much that they decided to teach her a lesson by pouring acid on her on the night of April 22, 2003, by throwing acid on her when she was fast asleep at home. The acid melted her nose, her right ear and some of it went into her ear drum, but luckily it did not enter her brain. In 2013, she made a plea for euthanasia which was rejected.

In yet another case in 2005, fifteen year old Laxmi was attacked with acid on her face by a man whose advances were spurned by her.[2] Laxmi is a real survivor who made a plea in the Supreme Court to frame rules to control the sale of acid and bring such attacks under the category of non-bailable offence. Married to Alok Dixit, a fellow activist, Laxmi has dedicated her life to fight cases of acid violence. Her case drew a lot of media attention inspiring a Hindi movie being made.

In patriarchal societies that calculate women's worth by their appearances, acid attacks not merely damage their faces them but destroys their personal and professional values for life. Such violent backlash also acts as lessons for other women who think twice before responding to sexual advances of men or asserting personal autonomy.

Revenge by families and professional competitors

In some instances, acid attacks are used as a means of revenge within families, particularly in disputes over property or inheritance conflicts. These attacks often stem from deep-seated grievances where one party feels wrong or cheated out of their rightful share of wealth, land, or assets. In such cases, a family member—be it a sibling, cousin, or extended relative may resort to this brutal form of violence to intimidate, punish, or permanently disfigure

1 Praduman Choubey, The Telegraph (2021. September 12). Acid attack victim turns counsellor for people in distress; Retrieved from https://www.telegraphindia.com/jharkhand/acid-attack-victim-turns-counsellor-for-people-in-distress/cid/1830403; Accessed on January 13, 2024.

2 Geneva International Center of Justice. Laxmi Aggarwal—The Acid Attack Survivor retrieved from https://www.gicj.org/lest-we-forget/2874-laxmi-agarwal-the-acid-attack-survivor; Accessed on February 20, 2023.

the perceived rival. Cultural and societal factors, including patriarchal norms, financial greed, and lack of legal deterrence, can contribute to the prevalence of such attacks. Unfortunately, victims, who are often women, may face long-term physical, emotional, and social consequences, including severe disfigurement, psychological trauma, and social ostracization.

In one such case on 26th May 2012, acid was thrown on Ritu Saini, a class VI student, from Rohtak (Haryana) was on her to volley ball court for practice when two men on a motor bike splashed acid on her face.[1] Investigations led the police to her aunt Rajwanti who did so to settle a score with Ritu's father over a property dispute.

Women appear to be the most vulnerable victims of acid attacks, even when these acts are motivated by revenge. Causing harm to women can severely hurt the claims of masculinity of the head of the family that rests on protecting women. Thus, such attacks are driven by deeply entrenched gender inequalities, societal norms that devalue women, and the fact that the legal system allows the perpetrators to act without fear of severe punishment.

Marital conflicts and Dowry disputes

Acid attacks on women due to marital conflicts and dowry disputes are a disturbing form of gender-based violence, often rooted in patriarchal norms and financial greed. In societies where dowry a payment or gift from the bride's family to the groom's family is still practiced, disputes over its amount or non-payment can escalate into extreme violence, including acid attacks. In some cases, husbands or in-laws use acid as a form of punishment when the bride's family fails to meet dowry demands, either before or after marriage. Women may also be attacked for resisting domestic abuse, seeking a divorce, or failing to conform to societal expectations of a "perfect wife." Such attacks are often meant to disfigure and permanently damage the victim's life, serving as both punishment and a warning to others.

In July 2021, a twenty two year old woman was allegedly compelled to drink acid by her husband and in-laws in Gwalior following disputes over dowry. Initially, it was reported that she consumed the acid herself under pressure; however, her statement later revealed that her in-laws had forced

1 Hindustan Times. (2013, July 24). My face was used to settle scores, says acid attack survivor Ritu Saini; Retrieved from https://www.hindustantimes.com/india/my-face-was-used-to-settle-scores-says-acid-attack-survivor-ritu-saini/story-E97GiJQ1cOMozKdsGkxKeO.html; Accessed on March 1, 2023.

her.[1] It was then that the police registered a case of attempted murder against the accused which led to arrests.

In Muzaffarnagar Reshma, a woman from Rathedi village, was reportedly tortured and forced to drink acid by her husband and his family members owing to unmet dowry demands in February 2022.[2] She sustained severe burns on her face and succumbed to her injuries. The accused family members fled and were subsequently pursued by law enforcement.

In Bareilly, Anjum, a 25-year-old woman, died after allegedly being forced to drink acid by her in-laws due to unmet dowry demands of ₹2.5 lakh and a car.[3] Before her death, she provided a statement detailing the abuse, leading to the registration of an FIR against her husband and in-laws in 2023.

Legal measures and stricter enforcement of anti-dowry and anti-violence laws are crucial in preventing such crimes. Public awareness campaigns, survivor support programs, and stricter punishment for perpetrators can also help in curbing acid attacks and ensuring justice for victims.

Impact of acid attacks

The chemical used in most cases is either nitric or sulphuric acid that primarily has industrial applications.[4] These are used for the manufacturing of explosives, fertilizers and on a more daily basis, for the purification of silver and gold. Thrown on human bodies, these have catastrophic effect on skin and flesh. Victims of acid attacks are often left horrifically disfigured for life as the skin melts leaving the bones exposed. Acid attacks result in devastating injuries, including severe Burns that eats away at the skin, muscle, and sometimes even bone, causing excruciating pain. The severity of injury depends on the concentration of the acid and the duration of exposure. This leads to permanent disfigurement as the victims are often left with

1 Pankhuri Yadav, Times of India (2021, July 21). MP woman forced to drink acid retrieved from https://timesofindia.indiatimes.com/city/delhi/mp-woman-forced-to-drink-acid-by-husband-fights-for-life-in-city-hosp/articleshow/84598962.cms; Accessed on March 1, 2023.

2 PTI, The New Indian Express (2023, Feb 25). UP woman dies after in-laws force her to drink acid over dowry. Retrieved from https://www.newindianexpress.com/nation/2023/Feb/25/up-woman-dies-after-in-laws-force-her-to-drink-acid-over-dowry-2550932.html; Accessed on February 18, 2024.

3 PTI, The Times of India (2023, Feb 26). Woman,25, dies after being forced to drink acid retrieved from https://timesofindia.indiatimes.com/city/bareilly/woman25-dies-after-being-forced-to-drink-acid-by-in-laws/articleshow/98243786.cms; Accessed on February 26, 2024.

4 Singh, M., Kumar, V., Rupani, R., Kumari, S., Yadav, P. K., Singh, R., & Verma, A. K. (2018). Acid attack on women: a new face of gender-based violence in India. Indian Journal of Burns, 26 (1), 83-86.

extensive scarring, loss of facial features such as ears, nose, or lips. If the acid reaches the eyes, it can result in partial or complete blindness. Fumes from the acid can cause damage to the lungs, leading to breathing difficulties. Severe burns can cause contractures (tightening of the skin), restricting movement in affected areas.

Yet, psychological and social consequences of acid attacks, especially for women, are no less in severity.[1] Many survivors experience depression, anxiety, and suicidal tendencies. It is not unusual for the survivors to plead for euthanasia. The reason of their psychological stress comes from their social ostracization. Human societies put a lot of value on physical appearances. In India as in mostly parts of the world, woman is judged on the basis of her facial appearance. Acid attacks completely damage the face of the women that lead to their rejection from their communities. Acid attack victims face rejection not only in the marriage markets but also in the job markets. In addition to this, prolonged medical treatments require them to be out of the educational institutions or jobs for extended periods. This often leads to disruption of their education and jobs.

Conclusion

Acid attacks were not classified as a separate criminal offense in India until recent legal reforms.[2] Most important reason for the rise of acid attacks in India in the recent decades was lack of laws to curb easy availability of the chemicals in the open market. In 2009, Law Commission called for the establishment of the Criminal Injuries Compensation and Rehabilitation Board. This board was to be empowered to issue directions to appropriate authorities so that they could provide proper medical, psychological and legal aid to the victims and issue directives for the rehabilitation of acid violence in consultation with the Centre and the states governments.[3] Subsequently the National Commission for Women (NCW) launched a scheme for providing relief and rehabilitating acid attacks victims. It also proposed constituting a Criminal Injuries Compensation and Rehabilitation Board.

1 Ghosal, B., & Chattopadhyay, C. (2020). Acid attack: a devastating violence against women. ANTYAJAA: Indian Journal of Women and Social Change, 5(2), 132-141.

2 National Commission for Women. (2008). Scheme for Relief and Rehabilitation of Offences (by Acids) on Women and Children. Retrieved from https://ncwapps.nic.in/AnnualReports/200809/Eng/Annexure4.pdf; Accessed on January 2, 2023.

3 Law Commission of India. (2009). 226th Report on the Inclusion of Acid Attacks as Specific Offences in the Indian Penal Code and a Law for Compensation for Victims of Crime. Retrieved from https://indiankanoon.org/doc/87066215/; Accessed on January 2, 2023.

After several amendments carried out in the Indian Penal Code in post-Nirbhaya case period, acid attacks were put under a separate section of the IPC (i.e., 326A) and were made punishable with a minimum imprisonment of ten years with a provision to extend it to life imprisonment with a fine.[1] Provisions have been made in this law to punish the government officials and agencies that deny treatment and create hurdles in facilitating justice to the victims.

While the law seems to be a positive indication, victims often face slow police investigations, inadequate forensic facilities, and a sluggish judicial process. Additionally, delays in compensation disbursement and medical aid further exacerbate their hardships. Streamlining legal procedures, ensuring swift trials, and providing immediate financial and medical assistance are essential steps to expedite justice for acid attack survivors. Strengthening laws and enforcing strict timelines for case resolution can help prevent such inefficiencies from compounding the victims' trauma.

❒

1 Ministry of Home Affairs, Government of India. (2013). Advisory on Measures to Be Taken to Prevent and Deal with the Offence of Acid Attack on Women. Retrieved from https://chdslsa.gov.in/right_menu/act/pdf/acidattack.pdf; Accessed on March 2, 2023.

Culture of Varanasi: A Psychological Analysis

Rajesh Kumar Jha*

Abstract

Varanasi is one of the world's oldest cities still inhabited, it occupies a special place as India's cultural and spiritual hub. Varanasi's unique cultural and spiritual environment plays a pivotal role in shaping individual experiences of Spiritual Intelligence, Religiosity, and Death Anxiety (Jha, et.al, 2024). This paper aims to investigate Varanasi culture from a psychological point of view, looking at how the city's long-standing customs, religious rituals, and sociocultural dynamics influence its citizens' collective psyche. The examination explores important topics such spiritual beliefs, ritualistic practices, death and rebirth symbolism, and the significance of identity in cultural consciousness. Additionally, it looks into how Varanasi's cultural milieu affects psychological processes like coping strategies, resilience, and community connection. Through qualitative observations and pre-existing psychological frameworks, the study reveals a profound harmony between tradition and psychological adaptation, highlighting the complex relationship between culture and mental health in Varanasi. This approach sheds light on the ways that spiritual richness and cultural continuity support the psychological fortitude of a populace immersed in metaphysical ideas and history.

Key Words: *Culture, Spirituality, Religiosity, Collective psyche, psychological processes*

Introduction

Varanasi is considered one of the seven holiest cities (Sapta Puri) in Hinduism, often associated with liberation (moksha). It is believed that Lord Shiva founded the city, and the Kashi Vishwanath Temple remains a key pilgrimage site. Varanasi city also plays a vital role in Buddhism (being near Sarnath, where Buddha gave his first sermon) and Jainism (as the birthplace of several Tirthankaras). The Ganga River, flowing through the city, is believed to have the power to cleanse sins. Daily rituals on its ghats especially Manikarnika Ghat and Harishchandra Ghat (cremation) as well as Dashashwamedh Ghat and Assi Ghat (Ganga Aarti) demonstrate a unique integration of death and spirituality, embodying the belief in liberation (Diana, 1998). Death and cremation rituals performed at the Manikarnika Ghat are rooted in the belief that dying in Varanasi grants freedom from the

* Department of Psychology, DAV PG College, Varanasi.

cycle of rebirth.

Varanasi has a long-standing tradition in classical music, dance, and arts. The Banaras Gharana is renowned in Hindustani classical music, with legendary figures such as Ustad Bismillah Khan (shehnai maestro) and Pandit Ravi Shankar (sitar virtuoso) hailing from the city. The city is also known for its Banarasi silk sarees, characterized by intricate brocade work and fine silk, often worn during weddings and festivals. (Neuman,1990). The ghats of Varanasi, there are nearly 88 of them play a vital role in its cultural life. From morning prayers and yoga to evening Ganga Aarti, the ghats are centers of both religious and social activity. (Parry, J. (1994). The city is internationally known for Banarasi silk sarees, a legacy of the Mughal era, showcasing intricate zari and brocade work. Weaving is a major livelihood and a significant cultural heritage. Jain, J. (2012). Varanasi has been home to many literary and philosophical giants such as Kabir, Tulsidas, and Ravidas. These saints and poets challenged orthodoxy and emphasized spiritual egalitarianism, shaping the Bhakti movement.

The psychology of Varanasi's culture is a fascinating intersection of spiritual philosophy, collective identity, ritual practice, and existential acceptance, all of which contribute to a unique psychological environment. Varanasi, one of the oldest living cities in the world, is not just a cultural and spiritual hub of India but also a place where the environment, traditions, and way of life deeply intersect with psychological wellbeing.

Existential Acceptance & Death Positivity

Manikarnika Ghat, a prominent cremation site, represents a cultural acceptance of death as part of the spiritual journey. Unlike Western cultures that often fear or avoid death, Varanasi's approach aligns with existential psychology, helping individuals confront mortality with meaning.

Varanasi, one of the oldest living cities in the world, is not just a cultural and spiritual hub of India but also a place where the environment, traditions, and way of life deeply intersect with psychological wellbeing. Here's how Varanasi's culture connects to mental health and inner peace:

Spiritual Atmosphere & Mindfulness

Varanasi, as a spiritual center, offers rituals and practices that foster mindfulness, gratitude, and emotional regulation. Rituals like Ganga Aarti, temple visits, and chanting induce a meditative state.(Koenig, 2009). There are so many fundamental components like, temples, ghats, samadhi-places,

and rituals encourage and enhance introspection, meditation, and mindfulness. The Ganga Aarti and chanting of mantras can have calming effects, reducing stress and anxiety. Pilgrimage and prayer promote hope, gratitude, and surrender, all of which are known to support mental resilience. Varanasi has deep ties to yoga and ayurveda, both of which promote holistic mental health through body-mind balance, diet, breathing, and lifestyle regulation. Varanasi, with its historic connection to yoga and Ayurveda, supports practices that enhance self-awareness, breath control, and mind-body balance. (Streeter, et al., 2012)

Acceptance of Life, Death and Rebirth Cycle

Varanasi teaches acceptance of impermanence, especially through its rituals surrounding death (e.g., Cremations at Manikarnika Ghat, Harishchandra Ghat). This fosters a philosophical attitude towards life's suffering and challenges, reducing fear of death and increasing emotional maturity.

Varanasi's culture, especially around cremation ghats like Manikarnika, emphasizes detachment, impermanence, and spiritual liberation (moksha). This worldview reduces fear of death and encourages acceptance. (Becker, 1973). Varanasi's philosophical teachings of karma, dharma, and rebirth help individuals reframe suffering as meaningful, also support to explore meaningful life, aligning with logotherapy., which is enhancing the level of psychological Resilience.

Cultural Practices

In Varanasi, there are festivals, music, dance, and art activities are part of daily life, which are offering creative outlets for emotion, that causes of healthy mental and physical states. There is well established strong community bonds and shared cultural identity that help to reduce feelings of isolation or loneliness. And create a sense of belonging, which is linked to joyfulness, lower stress, low levels of anxiety and depression. Cultural integration strengthens identity and emotional wellbeing. (Baumeister & Leary, 1995). Cultural integration works as a helpful tool for providing social support and enhancing mental, emotional and physical wellbeing.

Simplicity of Life

The pace of life in Varanasi is slower and more reflective, reducing burnout and information overload. People want to spend their time close to nature (Ganga, sunrises, birdsong) contributes to a sense of peace and

connectedness. Life along the Ganges River, exposure to sunrise rituals, and the slower lifestyle promote restoration and tranquility, aligning with nature-based mental health approaches (Kaplan, et.al,1989).

Some of Psychological Theories are also aligned with Varanasi Culture, such as Maslow's Hierarchy involves spirituality and self-actualization are at the top and Varanasi provides a cultural space to reach this state of life. Logotherapy of Frankl insists finding meaning in suffering, the meaning of life is embedded in Varanasi's view of karma, dharma, and rebirth. Mindfulness-Based Stress Reduction (MBSR) practices like meditation, walking on the ghats, and ritual bathing mirror MBSR principles.

Conclusion:

The core tenets of psychological wellbeing, mindfulness, meaning, connection, simplicity, and acceptance are promoted throughout Varanasi culture. Its setting can be very healing for the mind and spirit. Varanasi is more than just a city; it is a dynamic cultural system that fosters mental health via philosophical, natural, social, and spiritual channels. It offers a special environment for inner healing and calm by fusing psychological knowledge with tradition. Varanasi culture is a remarkable blend of philosophical tenacity, artistic brilliance, and spiritual depth. It continues to shape the spiritual and mental environment of both locals and tourists, serving as a living museum of India's religious and cultural legacy.

References

- Becker, E. (1973). *The Denial of Death*. New York: Free Press.
- Baumeister, R. F., & Leary, M. R. (1995). The need to belong: Desire for interpersonal attachments as a fundamental human motivation. *Psychological Bulletin*, 117(3), 497–529.
- Eck, Diana L. *Banaras: City of Light*. Columbia University Press, 1998.
- Jha, R.K. & Jain, S. (2024). *Spiritual Intelligence, Religiosity and Death*
- *Anxiety among People of Varanasi*. Unpublished Master's Dessertation, DAV PG College,BHU, Varanasi.
- Jain, J. (2012). *Textile Tradition of Banaras: Banaras Brocades and Sarees*. IGNCA & Aryan Books.
- Kaplan, R., & Kaplan, S. (1989). *The Experience of Nature: A Psychological Perspective*.
- King, D. B. (2008). Rethinking claims of spiritual intelligence: A definition, model, and
- measure. Unpublished Master's Thesis, Trent University, Peterborough, Ontario,Canada.
- Koenig, H. G. (2009). Research on religion, spirituality, and mental health: A

review. *Canadian Journal of Psychiatry*, 54(5), 283–291.

- Frankl, V. E. (1985). *Man's search for meaning* (Rev. ed.). Washington, DC: Washington SquarePress. Streeter, C. C., et al. (2012). Effects of yoga on the autonomic nervous system, gamma-aminobutyric-acid, and allostasis in epilepsy, depression, and post-traumatic stress disorder. *Medical Hypotheses*, 78(5), 571–579.
- Neuman, Daniel M. *The Life of Music in North India: The Organization of an Artistic Tradition*. University of Chicago Press, 1990.
- Parry, J. (1994). *Death in Banaras*. Cambridge University Press

❒

Indian Knowledge System: A Comprehensive Exploration

Dr. Sanjay Kumar Singh*

Introduction

The Indian Knowledge System (IKS) is a vast and intricate body of knowledge that has evolved over thousands of years. Rooted in the Indian subcontinent, it encompasses a diverse array of disciplines including philosophy, science, mathematics, medicine, art, architecture, linguistics, and spirituality. Unlike the Western compartmentalization of knowledge, IKS integrates the spiritual with the empirical, offering a holistic approach to understanding life, nature, and the cosmos. This interconnected worldview asserts that all aspects of existence, whether material or spiritual, are interdependent and part of a unified reality. This perspective challenges the conventional dichotomy between the sacred and the secular, recognizing both as integral parts of a larger cosmic order.

This article aims to explore the key components of IKS, its historical development, contributions to global knowledge, and its relevance in contemporary education and society. The richness of IKS is reflected in its various disciplines, each contributing to a broader understanding of human life and the universe. Indian philosophy, for instance, delves into profound questions about the nature of existence, the self, and the universe. Ancient Indian mathematicians and astronomers, such as Aryabhata and Brahmagupta, laid the groundwork for modern mathematical concepts, including the use of zero and the development of trigonometry. In medicine, Ayurveda and other healing traditions emphasize the balance between mind, body, and spirit as a foundation for health, offering a holistic approach to well-being.

The Indian Knowledge System also highlights the importance of experiential knowledge while the Western tradition often separates the mind from the body and the spiritual from the material, IKS fosters a more integrative view. Practices such as Yoga and meditation illustrate the direct connection between the mind and body, emphasizing the significance of mental discipline and physical health in achieving overall well-being. This

* Department of Philosophy, DAVPG College, Varanasi.

emphasis on holistic health aligns with the growing global interest in mindfulness, mental health awareness, and the integration of traditional healing practices with modern medical approaches. Thus, IKS continues to inspire and offer valuable insights, demonstrating its timeless relevance.

1. Historical Background of Indian Knowledge System

The Indian civilization is among the oldest in the world, and its intellectual heritage dates back to the Vedic period (circa 1500–500 BCE). The Vedas, Upanishads, Puranas, and other ancient texts provide insights into the foundations of IKS.

The Rigveda, the oldest of the four Vedas, contains hymns that exhibit profound philosophical and cosmological thought. The Upanishads delve deeper into metaphysical questions about the self (Atman), the ultimate reality (Brahman), and the nature of existence. These texts laid the foundation for the six classical schools of Indian philosophy — Nyaya, Vaisheshika, Samkhya, Yoga, Mimamsa, and Vedanta.

Over time, IKS evolved through various cultural, religious, and intellectual movements, absorbing and assimilating knowledge from diverse sources, including Buddhism, Jainism, and later Islamic and European influences. Over time, IKS evolved through various cultural, religious, and intellectual movements, absorbing and assimilating knowledge from diverse sources, including Buddhism, Jainism, and later Islamic and European influences. This dynamic process of integration and synthesis allowed IKS to adapt and grow, remaining relevant to the changing needs of society while preserving its core principles. For instance, the rise of Buddhism and Jainism during the 6th century BCE brought new perspectives on ethics, metaphysics, and the nature of suffering, which influenced not only Indian thought but also global philosophical traditions. These religious and philosophical schools of thought emphasized non-violence (ahimsa), the pursuit of inner peace, and self-realization, enriching the spiritual and ethical dimensions of IKS.

Similarly, the arrival of Islamic culture and ideas during the medieval period introduced new scientific methods, mathematics, and architectural techniques. Scholars such as Al-Biruni and In Sina engaged with Indian scholars, leading to a fruitful exchange of knowledge in astronomy, medicine, and mathematics. The fusion of Islamic and Indian intellectual traditions gave rise to significant advancements in fields like algebra, chemistry, and medicine. Additionally, the colonial period marked a shift in the way Indian knowledge was perceived. The British colonization of India and the

subsequent introduction of Western education systems, while diminishing the prominence of indigenous knowledge, also led to the rediscovery and preservation of ancient Indian texts and ideas.

In modern times, the revival of IKS has been fueled by a desire to reconnect with India's intellectual heritage. The independence movement in the 20th century, led by figures like Mahatma Gandhi, emphasized the importance of indigenous knowledge and self-reliance. Today, scholars and educators are increasingly looking to IKS as a source of wisdom and innovation, integrating its holistic approach to health, sustainability, and spirituality with contemporary scientific and philosophical advancements. This revival not only honours India's historical contributions but also offers valuable insights for addressing contemporary global challenges.[1]

2. Key Components of Indian Knowledge System

2.1. Philosophy and Logic

Indian philosophy is an integral part of IKS. It is characterized by its systematic approach to metaphysics, epistemology, ethics, and logic. The six orthodox (Astika) systems, particularly Nyaya and Mimamsa, developed intricate theories of logic and reasoning.

The Nyaya School developed a rigorous system of logic that was used for debate and discussion, much like the Aristotelian syllogism in the West. Udayana and Gangesha were major logicians who contributed to the development of the Navya-Nyaya school in medieval India.

2.2. Mathematics and Astronomy

India made pioneering contributions to mathematics and astronomy. The concept of zero as a numeral, the decimal system, and significant advancements in algebra and trigonometry originated in ancient India.

Aryabhata (5th century CE) proposed that the Earth rotates on its axis and made accurate calculations of solar and lunar eclipses. Bhaskara II, in his seminal work Siddhanta Shiromani, explored concepts akin to calculus.[2]

2.3. Medicine and Ayurveda

Ayurveda, the ancient Indian system of medicine, is a holistic approach to health that emphasizes balance between body, mind, and spirit. It is based on the theory of the three doshas (Vata, Pitta, and Kapha) and aims at preventive and curative health practices.

The Charaka Samhita and Sushruta Samhita are foundational texts of

Ayurveda. Sushruta is considered the father of surgery, and his text describes surgical techniques including rhinoplasty and cataract surgery.[3]

2.4. Architecture and Engineering

Indian architecture is a testimony to the scientific and aesthetic sensibilities of ancient Indian culture. The Vastu Shastra outlines principles of architecture and urban planning based on cosmic energies and natural elements.

The construction of temples, stepwells, and urban centers like Mohenjo-Daro and Dholavira reveals advanced engineering knowledge, including water management systems and town planning.[4]

2.5. Linguistics and Grammar

Panini's Ashtadhyayi (circa 500 BCE) is a monumental work in Sanskrit grammar. It is considered the earliest known work of descriptive linguistics and is remarkably scientific in its structure.

Bhartrihari, a later philosopher-linguist, explored the philosophy of language and meaning (Sphota theory), which prefigures some modern linguistic theories.[5]

2.6. Art, Music, and Aesthetics

The Natyashastra by Bharata Muni is a foundational text on dramatics and performance arts. It discusses Rasa theory, which remains central to Indian aesthetics. Indian classical music systems Hindustani and Carnatic also stem from ancient traditions, with texts like Sangita Ratnakara elaborating their theoretical frameworks.[6]

3. Educational Institutions in Ancient India

India had world-renowned centers of learning like Takshashila, Nalanda, and Vikramashila. These institutions attracted scholars from all over Asia and taught a wide range of subjects from philosophy and logic to astronomy and medicine.

Takshashila (circa 700 BCE) is often regarded as the world’s first university, offering multi-disciplinary education. Nalanda (5th–12th century CE) became a major Buddhist center of learning and symbolized India's commitment to intellectual pursuit.[7]

4. Scientific Temper and Empiricism in IKS

Contrary to the stereotype of being mystical or speculative, IKS incorporated observation, hypothesis, and verification. For instance,

Ayurveda relies on systematic diagnosis and personalized treatment plans based on empirical knowledge. Similarly, ancient Indian astronomers used instruments like the gnomon (Shanku) and water clocks (Ghati Yantra) for precise measurements. The Sulba Sutras contain geometrical knowledge used for altar constructions, indicating practical applications of mathematics.[8]

5. Integration of Spiritual and Scientific Knowledge

One unique feature of IKS is the seamless integration of the spiritual with the scientific. Knowledge was not merely for utilitarian purposes but was aimed at self-realization (Atma Jnana) and liberation (Moksha). For example, Yoga is both a spiritual and scientific system aimed at enhancing mental clarity, emotional balance, and physical health. Patanjali's Yoga Sutras systematized its philosophical and practical aspects.[9]

6. Decline and Revival of Indian Knowledge System

The decline of IKS began with political instability, foreign invasions, and colonialism. The British education system, introduced in the 19th century, marginalized indigenous knowledge systems, deeming them unscientific or out-dated.

However, the post-independence era witnessed renewed interest in IKS. Institutions like Banaras Hindu University (BHU), Indian Council of Philosophical Research (ICPR), and the Indian Knowledge Systems Division under the Ministry of Education are now actively promoting traditional Indian knowledge.[10]

7. Contemporary Relevance of Indian Knowledge System

7.1. Education

The National Education Policy (NEP) 2020 emphasizes integrating IKS into mainstream education. This includes teaching Sanskrit, Yoga, traditional medicine, and Indian art and culture in schools and universities.

7.2. Health and Wellness

Global acceptance of Yoga and Ayurveda highlights the relevance of IKS in contemporary health paradigms. The COVID-19 pandemic also saw a surge in interest in Ayurvedic immunity boosters and traditional wellness practices.

7.3. Sustainability and Ecology

IKS promotes sustainable living and ecological balance. Indigenous agricultural practices, water conservation techniques, and reverence for

nature are crucial in addressing today's environmental crises.

7.4. Artificial Intelligence and Indian Knowledge System

Recent interdisciplinary studies explore how Indian Knowledge System, especially in logic and language processing (like Paninian grammar), can inform AI development.

7.5. Social and Cultural Relevance

In today's increasingly globalized world, there is a renewed interest in preserving and promoting indigenous knowledge systems like IKS, as they provide not only historical insights but also practical wisdom that can be applied in contemporary society. IKS places a significant emphasis on community, relationships, and sustainable living, which is essential in addressing the growing concerns of alienation, mental health, and environmental degradation that the modern world faces. By learning from the collective wisdom embedded in IKS, societies can find ways to build stronger social cohesion, foster inclusive growth, and develop strategies for social justice. Moreover, the integration of IKS into global discussions about culture and knowledge can contribute to a more pluralistic and diverse understanding of the world, moving away from the dominance of a single perspective.

7.6. Revival of Indigenous Languages

One of the most essential aspects of the contemporary relevance of IKS is the revival and promotion of indigenous languages, such as Sanskrit and regional languages, which carry significant philosophical and scientific traditions. Sanskrit, as the language of many foundational texts of IKS, holds immense value in understanding the depth of Indian thought and is key to interpreting ancient manuscripts. Similarly, regional languages and dialects contain indigenous knowledge on various aspects of medicine, ecology, and social systems. Reviving and incorporating these languages into modern education systems can ensure that this treasure trove of knowledge is preserved, disseminated, and utilized in innovative ways to solve contemporary issues.

7.7. Future Directions and Global Collaboration

The future of IKS lies in its ability to adapt to modern challenges while preserving its core values. There is potential for international collaboration in sectors like healthcare, environmental sustainability, and technology. As countries around the world look to traditional systems for solutions to their crises, IKS can play a crucial role in offering models of

balance, holistic health, and sustainability. Its deep understanding of human nature, ethical living, and respect for nature can significantly contribute to global discussions about achieving sustainable development and social well-being.

By fostering interdisciplinary dialogue and integrating IKS with modern knowledge systems, societies worldwide can create a more inclusive, sustainable, and harmonious future. The relevance of IKS, with its profound insights into ethics, knowledge, and life, will continue to grow as we address the complexities of the modern world.

Conclusion

The Indian Knowledge System is a treasure trove of wisdom that offers insights into almost every aspect of life and existence. It is not only historically significant but also holds immense potential for solving modern challenges through its holistic, integrative, and sustainable approaches.

Reviving and promoting IKS is not merely about cultural pride; it is about enriching the global knowledge landscape. By weaving traditional wisdom with modern science, India can offer innovative solutions that benefit humanity as a whole.The emphasis on balance and harmony in Indian thought, whether in the areas of medicine, agriculture, or philosophy, can offer sustainable alternatives to many of the issues we face today. For instance, the integration of Yoga and Ayurveda into global wellness practices shows the relevance of IKS in promoting holistic health, not just as a cultural practice, but as a scientific approach to well-being.

Moreover, the revival of IKS can foster a greater sense of environmental stewardship, as its principles highlight the importance of living in harmony with nature. By integrating these ideas into modern educational frameworks, we can create a more inclusive and balanced approach to learning, one that values both empirical knowledge and spiritual insight. Ultimately, the Indian Knowledge System, with its depth and wisdom, has the potential to guide humanity toward a more balanced, sustainable, and enlightened future, fostering a more harmonious coexistence with nature and one another.

Furthermore, the practice of critical thinking and logical reasoning embedded within IKS can contribute to a more intellectually rigorous society. Its emphasis on inquiry, discussion, and debate can pave the way for the development of new technologies and methodologies, ensuring that

traditional knowledge is not only preserved but adapted to meet contemporary needs. By fostering a global dialogue that incorporates IKS, we have the opportunity to create solutions that are both scientifically sound and ethically grounded.

References

1. Chatterjee, Satischandra, and Datta, Dhirendramohan. An Introduction to Indian Philosophy. University of Calcutta, 1984.
2. Joseph, George Gheverghese. The Crest of the Peacock: Non-European Roots of Mathematics. Princeton University Press, 2011.
3. Sharma, P. V. History of Medicine in India. Indian National Science Academy, 1992.
4. Acharya, P. K. Architecture of Manasara. Oxford University Press, 1933.
5. Staal, Frits. Discovering the Vedas: Origins, Mantras, Rituals, Insights. Penguin Books India, 2008.
6. Vatsyayan, Kapila. The Natyashastra. Sahitya Akademi, 1996.
7. Altekar, A. S. Education in Ancient India. Nand Kishore & Bros, 1944.
8. Kak, Subhash. The Astronomical Code of the Rgveda. Munshiram Manoharlal, 2000.
9. Feuerstein, Georg. The Yoga Tradition. Hohm Press, 2001.
10. Sen, Amartya. The Argumentative Indian. Picador, 2005.

❒

Some Reflection on Indian Philosophy: Reference to K. Satchidananda Murty

Dr. Sanjeev Veer Singh Priyadarshi*

Abstract

Prof. Murty is a unique Philosopher of international repute, grounded in Indian culture as well as well-versed in the philosophies of the east and west, interpreting Indian philosophy in the context of social, political and geographical condition. For him, Philosophy stand s for the evolution of all ideas a with reference to religion, political, social and educational aspects of human life; it is the critique of ideologies and the rational examination of the foundation of belief and faith. Murty Says that Philosophy and religion are different from each other ; though some of the topics are same, the interpretation are different. Religion is based on tradition, authority, classical texts, faith and rituals, whereas Philosophy stands for reason, individual analysis and logical conclusions. Murty asserts that philosophy is a systematic knowledge that arises out of human thought, not based upon belief and scriptures but provides new ideas, way to evaluate them.

Philosophy is the only branch of knowledge in which there are no final anwers; all answers can be questioned. In it there is an anti-thesis to every propounded thesis. Regarding philosophical controversies Bertrand Russell says, "it is hard to imagine any argument on either side which do not beg the question; on the fundamental issues, this is unavoidable."[1] K. Satchidananda Muty extends this idea not only to the abstract and abstruse philosophical and other theoretical issues. For him "No mortal is omniscient and infallible, and there can be no policies and programmes which are perfect and immutably correct. Practical wisdom is often the result of a heated and direct clash of many different viewpoints."[2]

Prof. Murty says that the development of any kind of knowledge associated with human understanding depends upon social conditions and physical environment.[3] Philosophy consists of reflection on man's

* Assistant Professor, Department of Philosophy, DAV PG College, BHU, Varanasi.

[1] Bertrand Russell, Dewey's new Logic,in the philosophy of john Dewey, ed Paul A. Schlipp, New York;1939 , p. 138

[2] Quoted in The philosophy of K. Satchidananda Murty, ed Sibajiban Bhattachrya and Ashok Vohra (ICPR,1995).

[3] Boaz, P, Philosophical Perspectives of K. Satchidananda Murty,D.K. Printworld, 2013,p. 42.

experience in relation to himself. But a reflection on one's experience is based on what type of philosophy one is subscribing to. By 'type of philosophy' we mean whether one is rooted in one's tradition or rooted in borrowed of the west.

K. Satchidanand Murty in his book , philosophy in India, argues that there were three conceptions of prevailed in India at different periods. (i) Philosophy as the rational, critical and illuminating review of the content of theology, economics and political science and also as the right instrument and foundation of all action and duty, which helps one to achieve intellectual balance. (ii) Philosophy as a system of ideas comprising epistemology, metaphysics and ethics, and (iii) Philosophy as the intuitive network of views regarding man, his nature and destiny, nature and the ultimate reality or God. Philosophers in India are concerned with all the three conceptions of philosophy though philosophers choose their conception based on their interest.

Murty occupies a distinctive position among philosophers. "He is a heterodox thinker as well as a critical traditionalist. Few specialists in Advaita Vedanta have been so severely critical as he has been in Revelation and Reason in Advaita Vedanta and few have presented such an admiring exposition of it as he has done in his Advaitic Notion……..(his writings) contain original ideas, critical observation and insightful comparisons."[1]

In his writings , he demonstrated that philosophy does not deal with abstract and abstruse issues alone , for him the problem of Philosophy are nothing but the problem of life.[2] That is why his writing are relevant to our time and needs.

Prof. Murty has interpreted Indian philosophy from the standpoint of socio-political and physical conditions at various periods of Indian history. Murty held the view that neither a thinker nor a philosophy arose out of anything, for they being the product of their social and political institution.[3] He says that while understanding Indian philosophy, one should not be led away by sentiments and feelings but cultivate the rational mode of search for

---

[1] Sibajiban Bhattachrya and Ashok Vohra, The philosophy of K. Satchidananda Murty,Motilal banarasidas,Delhi,1995.

[2] Murty's remarks quoted in Reason , Revelation and Peace, inside back cover.

[3] Murty,K.Satchidananda, Evolution of philosophy in India,D.K.Printworld,2007,p.2.

truth. One should view things objectively and scientifically, unclogged by misplaced patriotism and love for the past, while understanding the ideals and doctrines, there is a need to examine their roots in the society.[1]

Prof. Murty held that ideas and human thought reflect not only the socio-economic conditions but also have the necessary potentiality to break the established social and political institutions, causing to raise new social factors and conditions. So ideas make history and also some of the ideas, which do not fit into existing social structure. Murty says that "even the ideas of God and the nature of God, described in different religions are due to the social and physical condition of the regions, where they arose."[2] For him though ideas have their roots in social conditions their value cannot be judged on the basis of the prevailing condition.

Murty held the view that the six schools of Indian philosophy are due to the influence of socio-economic conditions of north India, which caused the development of the pessimistic view of life, seeking salvation to get away from this world.[3] He interpreted that the majority of the people neither worked out for their salvation nor tried to escape from the world as desired by the spiritual interpreters of the Indian philosophy. Therefore he asserts that all intellectual activities including religion and ethics are associated both with conscious and unconscious instinct of the mind.

He also said that the psychology of the person will also play a vital role in moulding one's philosophical thought. He writes that "the study of a man's character, of his habits and environment provides a clue towards understanding and appreciating his theories and beliefs. Not only is it necessary to study any theory in relation to the socio-economic structure in which it arises, but it is also necessary to pay attention to the character and personality of the man who puts it fort." [4] The formation of Indian thought, according to Murty, has its roots in the fusion of races in ancient India.

Murty says that the writers of the histories of Indian philosophy have simply narrated each system without evaluating and examining the facts with

---

[1] Boaz, P, Philosophical Perspectives of K. Satchidananda Murty, D.K. Printworld, 2013, p. 43.
[2] Murty, K.Satchidananda, Evolution of philosophy in India, D.K. Printworld, 2007, p.3.
[3] Ibid, p.6.
[4] Ibid, p.13

figures.[1] The other defect in the histories of philosophy is that they confuse religion with philosophy, though these two are not identical. Therefore Murty says that "while writing history of philosophy the distinction between philosophy and theology should be maintained; and the difference between systematic thought and belief should be kept in mind." [2] Ultimately Murty want to says that though a clear distinction between philosophy and theology, reason and faith did not find in the systems of Indian philosophy, there is need and possibility to extract philosophy from mythology and historical writings of India.

Prof. Murty stated interpreting Indian philosophy in the context of social, political and economic background, in his Hinduism and its Development at the age of twenty-three. In his interpretation, "one could find geographical and physical conditions as causes for the origin of Hinduism, apart from the racial differences. According to him, probably the influence of Islam in Kerala, might have caused Sankara to defend the religion of Hindus through the interpretation of Vedanta."[3] Murty also says that "the influence of Islam on the thought of Kabir and Nanak, and the socio-political and educational reform of the British in India for the rise of new outlook in Hinduism."[4]

He said that he wanted to present Indian Philosophy objectively and scientifically. According to him "all the heterodox schools are the results of speculative outlook of sixth century B.C at which time the authority of the priests and the validity of magical cults, the worship of God and Goddesses have been questioned."[5] Buddha says that the true Brahmana is one who is virtuous and learned, but not he who is born in the Brahmana caste. According to Murty social, political and economic institutions shape the views and theories, though man is free and creative being and yet being influenced by socio-political and geographical conditions. He says that "every ideology- political, philosophical or religious- arises in answer to a

[1] Ibid, p.41-42
[2] Ibid, p.44
[3] Murty, K.Satchidanada, Hinduism and its Development, D.K.Printworld, delhi, 2007, P. 117
[4] Ibid, p.132
[5] Murty, K.Satchidananda, Evolution of philosophy in India, D.K. Printworld, 2007, p.105

particular problem of a particular age and part of the country."[1]

Murty says that philosophy can be understood better, if the political, social and economic circumstances are studied. Till the situations are similar but individual perceives things differently; no two individual, who have come from the same background, need to have the same point of view or the same way of thinking. Therefore the evolution of ideas, the growth of thinking can be better understood only when the belief, attitudes, expectations and social stricter are better studies.

Each philosophical school have different word to present their viewpoints, like Brahmodaya is the word that is used to describe philosophical discussion in the Vedic literature. The Buddhist used drsti or ditthi to denote the philosophical viewpoint. But Murty considers 'anviksiki' as an appropriate word to denote philosophy. According to kautilya, anviksiki is the science of reviews (examines) with the help argument. Murty writes that "the system of Indian thought – Samkhya, vaisesika and the Lokayata school constitute anviksiki. In the later works anviksiki is used to denote as the 'science of self'(atma-vidya) and the 'science of reasoning'(Nyaya)."[2]

Murty emphasizes that it would be a mistake to consider only metaphysics, epistemology and logic as the whole of philosophy. He also remarks that, apart from this kind of perception, the contribution of the philosophers on human welfare and progress have also been considered as philosophy.

The inconsistency in the philosophical understanding of contemporary thinkers has been analyzed by Murty. He comments that some critics consider Vivekananda , Ramana Maharshi and Gandhi as philosopher and neglect the philosophy of Narayan Guru, Chandrasekhar Bharati and Ambedkar. Murty also emphasize on the relevance of the philosophy in everyday life, giving the following conclusion:

1. "The rich and varied Philosophical heritage of India should be taught with social relevance.
2. What is not relevant in the traditional Indian Philosophy should be discarded; and what is universal and best for now is to be taught.
3. With critical outlook, various ideologies and systems of western and

[1] Ibid, p. 149
[2] Murty, K.Satchidananda, philosophy in India, Motilal banarsidas, new delhi, 1991,p. 5

Indian should be taught to arrive and develop an adequate value system.

4. Various Philosophical problems as perceived and answered by each philosopher should be taught."[1]

India has a long, rich, continuous and most varied philosophical heritage, in which the systems of Buddhism, Hinduism, Jainism, Lokayata and Islamism have penetrated. However there is a need to write the history of Indian Philosophy from the standpoint of the thinkers than the system in the historical perspective. Murty stands for the plurality of philosophical thinking. He says that either in the past or in the present times there was no single philosophy of independent Indian identity. "For him even the same socio-political conditions do not yield or result in the same philosophical thinking. No doubt, in a particular period certain issues and problems arise but the solution may not be uniform. A civilization may have a kind of ideas evolved into homogeneous unique philosophy, but no nation can claim that a particular kind of ideas and doctrines are of its own. Hence Murty departs from the idea and proposal of having a single philosophy of independent Indian Identity."[2]

In accordance with the view of S. Radhakrishnan who urged that we must recognize the solidarity of philosophy with History, intellectual life and the social conditions. Murty says that philosophy should be learned from the historical perspective. For him histories of philosophy are more inclusive or comprehensive than the problem-oriented writing and learning. In conclusion Murty says that history of philosophy can bring home to a beginner in this subject the variety of problems and solutions, the way schools and systems developed and interacted with other subject. When the classics are studied with this background they will become more meaningful and alive.

❐

[1] Ibid, p. 165
[2] Ibid, p. 173

Influence of Equal Employment Opportunity on Employee's Performance: An Inquisitive Review

Dr. Satyarth Bandhal*

Abstract:

This article's aim is to judge the subject of equal employment chances in the hiring and selection procedures for HR. This study is done since both HR managers and applicants are involved in these processes, this research is conducted separately among them. Thus, it will be determined if both sides share the same opinion with respect to the existence of this concept in the above mentioned processes. Equitable employment opportunities are essential for any company and are a major factor in luring talented workers. Equal opportunity for all workers is one of the vital pillars for attaining social justice in the workplace. Because of this, equal opportunity is more than just a claim to be made; In this regard, one of the basic objectives of this work is to examine and analyze the empirical literature on the impact of employee equality on performance based on earlier research done by the authors.

Keywords: *equal employment opportunities, recruitment and selection, HR managers, equal payment, performance.*

Introduction

Equality of all citizens when it comes to exercising their rights, regardless of gender, race, color, national and social origin, political and religious belief, property and social status, is a fundamental value that is guaranteed by the Constitution of each country. Besides the Constitution, equality is provided and regulated by other laws and international agreements which represent an integral part of the legal order of a state. However, Based on the changes that have occurred in the world in the past and present, which have resulted in an increase in competition among organizations of all shapes, sizes, and orientations. These organizations were forced to work to find the appropriate mechanisms to improve employee performance by focusing on the human element as the cornerstone for transforming assets from recession to vitality and competition, Equal opportunities within the mechanisms used to improve employee performance to achieve the organization's strategic objectives. In this regard, firms in developing nations must aim to foster an atmosphere that offers opportunity for all employees in the workplace and

* Assistant Professor, Department of Commerce, DAV P.G. COLLEGE, Varanasi,
Email: bandhalsatyarth@gmail.com

avoids or minimizes barriers and discrimination based on origin, gender, and other factors. They must also work to improve the capabilities and skills of their employees in order to improve the level of service provided by the organization. A number of decades of anti-discrimination laws have shown the value of enterprise-level effort to end direct and indirect discrimination, encourage diversity, and provide equitable access to opportunities for all employee groups. "Equal opportunity means the straightforward distinction between all members of the family in different fields, the nature of work in various fields, and equal opportunities in a society is one of the skills that help to achieve social justice and close the gap between all segments of society," says the dictionary. It has contacted international organizations and human rights groups to request that equal opportunity be included as one of the fundamental human rights.

Review of Literature:

Performance, according to Durga (2017), is the act of carrying out a job or achieving a goal. He continues, "Employee performance is how successfully an employee carries out the responsibilities of his or her work in order to produce positive outcomes."

Once the planning of human resources has been completed, the recruitment process should start which is defined as a process of creating a group of qualified candidates for the vacancies within the organizations. In both professional and non-professional areas, recruitment will include an attempt to locate a diverse applicant pool with the necessary qualifications and potential, and communicate to them the available employment opportunities (Raghavi & Gopinathan 2013).

"Employment equity is important and highly demanded in workplace for fair treatment of the employees by employers. Therefore, creating equality among employees is an ongoing process used by employers or managers to identify and remove all forms of barriers and injustices such as a procedures of an employment policies of an organization, employees' promotions as well as equal wage policies. According to their qualified and experience. (Grobler, 2015).

Ahmed's (2016) study on the impact of gender diversity on the research quality of higher education institutions in the United Kingdom" contends that, despite prior research showing significantly lower publishing productivity among female researchers, gender diversity may have a positive effect on institutional research quality because of potential synergistic effects.

It was discovered via the use of multiple panel regressions that gender diversity appears to have a detrimental effect on the caliber of research when other characteristics are not taken into account. This impact is eliminated when pertinent control factors, such as the size, focus, and maturity of the institution's faculty, are included. The effects of gender diversity were the same across all scientific areas, too.

Objectives:

1. To Know the Value of Equal Opportunity Provision within a Company.
2. How HR Departments Manage Equal Employment Opportunity?

Equal Employment Opportunity: A Conceptual Background

Equal Employment Opportunity refers to the equality of access to jobs, promotions, and other opportunities in corporations, associations and non-profit organizations.

The concept of equal employment opportunities is based on laws and regulations that exist within a country and which guarantee that no one is discriminated for any reason in the process of searching a job. It is particularly important considering the globalization and diversity of the workforce. Moreover, this concept has been developed as a result of the long-standing discrimination against employees in the past when women and men who have the same or similar job were paid differently, when people of a particular ethnicity could not go further with their career or could not reach a particular job position or they were treated incorrect and differently. Thus, after numerous movements and human rights protest, laws on equal opportunities, equal pay laws and laws on workers' rights started to be adopted. And that is exactly what the legal concept of equal employment opportunities consists of, according to which all people shall have equal treatment in all proceedings related to employment and labor relations. Moreover, this idea often plays a crucial role in all workplace and organizational operations as well as in the organization's policy. On the basis of efficiency, it has been convincingly argued that shifting accountability for attaining equality goals to organization’s is necessary since doing so connects environmental factors to organizational procedures.

Relationship between equal opportunities and employee performance:

Employees are often worried about the rising consequences of workplace injustice and its detrimental effects on job outcomes. According to a number of studies, treating employees unfairly when it comes to hiring,

performance reviews, selection, and remuneration has a detrimental effect. The goal of equal training opportunities is to develop new skills and enhance employee performance to meet company objectives. On the other hand, employees who have received training will be familiar with their work requirements, possess the abilities necessary to do their jobs successfully, and be able to use new technologies. On the other hand, employees who have received training will be familiar with their work requirements, possess the abilities necessary to do the job properly, and be able to use new technologies. Their level of motivation will therefore rise, which will help improve performance, the workplace, and management behavior. The organization's objectives will be easier to attain as a consequence of maximized performance. Performance is the foundation of competitiveness, and training for equality among employees in an organization is closely tied to performance. Every company wants to compete with its rivals, and the only way to achieve that is to raise staff performance levels, according to logic.

The Importance of the Provision of Equal Opportunities within an Organization:

1. Promotes Diversity:

A company's workforce is made up of people from a variety of origins, ethnicities, races, genders, and other categories. This workforce is referred to as diversified. Equal opportunity in the workplace is closely related to diversity.

This makes it possible for people to challenge the conventional thought patterns that are prevalent in the business environment. It lessens discrimination and fosters a welcoming workplace.

2. Right Developmental Opportunities:

Workers aim to grow and learn throughout their careers. They do not wish to halt their expansion. You must comprehend their demands in your role as a leader. Giving everyone a fair shot at work is one of the finest ways to promote growth.

3. Good Organizational Reputation:

Consumers are always searching for businesses with great brand reputations. You need an employee-centric work culture to establish that reputation. It aids in building a significant market presence. A solid reputation is developed over time. Giving people equal opportunity might hurt your brand in the modern world.

4. Elevated Employee Engagement:

For businesses, employee engagement is a top priority. Nevertheless, the majority of engagement-focused approaches are outmoded and ineffectual. Your efforts may not get as far as you'd want as a result. As a result, it's necessary to try new things sometimes. Equality of opportunity in the workplace is one such idea.

Results and interpretations:

1. Nationality discrimination:

Statement	No of respondents
In the job application, the candidate should state his/her nationality.	**20**
After completion of the selection process, the candidates are selected regardless of their nationality	**10**
The preferable nationality is listed in the job advert for many vacancies.	**10**
After completion of the selection process, the candidates are selected regardless of their nationality.	**10**

2. Gender and Sexual Orientation Discrimination

Statement	No of respondents
The companies determine the gender of the desired candidate in advance	**30**
The homosexuals are discriminated in the selection process.	**10**
After completion of the selection process, the candidates are selected regardless of their gender and sexual orientation.	**10**

3. Discrimination of people with disabilities

Statement	No of respondents
The company is adapted for circulation of people with disabilities	**30**
People with disabilities are not discriminated in the selection process	**20**

4. Discrimination when it comes to political affiliation

Statement	No of respondents
In the recruitment process, the candidates have applied regardless of their political affiliation.	20
After completion of the selection process, the best candidates are selected regardless of their political affiliation.	10
In the recruitment process, the candidates have applied regardless of their political affiliation.	10
After completion of the selection process, the best candidates are selected regardless of their political affiliation.	10

4. Age Discrimination

Statement	No of respondents
I did not get an interview invention many times due to the fact that my profile does not match the desired age of the employer.	20
Although I have all needed qualifications, my job application has been rejected due to the fact that a younger person matches this vacancy	20
The affirmative measurements from the Government for people older than 50 are used by my company	5
After completion of the selection process, the best candidates are selected regardless of their age	5

Conclusion:

By examining all of the research's findings, it can be said that HR managers in businesses typically believe they carry out their duties effectively and hire only the best employees. Whilst opinions vary among those who have gone through the recruiting and selection procedures, many feel that the notion has not been sufficiently upheld. It has been determined

that when it comes to nationality discrimination, HR managers in companies still struggle to choose the best applicant for the position.

Moreover, discrimination based on gender and sexual orientation exists. The applicants are chosen based on conventional mental models even if there are no legal barriers. Legislation on enabling the employment of persons with disabilities exists, however the businesses still do not provide enough fundamental working conditions for people with disabilities. The study comes to the conclusion that this idea has not been used as well as was anticipated. Yet, the findings show that there is still prejudice towards those with impairments. Several candidates frequently withhold their job applications for the competition issued by a public institution unless they are members of the relevant political party due to prejudice. In terms of candidate selection, neither HR managers nor applicants—both employed and unemployed—are certain that the best candidates are chosen without regard to political affiliation. The age of the applicants is the most recent factor for job discrimination that has been studied.

Recommendation:

The following recommendations are drawn from the conclusions presented:

- To ensure that every person, regardless of ethnicity, has access to equitable job opportunities.
- If there is no specific need for it and it has no bearing on the nature of the work, the gender of the ideal applicant should not be included in the job advertisements.
- It is necessary to prepare amendments to the Law on ethnic minorities in the institutions so as to provide equal employment opportunities for all citizens regardless of their ethnicity.
- The companies should provide accessible entrances and possibility of free movement in their premises as well as opportunities for adjustable communication for people with disabilities.
- The companies should ensure equal employment opportunities regardless of the candidates' age or to hire real professionals according to their expertise and not according to their age.
- The companies should arrange various seminars for their HR managers in this area in order to change the traditional mental models and to raise the awareness about equality in the recruitment and selection process as a path to greater success for the company.

References:

1. https://www.econstor.eu/bitstream/10419/146370/1/867877871.pdf
2. Tomei, Manuela. 2003. Discrimination and Equality at Work: A Review of the Concepts. International Labour Review 142 (4): 401–418
3. https://www.researchgate.net/publication/354696112_Equal_Opportunity Within the Workplace
4. https://www.ijsdr.org/papers/IJSDR2005104.pdf
5. Sekaran, U., & Bougie, R. (2016). Research methods for business: A skill building approach. John Wiley & Sons.
6. Grobler, P. A. (2015). Human resource management in South Africa. Cengage Learning EMEA.
7. Loriaux, Sylvie. 2008. Global Equality of Opportunity: A Proposal. *Journal of International Relations and Development* 11 (March): 1–28.
8. Noon, Mike. 2010. The Shackled Runner: Time to Rethink Positive Discrimination? *Work Employment & Society* 24 (4): 728–739.

❒

The Power of Education: Assessing the Role of Beti Bachao Beti Padhao on Female Education and Health Outcomes

Dr. Shruti Agrawal✶, Dr. Sonal kapoor✶✶

Abstract

"To call woman the weaker sex is a libel; it is man's injustice to woman. If by strength is meant brute strength, then, indeed, is woman less brute than man. If by strength is meant moral power, then woman is immeasurably man's superior. Has she not greater intuition, is she not more self-sacrificing, has she not greater powers of endurance, has she not greater courage? Without her, man could not be. If nonviolence is the law of our being, the future is with woman. Who can make a more effective appeal to the heart than woman?"[To the Women of India (Young India, Oct. 4, 1930)]"— Mahatma Gandhi

India is a patriarchal society where preference and power is given to men. The society is suffering with gender inequality and skewed sex. This creates hurdles for young girls in terms of survival and education, leading to multiple barriers and missed economic opportunities throughout their lives. The skewed sex ratio is due to both biased sexual preferences, as well as discrimination against girls after birth. In such a situation, the government would have to promote gender equality and adopt specific strategies for the healthy development of the girl child.

It is in this context, GOI started Beti Bachao- Beti Padhao campaign. Present study is an attempt to understand the impact of Beti Bachao-Beti Padhao (BBBP) scheme on female education and health outcomes. The research will aim to bring a social transformation by highlighting on the problems, challenges, constitutional and legal provisions of women.. The intervention of the scheme will be evaluated to study the impact of the scheme on women.

Introduction

The happiness of a Nation lies in the dignity of its daughters" The Indian social system is heterogeneous at various levels such as language, culture, ethnicity, religion, race, etc. Our economy is equipped with such a structure where men are given more freedom and liberty. This gradual increase of biased society has led to skewed child-sex ratio(CSR). The Census 2011 has shown a significant declining trend in CSR with 918 girls

✶ Assistant Professor, DAV PG College, Varanasi. Email: ss.agrawal2011@gmail.com

✶✶ Assistant Professor (Guest Faculty), DAV PG College, Varanasi, Email: sonal.03dec@gmail.com

per 1000 boys in the age group of (0-6) years. It is a matter of great concern as it reflects a gender biased society. In this context, Beti Bachao Beti Padhao (BBBP) scheme was launched by the Hon'ble Prime Minister Shri Narendra Modi on 22 January 2015 at Panipat Haryana to address the declining CSR and issues related with women empowerment. The Beti Bachao Beti Padhao (BBBP) scheme is a tri-ministerial effort of Ministry of Women and Child Development, Ministry of Health and Family Welfare and Ministry of Human Resource Development.

The key objectives of the scheme are to: (i) prevent gender-biased sex-selective elimination; (ii) ensure the survival and protection of the girl child; and (iii) promote education and participation of the girl child. The scheme was launched with an initial funding of 100 crore (US$14 million).

An educated woman can lead to improved health, nutrition and economic status of a household that constitute a micro unit of the economy. Lack of women education can be an impediment to the country's economic development. The present study has been planned with the objective to measure the effectiveness of "Beti Bachao Beti Padhao" among women focussing on education and health. The scheme mainly targets clusters in Uttar Pradesh, Haryana, Punjab, Bihar, Uttrakhand and Delhi.

Literature Review

AvniArora (2022) found that the lack of frequent meetings at the district and state levels lead the scheme loose the momentum.The district- and state-level requiring monitoring and evaluation mechanisms to have measurable outcomes indicative of the progress made on the objectives of the schemes. **TanishaGarg (2022)** found that the funds allocated towards this program should be diverted from the national level to the district level for effective intervention and progress in the education aspect and in the attitudes of people surrounding women empowerment. **Shiva Parmar, Amit Sharma (2020)** found that campaign contributed towards better social empowerment of women acknowledging the rights of girl child. **Jyoti Rani, Manju Dahiya and Beena Yadav (2019)** found that in Rewari district recorded after exposure for sub- components viz., general information, information about female feticide and abortion, awareness about benefits given under the scheme, provision of award. **Varsha Saini & Sheela Sangwan (2018)** The result indicated that the girls and ladies both were not aware of gender empowerment and scheme The further intervention program was implemented and evaluated that impact of the program was assessed

positively on girls and women. **R. Sunandamma, O.Kakade** (**2018)** covered Vijayapura District in Karnataka State covering all the five talukas of the district, period of Evaluation is 2015-2017. The different dimensions like sex selected elimination, protection and survival of girl child, education and participation, the existence of discriminatory practices and gender biases were covered under evaluation. **Rashmi R. Agnihotri, Mali Patil(2018)** analysed that this scheme is not a medicine curing a disease however it is a supportive plan. There is need to change the attitude and mindset (especially parents) towards the girl child. **Geeta (2018)** found that there is an increase in awareness among common people to save the lives of girl child by completely removing the female foeticide. **Kalosona Paul and Shrestha Saha (2017)** stated in their article that overall sex ratio in India has enlarged from the last census (2001) by seven points from 933 to 940, the situation is worse for the child sex ratio. The sex ratio in the 0-6 age group went down from 962 girls per 1000 boys in 1981, to 914 girls per 1000 boys in 2011. **Naveen Kumar (2017)** attempted to analyse geographically the child sex ratio of Haryana using census data 1971- 2011. Most districts had very low child sex ratio and included in Programme while some districts had comparatively better child sex ratio and were not included in programme. **Charan Kamal Walia (2017)** surveyed in rural and urban area among married women, and found loopholes in the implementation of the scheme and uncover the problems and troubles faced by the beneficiaries while availing the benefits. **Menezes (2016)** analysed to validate the campaign in contributing towards better social empowerment on women through education; the pre existing notions and lack of awareness amongst some groups still question the impact of girl education. **Savya Sanchi (2016)** found that the scheme depends upon a large number of stakeholders including civil society. Empowering Girl Child needs to be incorporated as one of the important agenda in political dialogue and policy discussion. **Leena (2016)** expressed views on health, education, safety, security and financial security. The government also showed concern for emerging issue emerging issues such as the internet to be a safer place for women, the redistribution of gender roles in unpaid care services. **Peacock and Levack (2008) and Campbell (2006)** observed that there is a gain in knowledge after exposure to intervention programme on gender empowerment and beti bachao beti padhao among ladies.

Objectives of the Proposed Study

The proposed study aims to investigate

1. The impact of Beti Bachao Beti Padhao scheme on female education.
2. To know the impact of the BBBP on health of women.
3. To examine whether the Beti Bachao Beti Padhao programme has helped girls and women in terms of education.
4. To know the improvement in living standard of women

Research Design: The basic single subject design will be used for Beti Bacaho Beti Padhao scheme. Single subject aims at systematic evaluation of practice through the use of scientific research techniques. Pre intervention and post intervention data will be collected through standard scale.

The proposed study aims to assess the impact of Beti Bachao Beti Padho scheme on women. While doing the research and analysing the outcomes of the project, efforts will be made for some innovative ideas to enhance the research in a positive way thereby making women empowered. To evaluate the impact of scheme on women, following factors may be considered for study purpose such as:

i) Increase in education level: The proposed study will make assessment on the percentage of women who have gained education after the implementation of the scheme.

ii) Employment generation: Analysing the impact of the scheme in terms of employment generation, whether the women are enriched with employment opportunities.

iii) Impact on health: Investigating the impact of scheme on health and to assess what measures were taken into consideration as health plays a very important role.

v) Perception of stakeholders: The viewpoints from Young and newly married couples, youth, private hospitals, doctors, diagnostic centres, media, etc. will provoke deeper insights of the strength and weakness of the scheme.

The basic objective of Beti Bachao Beti Padhao scheme is to prevent gender disparity and to enhance the role of women in the society. The proposed study will be very much relevant for the government as the outcomes of the study help in policy framework. Some of the policy initiatives which can be undertaken to improve the scheme may include

Effective utilization of funds. According to economist Mitali Nikore, "Only a small proportion of the funds, about 5 percent each, is allocated for education and health interventions". **Bilal Ahmad Bhat, GhulamUd Din Qurashi (2019)** examined information regarding problems, challenges, and constitutional and legal provisions of girls and point out here that there cannot be educated men without educated girls. Other important outcomes that may help in policy framework for women includes effective monitoring mechanisms, digital education measures, increasing scholarships for them, strengthening pathways for women entrepreneur, etc.

Gender equality is possible only when men and women are entrusted with equal rights, responsibilities, and opportunities. When a woman is empowered, the whole family is benefitted.

Globally, about half the number of women is still behind men in many places. Over the past few years, a large proportion of women have been subjected to discrimination and exploitation. Therefore the remedial measures in the form of the Beti Bachao Beti Padhao program were an hour-long necessity to prevent gender inequality in the nation. The flagship programme of the Indian government will be boon for the society as a whole. The awareness of the scheme will help the society in reducing child sex ratio, achieving girl child access to education, awareness about Sukanya Samriddhi Yojana and opening of accounts under the scheme , empowering women, reducing early child marriage, reducing dropouts of girls in secondary schools, reduction in female feoticide, focusing on health, etc.

Popular Schemes Under Save Girl Educate Girl Child

To achieve the overarching objectives of the scheme, various sub-schemes have been rolled out under the BBBP scheme. Some of the major schemes are given below-

- Sukanya Samridhi Yojana
- Ladli scheme
- Kanyashree Prakalpa Yojana
- Balika Samridhi Yojana
- Ladli Laxmi Yojana
- Dhanalakshmi Scheme

The benefits of this scheme are summarized as below :

- Improvement of the Nutrition status of girls by reducing number of underweight and anaemic girls under 5 years of age
- Ensuring girls' attendance and equal care monitored, using joint ICDS

NRHM Mother Child Protection Cards.

- Increasing the girl's enrolment in secondary education
- This scheme provides girl's toilet in every school.
- It aims to promote a protective environment for Girl Children through implementation of Protection of Children from Sexual Offences
- Train Elected Representatives/ Grassroots functionaries as Community Champions to mobilize communities to improve CSR & promote Girl's education.
- Reduction of Gender differentials and child mortality
- To improve the Sex Ratio at Birth (SRB)
- Evolving a sustained Social Mobilization and Communication Campaign to change societal norms, to create equal value for the girl child.
- Mobilizing and empowering frontline worker teams as catalysts for social change, in partnership with local community/women's/youth groups
- Developing capacity of Panchayati Raj Institutions/Urban local bodiesespecially women panchayat /urban local body members, to create community and peer support for making panchayats / urban wards girl child friendly.
- You would be able to open an account for your girl child which will reduce your financial burden and the girl will get the money for her small needs.
- The government provides the highest interest rate under the BBBP scheme for all small savers. With it, you can save more money for your daughter in the future.
- This account is exempted under the Act 1961 u / s 80C. The girl's account will be tax- free. This means that no money shall be deducted from the account in the form of tax.

Conclusion

Imagine a world that has to go without women. It is impossible to visualize such a world. It's quite ironic that we as a society have not yet been able to appreciate this truism and continue to disrespect women, discriminate against them and treat them as second class citizens who enjoy little say in their own wellbeing. Government, policy makers, intellectuals, social activists still have to emphasize on the importance of policies focused on

women's empowerment, emancipation and sustainability with very little impact. The problem perhaps lies in the basic flaw in our understanding of women hood and its centrality to the sustenance of our society as a whole.

The women of India are relatively disempowered and they enjoy somewhat lower status than that of men. In spite of so many efforts undertaken by government and NGOs the picture at present is not satisfactory. Mere access to education and employment can only help in the process of empowerment. These are the tools or the enabling factors through which the process gets speeded up. However,achievement towards this goal depends more on attitude. Unless the attitude towardsthe acceptance of unequal gender role by the society and even the women themselves changed women can not grab the opportunity provided to them through constitutional provision, law etc. Till then we can not say that women are empowered in India in its real sense.It's high time India becomes serious about this long standing problem

References

- Agrawal, S. P., & Aggarwal, J. C. (1992). *Women's education in India* (Vol. 13). Concept Publishing Company.
- Nair, N. (2010). Women's education in India: A situational analysis. *IMJ*, *1*(4).
- Kantamma, K. (1990). Status of women in relation to education, Employment and Marriage.
- Sharma, R. N., & Sharma, R. K. (2006). *Problems of education in India*. Atlantic Publishers & Dist.

Web Sources

- https://www.thebetterindia.com/199634/india-government-schemes-girl-child-women-eligibility-format-rules/
- https://indiaeducationdiary.in/initiatives-taken-by-the-government-to-promote-girls-and-women-across-the-country/
- https://www.iasgyan.in/daily-current-affairs/women-and-education

❒

Digital Entrepreneurship & Digital Business

Mitin Ahuja*

Abstract-

Digital Business or internet sales have shown a remarkable increment over the years. It is estimated that by the year 2026, out of total retail sales worldwide, approximately 24% of retail sales will be done over online platforms. With its growth rate of approximately 2% online sales and digital business are surely going to play a very crucial role in the development of any economy across the world.

This research explores the opportunities and challenges presented by digital entrepreneurship and e-commerce for India's international trade. India, is a large country in South Asia, has traditionally relied on traditional trade methods. However, with the advent of digital technologies and the growth of digital business, new avenues for international trade have emerged.

This Research examines the potential benefits of digital entrepreneurship and digital business for India, while also addressing the challenges that need to be overcome for successful integration into the global digital economy.

Keywords- *Digital Entrepreneurship, E-Commerce Wave, Traditional Trade Methods.*

In recent years, e-commerce has witnessed a remarkable surge in technological adoption, leading to a rapid growth in the industry. The innovation-driven approach has opened new avenues for e-business companies to offer premium services, while the strategic deployment of technology has improved customer satisfaction and product offerings. This increased competition has led to a heightened sense of customer awareness and expectations, placing pressure on e-commerce companies to continually innovate and deliver value to their customers.

All kind of businesses conducted by means of computer networks are covered under E-commerce. The advancement in information and technology reshaped the structure of e-commerce around the globe. The information technology has revolutionized various aspects of our life. Competition and the constant changes in technology and lifestyles have changed the face of e-business. With the opening of the Indian economy and current thrust of the Indian government towards privatization competition is going to be tough.

* Asst. Prof. Department of Commerce, DAV P.G. College, Varanasi (Affiliated from Banaras Hindu University, Varanasi).

Advancement in telecommunications and computer technologies in recent years has made computer networks an integral part of life. Today the number of companies which are facilitating transactions over web is increasing day by day. Online commerce provide multiple benefits to the consumers in form of availability of goods at their door step, lower cost, wider choice and also save time. People can buy goods with a click of mouse button without moving out of their house or office.

3. Meaning and Concept of E-Commerce

Technology is changing the landscape of entrepreneurship. Electronic Commerce has become the buzzword of present-day business. E Commerce is the process of doing business electronically or over internet to improve operating efficiencies which in turn will strengthen the value to be provided to the customers and thereby giving competitive advantage over competitors. It includes business-to-business, business to consumer and consumer to consumer transactions that involve the buying and selling of goods and services. If Entrepreneurship is innovation, e-commerce adds fuel to the fire.

E-Commerce is a modern technique that addresses the need of entrepreneurs. It cuts costs while increasing the speed of service delivery. While the ecommerce offers entrepreneurs an opportunity to establish a new business, entrepreneurs with an established business should also make efforts to increase their online presence .Online presence has the ability to positively impact marketing and sales effort. The entrepreneurs should embrace these channels to discover how the Internet can transform and grow their businesses. For example a local grocery vendor who may be predominately servicing its surrounding community, could expand its customer base across the city by establishing its own website.

4. Approaches of E-Commerce

Business-to-Business (B2B) E-Commerce: E-commerce between companies is defined as B2B e-commerce. B2B approach of e-commerce deals with relationships between and among businesses. It takes into account e-procurement, supply chain management, and also negotiating purchase transactions over the internet for the companies. The two main components of B2B e-commerce are e-frastructure and e-markets. E-frastructure component of B2B primarily consists of the logistic-transportation, warehousing and distribution, application service providers. E-markets are web sites where buyers and sellers interact with each other and conduct transactions. The examples of B2B examples are IBM, Hewlett

Packard (HP), Cisco and Dell. The B2B e commerce lowers transaction costs of conducting business and also helps to make savings in terms of time and effort.

Business-to-Consumer (B2C) E-Commerce: Business-to-consumer e-commerce is the second largest earliest form of e-commerce. It involves businesses introducing products and services to consumers via internet technologies. B2C e-commerce, involves customers gathering information; purchasing physical goods, information goods over an electronic network. Online retailing companies such as Flipkart.com, Snapdeal.com, and Firstcry.com are the examples of Business to Consumer E-Commerce. One of the important benefits of B2C e-commerce is that the entrepreneurs can increase its consumer base with minimum transactions costs. B2C e-commerce allows consumers to find the most competitive price for a product or service.

Consumer-to-Consumer (C2C) E-Commerce: Consumer-to-Consumer (C2C) approach of e-commerce is concerned with the use of e-commerce by individuals to trade and exchange information with other individuals. C2C of e-commerce is characterized by the growth of electronic market places and online auctions, particularly in vertical industries where firms/businesses can bid for what they want from among multiple suppliers.

Business-to-Government (B2G) E-Commerce: The online commerce between companies and the public sector is defined as Business-to-government (B2G) e-commerce. Business-to-Government e-commerce is concerned with the need for business to sell goods or services to governments or government agencies. Such activities include supplying products and services to the army, police force, hospitals and schools.

Mobile Commerce: M-commerce (mobile commerce) is the buying and selling of goods and services through wireless technology such as mobiles. M-commerce is a faster, more secure, method of choice for digital commerce transactions. M-commerce includes financial services, including mobile banking, brokerage services, Telecommunications, bill payment etc.

5. Advantages of E-Commerce: The following are the advantages of e-commerce:

1. E- Commerce has dissolved all the limitations of geography. With an ecommerce website, the whole world is entrepreneur's playground.
2. The E-entrepreneur can enhance its customer base by reaching new

customers through various search engines.

3. One of the most specific advantages of ecommerce is the lowered cost. E-commerce entrepreneur need not maintain huge inventories or expensive retail showrooms. Their marketing and sales team is quite less that of physical retail businesses. The part of the benefit of this lowered cost can be passed on to the customers in the form of discounts.
4. Customer has now easy access to shopping 24/7/365. Ecommerce websites can run all the time. It increases the number of orders a merchant receive. From the customer's point of view, an "always open" store is more convenient.
5. Consumers have a much wider choice available on the cyber market. On an ecommerce website, customers can click through intuitive navigation or use a search box to immediately narrow down their product search. Some websites remember customer preferences and shopping lists to facilitate repeat purchase.
6. Ecommerce facilitates comparison shopping. There are several online services that allow customers to browse multiple ecommerce merchants and find the best prices. Because of wide scale information dissemination consumer can compare products, features, prices and even look up reviews before they select what they want.
7. Consumer enjoys wider access to assistance and to advice from experts and peers. There are limitations to the amount of information that can be displayed in a physical store. Ecommerce websites make additional information easily available to customers.
8. Consumer also avails of fast services and delivery of products and services. They have the convenience of having their orders delivered right to their doorsteps.
9. E-commerce by minimising costs enables companies' especially small ones to make information on its product and services available to all potential customers spread worldwide.

6. Disadvantages of E-Commerce: Though e-commerce is widely accepted all around the world but still it has certain disadvantages which are discussed as under:

1. Return on investment is difficult to calculate.
2. Many firms have had trouble recruiting and retaining employees with the

technological design and business process skills needed to create an effective e commerce presence.

3. Difficulty of integrating existing databases and transaction processing software designed for traditional commerce into the software that enables e commerce.
4. Many businesses face cultural and legal obstacles in conducting e commerce.

7. Difference between Traditional Commerce and E-Commerce: Due to the advancement in information technology, many traditional small businesses are considering e-Commerce as an attractive and profitable sales channel. However, e-Commerce and traditional commerce are different from each other due to many reasons. Some of the reasons of difference are enumerated as below:

- **Direct Interaction with Customer:** Traditional commerce is often based around face to face interaction. The customer has a chance to ask questions to the seller and the sales staff can work with them to ensure a satisfactory transaction. Often it gives seller an opportunity for upselling or encourages the customer to buy a more expensive item or related items, and increase his business profits. On the other hand, in e-Commerce seller and buyer are not in direct relation. Therefore, it doesn't offer this benefit unless features such as related items or live chats are implemented.
- **Lower Costs:** In e-Commerce seller is not required to set up his physical store in good location for increasing his sales. Therefore he can avoid certain standing charges such as commercial space rent, electricity charges etc. Opening an online store can be done at a fraction of the price. This can boost small business owners to start their ventures who do not have the start up capital to rent prime retail space and staff to be able to sell their goods.
- **Reach:** With an online shopping you can do business from any part of the world, unlike traditional commerce where you are restricted to people who actually come to your shop. This also opens the door to many other forms of marketing that can be done entirely online, which often results in a much larger volume of sales and even foot traffic to the store. An online store has no capability limits, and you can have as many clients as your stock can serve.
- **Goods Return:** In a traditional commerce the customer purchases the

product in person from the business place, which has some benefits for both of them. The customer will be able to touch and check the items, to make sure they are suitable to him, which reduces the number of returned items or complaints due to an item not being as advertised on a catalogue or promotional leaflet. But if you start business online in the expectations of higher rate of return, many customers will just order and try the items at home, and won't hesitate to return them as they can do it by post without having direct interaction with seller.

- **Credit Card Fraud:** e-Commerce suffers from a major kind of electronic crime i.e. 'credit card fraud'. Credit card fraud is also termed as 'Identity Theft' in which a person may use the identity of other person for exercising fraud of deception. Therefore, the problem of credit card fraud is serious and occurring by stealing the cards and the accompanying information at the time of transaction delivery. While traditional commerce is totally secure, it's easy for seller to verify the identity of buyer by asking for photographic ID. However, banking sector is introducing new innovations against counterfeiting and fraud, which are highly sophisticated to beating these systems.

Selling online means learning new ways of dealing with customers, marketing your products and fulfilling your orders, but the benefits are great. You can keep your costs lower, reach a wider audience and do business 24/7, having time to focus on improving your products and services and your customer experience instead of being on the store floor waiting for clients. Some products sell better online than others: selling jewelry for cash online is much easier than trying to sell houses or cars. However, having an online store can increase the customers on traditional commerce as well, as people are now able to find you online and see what products you are offering.

8. Success Stories of Entrepreneurs using E-Commerce:

Snapdeal set a niche for itself in the sphere of e-commerce in India. In 2010, when Kunal Bahl and Rohit Bansal wanted to start their own business, they chose an offline couponing business and named it Money Saver. 15000 coupons were sold in three months and it was time to take the business to the next level. It was after they met investor Vani Kola that the venture really took off. The first meeting did not go well but after another round of discussion, Vani Kola's venture capital firm decided to invest in Snapdeal. Initially started as an offline business, Snapdeal went online in 2010. It was a bumpy ride in the first few months. Mistakes were made, but

lessons were learnt. It is this kind of hard work and diligent attempt to offer the best to the customers that gave Snapdeal its initial success.

However, the biggest decision of the founders came in November 2011. Inspired by the success of Alibaba, Rohit and Kunal wanted to create something on similar lines. The deals business was shut down and an online marketplace was opened instead.

It was a make or break decision. Snapdeal had a huge market share in the deals business at that time and starting something new was very risky and the move surprised the investors too. At that point of time, eBay was the only marketplace in India.

It was a decision that was not for the short term. When Rohit Bahl managed to gain the nod of board, the present form of Snapdeal took shape. The very fact that Snapdeal is valued at a billion dollars today is a testimony to the vision of its founders. Currently, more than 50,000 sellers sell around 5 million products on Snapdeal. The company's phenomenal growth in a short span has been a remarkable journey. The company began to concentrate on building scale and improving speed. When eBay invested in Snapdeal, they brought immense experience to the table.

Snapdeal is one of the fastest growing e-commerce companies in India today with the largest online market place. In just two years, the company went from scrapping their group coupon business and starting an online marketplace to become a billion dollar company. Its year on year growth is almost 600%.The average age of the workforce at Snapdeal is 25. Their values – Innovation, Change, Openness, Honesty and Ownership drive them to press for greater success.

The company's growth had been phenomenal but it is their continued effort to bring the best to the market and their zeal to succeed as the best B2C (Business to customer) marketplace is what sets them apart. Great ideas might be important for a business, but it is the confident implementation of those ideas and the right effort which are more important. It is action and not mere thought that gives results.

A quick look into any success story shows a path breaking idea at the heart of the tale. Flipkart is no exception. It is not the idea itself but the conviction to convert ideas into action and action into results is what defines a true success story. Measured by that yardstick, Flipkart has been a hugely successful. Back in 2007, when Flipkart was launched, Indian e-commerce

industry was taking its beginner steps. Sachin Bansal and Binny Bansal, who were working for Amazon had an idea to start an e-commerce company in India.

One can easily call that a risky move. In a country where people have various tastes and preferences, an ecommerce start-up will always have enormous challenges. In India, people often prefer to shop in person and buy goods they see and like. Today, thanks to Flipkart, e-commerce has become one of the fastest growing sectors in India.

Flipkart began selling books to begin with. It soon expanded and began offering a wide variety of goods. Innovating right from the start, Flipkart has been home to few of the striking features of Indian e-commerce. Flipkart was the first to implement the popular 'Cash On Delivery' facility, which every online shopping website in India offers as an option today.

In the first few years of its existence, Flipkart raised funds through venture capital funding. As the company grew in stature, more funding arrived. Flipkart repaid the investors' faith with terrific performances year after year. In the financial year 2008-09, Flipkart had made sales to the tune of 40 million Indian rupees. This soon increased to 200 million Indian rupees the following year. Flipkart targets to hit the one billion mark by 2015. Going by their ever increasing popularity, it does not seem like a farfetched thought.

Back at the time when Flipkart was launched, any e-commerce company faced two major difficulties. One was the problem of online payment gateways. Not many people preferred online payment and the gateways were not easy to set up. Flipkart tackled this problem by introducing cash on delivery and payment by card on delivery in addition to others.

The second problem was the entire supply chain system. Delivering goods on time is one of the most important factor that determines the success of an ecommerce company. Flipkart addressed this issue by launching their own supply chain management system to deliver orders in a timely fashion.

Flipkart's journey from a small book e-retailer to India's largest e-commerce platform inspires a generation of start-ups.

Source: http://successstory.com/companies/flipkart

9. **Summary**: E-Commerce is a modern technique that addresses the need of entrepreneurs. It cuts costs while increasing the speed of service delivery. While the ecommerce offers entrepreneurs an opportunity to establish a new business, entrepreneurs with an established business

should also make efforts to increase their online presence .Online presence has the ability to positively impact marketing and sales effort. The entrepreneurs should embrace these channels to discover how the Internet can transform and grow their businesses. For example a local grocery vendor who may be predominately servicing its surrounding community, could expand its customer base across the city by establishing its own website. All kind of businesses conducted by means of computer networks are covered under E-commerce. The advancement in information and technology reshaped the structure of e-commerce around the globe. The information technology has revolutionized various aspects of our life. Competition and the constant changes in technology and lifestyles have changed the face of e-Commerce.

Suggested Readings

1. Business on the Net: What's and How's of E-Commerce, Agarwala, K.N. and Deeksha Ararwala Macmillan, New-Delhi.
2. Business on the Net: bridge to the online Storefront, Agarwala, K.N and Deeksha Agarwala: Macmillan, New-Delhi.
3. Mastering the internet, Cady, Glcc Harrab and Mcgregor Pat, BPB Publication, New-Delhi.
4. Electronic Commerce-A Manager's Guide to E-Business Diwan, Prag and Sunil Sharma, Vanity Books International, Delhi.
5. On line Marketing I land Book, Janal, D.S, VNR.
6. Frontiers of Electronic Commerce, KALAKOTA Rav: and Whinston Andrew B, Addison Wesley.

❐

The role of Artificial Intelligence in Investment Management: Emerging Trends and Future Prospects

Dr. Priyanka Wahal*

Abstract

Artificial Intelligence (AI) has emerged as a transformative force in investment management, significantly altering how investment strategies are developed and executed. This paper explores the current applications of AI in investment management, highlighting its impact on algorithmic trading, portfolio management, risk assessment, and sentiment analysis. By examining recent advancements in AI technologies such as machine learning, natural language processing, and robotic process automation, the study provides insights into how these innovations enhance decision-making, operational efficiency, and risk management. Additionally, the paper addresses potential future developments in AI, including advancements in quantum computing and the integration with blockchain technology, while also discussing the associated challenges, such as data privacy, algorithmic bias, and regulatory concerns. The findings offer valuable implications for investors, financial institutions, and policymakers, emphasizing the need for continued investment in AI capabilities and addressing ethical and regulatory considerations.

Keywords: *Artificial Intelligence, Investment Management, Machine Learning, Algorithmic Trading, Risk Assessment, Sentiment Analysis*

1. Introduction

1.1 Background

Investment management plays a crucial role in the financial markets by optimizing investment portfolios, managing risk, and achieving financial goals for clients. Traditionally, investment decisions have been driven by human expertise, market analysis, and historical data. However, the advent of Artificial Intelligence (AI) has introduced a paradigm shift in how investment management operates.

Artificial Intelligence, encompassing technologies such as machine learning, natural language processing, and robotics, is revolutionizing various sectors, including finance. AI's ability to analyze vast amounts of

* Assistant Professor, Department of Commerce, DAV P. G. College, Varanasi, (U.P.), Email- priyanka3027@gmail.com

data, recognize patterns, and make predictive decisions is transforming investment strategies and decision-making processes. By leveraging AI, investment managers can enhance their analytical capabilities, improve predictive accuracy, and optimize portfolio performance.

1.2 Objectives

The primary objectives of this paper are to

1. **Analyze Current Trends:** Examine how AI is currently utilized in investment management, including specific applications and technologies.
2. **Identify Emerging Technologies:** Explore new advancements in AI that are shaping the future of investment management.
3. **Discuss Future Directions:** Predict future developments in AI within the investment sector and assess their potential impact.
4. **Address Challenges:** Identify and discuss the challenges and risks associated with the integration of AI in investment management.

1.3 Research Questions

To guide the investigation, this paper seeks to answer the following research questions:

1. How is AI currently used in investment management?
2. What are the emerging trends and technologies in AI for investment management?

What are the potential future developments and challenges in AI for investment management?

1.1 Significance of the Study

Understanding the role of AI in investment management is essential for financial professionals, investors, and policymakers. By examining current trends and future directions, this study aims to provide valuable insights into how AI can enhance investment practices and address potential challenges. The findings will offer a comprehensive overview of AI's impact on investment management, helping stakeholders make informed decisions and adapt to technological advancements.

2. Current Applications of AI in Investment Management

Artificial Intelligence (AI) has significantly transformed investment management, offering a range of applications that enhance decision-making, optimize performance, and manage risk. This section explores the key areas where AI is currently applied in investment management.

2.1 Algorithmic Trading and High-Frequency Trading Algorithmic Trading

Algorithmic trading involves using AI algorithms to execute trades based on pre-defined criteria and strategies. These algorithms analyze market data, execute trades at high speeds, and can adjust strategies in real-time. Key benefits include:

- **Speed and Efficiency:** AI-driven algorithms can process vast amounts of data and execute trades in milliseconds, which is crucial for capitalizing on market opportunities.
- **Minimized Human Error**: Algorithms operate based on programmed rules, reducing the risk of human error and emotional bias.
- **Back testing and Optimization:** AI algorithms can be back tested using historical data to optimize trading strategies before implementation.

High-Frequency Trading (HFT)

HFT involves executing a large number of orders at extremely high speeds. AI enhances HFT by:

- Market Making: AI algorithms provide liquidity by continuously quoting buy and sell prices.
- Arbitrage: Identifying and exploiting price discrepancies across different markets or financial instruments.

1.4 Portfolio Management and Asset Allocation Robo-Advisors

Robo-advisors are AI-driven platforms that provide automated, algorithm-based portfolio management. They offer several advantages:

- **Personalization:** AI algorithms tailor investment portfolios based on individual risk tolerance, investment goals, and financial situation.
- **Cost Efficiency:** Lower management fees compared to traditional financial advisors.
- **Continuous Monitoring:** Robo-advisors continuously monitor and rebalance portfolios to align with changing market conditions and client preferences.

AI-Driven Asset Allocation

AI enhances asset allocation by

- **Predictive Analytics**: AI models forecast asset returns and market trends, enabling more informed allocation decisions.
- **Risk Management:** AI assesses the risk profile of different asset classes and suggests adjustments to minimize risk and maximize returns.

1.5 Risk Assessment and Fraud Detection Risk Assessment

AI improves risk assessment through

- **Predictive Modeling:** AI algorithms predict potential risks and market downturns by analyzing historical data, market trends, and economic indicators.
- **Real-Time Risk Monitoring:** Continuous analysis of market conditions and portfolio performance to identify and mitigate risks promptly.

Fraud Detection

AI enhances fraud detection by

- **Anomaly Detection:** Identifying unusual patterns or behaviors that may indicate fraudulent activities.
- **Machine Learning:** Training algorithms to recognize and respond to evolving fraud tactics based on historical data and new patterns.

1.6 Sentiment Analysis and Market Prediction Sentiment Analysis

AI employs Natural Language Processing (NLP) to analyze financial news, social media, and other textual data to gauge market sentiment. Applications include

- Market Sentiment Indicators: AI assesses sentiment to predict market movements and investment opportunities.

Event Impact Analysis: Evaluating how news and events affect stock prices and market behavior.

Market Prediction

AI models predict market trends and price movements by

- Data Integration: Combining diverse data sources, including historical prices, trading volumes, and macroeconomic indicators.
- Pattern Recognition: Identifying patterns and correlations that may indicate future market behavior.

1.7 Case Studies

Case Study 1: BlackRock's Aladdin

BlackRock's Aladdin platform integrates AI for risk management, portfolio management, and trading. It uses machine learning to provide insights into portfolio risks and optimize asset allocation.

Case Study 2: JPMorgan's LOXM

JPMorgan's LOXM uses AI for high-frequency trading and execution. It leverages AI algorithms to optimize trading strategies and enhance liquidity.

Certainly! Here's a detailed draft for the Potential Future

Developments and Challenges in

1. Potential Future Developments and Challenges in AI for Investment Management

As AI continues to evolve, its integration into investment management is expected to advance significantly, offering new opportunities and facing emerging challenges. This section explores the potential future developments and the challenges that could impact AI's role in investment management.

4.1 Advancements in AI Technologies

1. Enhanced Machine Learning Algorithms

Future developments in machine learning algorithms will likely focus on improving predictive accuracy and efficiency. Advancements may include

- Deep Learning: Enhanced deep learning techniques for more accurate market predictions and better understanding of complex financial patterns.
- Reinforcement Learning: Algorithms that learn and adapt strategies based on continuous feedback and performance.

2. Advanced Natural Language Processing (NLP)

NLP will become more sophisticated, enabling better interpretation of financial news, reports, and social media. Future advancements might include:

- **Contextual Understanding:** Improved ability to understand context and sentiment in textual data, leading to more accurate market sentiment analysis.
- **Multilingual Capabilities:** Enhanced NLP models that can analyze financial information in multiple languages.

3. Integration with Blockchain Technology

AI and blockchain technology could converge to offer new solutions in investment management:

- Smart Contracts: AI-powered smart contracts could automate and optimize trading agreements and compliance processes.
- Data Security: Blockchain could enhance data security and transparency in AI- driven investment processes.

4. Quantum Computing

Quantum computing holds the potential to revolutionize AI in investment management by:

- Complex Problem Solving: Solving complex optimization problems and performing high-speed data analysis that is currently beyond classical computing capabilities.
- Enhanced Simulations: Running advanced simulations to better predict market behaviors and investment outcomes.

3.2 Integration of AI with Other Technologies

1. Big Data Analytics

The integration of AI with big data analytics will enhance the ability to process and analyze large volumes of diverse data:

- **Real-Time Insights**: AI systems will leverage big data to provide real-time insights and actionable intelligence for investment decisions.
- **Comprehensive Analysis:** Combining structured and unstructured data for a more holistic view of market trends and investment opportunities.

2. Internet of Things (IoT)

AI and IoT can work together to provide new data sources and insights

- **Market Trends:** IoT devices can provide real-time data on economic indicators, consumer behavior, and other factors affecting markets.
- **Operational Efficiency:** AI can use IoT data to enhance operational efficiency and optimize investment processes.

3.3 Impact on Investment Decision-Making

1. Enhanced Decision Support Systems

AI will improve decision support systems by

- **Advanced Predictive Models:** Providing more accurate and timely predictions of market trends and investment risks.
- **Scenario Analysis:** Offering sophisticated scenario analysis and simulations to guide investment strategies.

2. Increased Automation

The automation of investment decision-making processes will increase, leading to

- **Reduced Human Intervention**: Less reliance on human judgment and increased consistency in investment decisions.
- **Dynamic Adjustments:** Automated systems that dynamically adjust portfolios based on real-time data and market conditions.

3.4 Challenges and Risks

1. Data Privacy and Security

AI systems handle sensitive financial data, raising concerns about:

- **Data Breaches**: Risks associated with unauthorized access to and misuse of sensitive financial information.
- **Compliance:** Ensuring AI systems comply with data protection regulations and industry standards.

2. Algorithmic Bias and Transparency

AI algorithms can exhibit biases and lack transparency

- **Bias in Decision-Making:** AI models may perpetuate or exacerbate existing biases in investment decisions.
- **Explainability:** Challenges in understanding and explaining AI-driven decisions to stakeholders and regulators.

3. Regulatory and Ethical Issues

The evolving regulatory landscape and ethical considerations include:

- **Regulatory Compliance:** Navigating complex regulations and ensuring AI systems adhere to legal and ethical standards.
- **Ethical Use:** Addressing ethical concerns related to the use of AI in investment management, including fairness and accountability.

4. Dependence on Technology

Increasing reliance on AI can lead to potential risks:

- System Failures: Vulnerabilities and failures in AI systems that could impact investment performance and stability.
- Overreliance: Risks associated with overreliance on AI-driven decisions without adequate human oversight.

3.5 Regulatory and Ethical Considerations

1. Evolving Regulations

As AI in investment management evolves, regulatory frameworks will need to adapt:

- **New Regulations:** Development of new regulations to address AI-specific challenges and ensure responsible use.
- **Global Standards**: Harmonization of global standards for AI in finance to facilitate cross-border investments and compliance.

2. Ethical Implications

Ethical considerations will be critical:

- Responsibility: Defining the responsibility and accountability of AI developers and users in investment management.

- Fairness: Ensuring that AI systems are used in a way that promotes fairness and does not discriminate against certain groups or individuals.

4. Conclusion

4.1 Summary of Findings

Artificial Intelligence (AI) has profoundly transformed investment management, enhancing the efficiency and effectiveness of various processes. This paper has explored the current applications of AI, highlighting its impact on algorithmic trading, portfolio management, risk assessment, and sentiment analysis. AI technologies, such as machine learning, natural language processing, and robotic process automation, have introduced significant improvements in decision-making, operational efficiency, and risk management.

The analysis of current trends reveals that AI is driving innovation in investment management by enabling more accurate market predictions, optimizing asset allocation, and automating routine tasks. Notable applications include robo-advisors, AI-driven trading algorithms, and advanced fraud detection systems. Case studies from industry leaders like BlackRock and JPMorgan illustrate the practical benefits of AI integration in enhancing investment strategies and operational performance.

4.2 Implications for Investment Management

The integration of AI in investment management has several important implications

- **Enhanced Decision-Making:** AI provides investment managers with advanced tools for making more informed and data-driven decisions. Improved predictive models and real-time insights enable more accurate forecasts and better portfolio management.
- **Operational Efficiency:** Automation of trading and portfolio management tasks reduces operational costs and minimizes human error. AI-driven systems streamline processes and enhance the overall efficiency of investment operations.
- **Risk Management:** AI enhances risk assessment and management by identifying potential risks and anomalies more effectively. Predictive analytics and real-time monitoring contribute to more robust risk mitigation strategies.
- **Customization and Personalization:** AI allows for greater personalization of investment strategies, catering to individual client

needs and preferences. Robo-advisors and AI-driven asset allocation models offer tailored solutions based on client profiles.

4.1 Recommendations

Based on the findings, several recommendations can be made for investors, financial institutions, and policymakers:

- **Invest in AI Capabilities:** Financial institutions should continue to invest in AI technologies and develop advanced systems to stay competitive. Emphasizing research and development in AI will drive innovation and improve investment management practices.
- **Address Ethical and Regulatory Challenges**: It is crucial to address ethical concerns and comply with regulatory requirements related to AI. Developing clear guidelines and standards for AI use in investment management will ensure responsible and transparent practices.
- **Enhance Transparency and Explainability**: Efforts should be made to improve the transparency and explainability of AI-driven decisions. Providing clear explanations of AI models and their outputs will build trust among stakeholders and facilitate better decision-making.

Monitor and Adapt to Emerging Trends: Staying informed about emerging trends and advancements in AI will enable financial institutions to adapt and leverage new technologies effectively. Continuous monitoring of technological developments will help anticipate future changes and opportunities.

4.2 Future Outlook

Looking ahead, AI is poised to play an increasingly central role in investment management. Future developments in AI technologies, such as quantum computing and enhanced machine learning algorithms, will further revolutionize the industry. However, addressing challenges related to data privacy, algorithmic bias, and regulatory compliance will be essential for ensuring the successful and ethical integration of AI in investment management.

As AI continues to evolve, investment management professionals must remain proactive in adapting to technological advancements and navigating the associated challenges. By embracing innovation and addressing potential risks, the industry can harness the full potential of AI to drive growth, efficiency, and value creation in investment management.

References

- Ruiz-Real, J. L., Uribe-Toril, J., Torres, J. A., & De Pablo, J. (2021). Artificial intelligence in business and economics research: Trends and future. *Journal of Business Economics and Management*, *22*(1), 98-117.
- Kingsley, P. K. M. The Role of Artificial Intelligence in Optimizing Investment Portfolios and Predicting Market Trends.
- Dwivedi, Y. K., Sharma, A., Rana, N. P., Giannakis, M., Goel, P., & Dutot, V. (2023). Evolution of artificial intelligence research in Technological Forecasting and Social Change: Research topics, trends, and future directions. *Technological Forecasting and Social Change*, *192*, 122579.
- Cavalcante, R. C., Brasileiro, R. C., Souza, V. L., Nobrega, J. P., & Oliveira, A. L. (2016). Computational intelligence and financial markets: A survey and future directions. *Expert Systems with Applications*, *55*, 194-211.
- Gill, S. S., Xu, M., Ottaviani, C., Patros, P., Bahsoon, R., Shaghaghi, A., ... & Uhlig, S. (2022). AI for next generation computing: Emerging trends and future directions. *Internet of Things*, *19*, 100514.
- Bellagarda, J. S., & Abu-Mahfouz, A. M. (2022). An updated survey on the convergence of distributed ledger technology and artificial intelligence: Current state, major challenges and future direction. *IEEE Access*, *10*, 50774-50793.
- Hua, X., Huang, Y., & Zheng, Y. (2019). Current practices, new insights, and emerging trends of financial technologies. *Industrial Management & Data Systems*, *119*(7), 1401-1410.
- Verma, S., Sharma, R., Deb, S., & Maitra, D. (2021). Artificial intelligence in marketing: Systematic review and future research direction. *International Journal of Information Management Data Insights*, *1*(1), 100002.
- Borges, A. F., Laurindo, F. J., Spínola, M. M., Gonçalves, R. F., & Mattos, C. A. (2021). The strategic use of artificial intelligence in the digital era: Systematic literature review and future research directions. *International journal of information management*, *57*, 102225.
- Pan, Y., & Zhang, L. (2021). Roles of artificial intelligence in construction engineering and management: A critical review and future trends. *Automation in Construction*, *122*, 103517.
- Loureiro, S. M. C., Guerreiro, J., & Tussyadiah, I. (2021). Artificial intelligence in business: State of the art and future research agenda. *Journal of business research*, *129*, 911-926.
- Miziołek, T. (2021). Employing artificial intelligence in investment management.

  In *The Digitalization of Financial Markets* (pp. 161-174). Routledge.
- Koroteev, D., & Tekic, Z. (2021). Artificial intelligence in oil and gas upstream: Trends, challenges, and scenarios for the future. *Energy and AI*, *3*, 100041.

❒

Analysing the Philosophy of Integral Humanism by Pandit Deendayal Upadhyaya Ji

Dr. Gaurav Kumar Mishra*

There is no hesitation in the fact that the great land of India has given birth to many great men whose lives have always been dedicated to the service of the country, society and the nation. **Pandit Deendayal Upadhyaya Ji** is one such link in the chain of these many patriots. Pt. Deendayal Upadhyaya ji was born on Monday, September 25, 1916, (Ashwin Krishna Trayodashi, Samvat 1973) in the sacred region of Brij in Mathura District of Uttar Pradesh. He lost his mother, father and his brother at early stage of his life. It is true that Pt Deendayal Upadhyaya is an indomitable, brave, talented and wise Yogi. The relevance of his thoughts is absolutely relevant in today's context. Pt. Deendayal Upadhyaya was a great patriot, skilled organizer, original thinker, farsighted politician and enlightened literatur. The thoughts suggested by him are among the most relevant thoughts in India today. Pt Deendayal Upadhyaya has a unique stature among those great personalities who have shaped the Indian intellegensia to a large extent. He was standing on the verge of the past and the future. He used to say that we have to take inspiration from the glorious past and build a brighter future. We have become future-oriented, not past-oriented. He had the amazing power to build future eras. To solve many problems of India, he has introduced his extraordinary skills and perseverance by bringing out the ideology called **Integral Humanism**, which without a doubt is in accordance with the soul of India.

Upadhyaya ji considered socialism, communism, capitalism and other self centered ideologies against Indian nature because their origin is not Indian rather it is based on the West. Hence, he called these ideas as a one-sided concept. One-sided view cannot make man completely happy. He considered man to be a combination of body, mind, intellect and soul, therefore, satisfaction of all these four is essential because without the satisfaction of all these four, man cannot be fully developed and captivated. Western thinkers, like **Karl Marx** consider the Humanism as proletarian

* Guest Faculty, Department of Political Science, D.A.V. Post Graduate College, (BHU) Varanasi. 221001

class humanism. His humanism wants to establish a classless society. Marx has considered Human as an economical being. However some western thinkers consider the satisfaction of mental desire as an essential part of happiness. Another German philosopher **Friedrich Nietzsche** is an extreme humanist thinker. He says that the goal of every human is the primitive human his modern human is an intellectual being endowed with aggressive powers. **Jean-Paul Sartre, a French philosopher** is also counted among humanist philosophers, but **Chhatra** presents a humanist interpretation of existentialism in his essay called existentialism and humanism. He says that existentialism is not hopeless but is still linked to hopeful philosophy; it inspires man to work. But **Upadhyaya** ji connects intellectual and spiritual happiness with these goals for a completely happy life.

With the assistance of integral humanism, Upadhyaya ji aimed to create a global state where individuals would devote their own lives to advancing the welfare of all people and their cultures would continue to evolve in accordance with their inherent characteristics. This is only feasible when an individual recognizes his own interests in the benefit of all. Indian wisdom thus requests access to the soul's depths. Ancient Indian politicians, according to Deendayal ji, have been working for the happiness and well-being of everyone because of their closeness and sense of unity.

Pt. Deendayal Upadhyaya stands as one of the most prominent political thinkers in modern India, known for his practical approach to pressing societal issues rather than mere theoretical discourse. Following **Mahatma Gandhi**, he is arguably the only contemporary Indian philosopher who has drawn extensively from the rich heritage of Indian culture and knowledge. Similar to Gandhi, Upadhyaya embraced concepts from the Sanatan tradition, dedicating his life to the upliftment of the masses. His philosophy of Integral Humanism distinguishes him as an unprecedented thinker, possessing a profound understanding of both capitalism and communism. Integral Humanism fundamentally posits a harmonious relationship between the individual, society, and the universe, asserting that each nation possesses its unique culture and central societal concept, referred to as **Chiti.** Furthermore, every society exhibits distinct characteristics, identified as **Virat**, and each individual operates under a set of unique principles and diverse activities. The integration of these elements is central to his vision of Integral Humanism.

He asserts that the pursuit of peace and pleasure should be rooted in

Satya (truth) and **Purusharth** (engaging in action without attachment to the outcomes). This perspective stands in contrast to mere physical peace and pleasure. Integral Humanism does not reject Kama either. He argues that suppressing natural desires can lead to perversion. For instance, if an unhealthy individual consumes food meant for a healthy person, it disrupts the natural order, potentially leading to further illness. Additionally, art forms such as music, dance, and painting contribute positively to civilization. Rather than opposing modernity, it should be harmonized with existing traditions. The passage of time is irreversible, and not all ancient practices can be deemed desirable today. Therefore, modernity should be embraced; however, discarding all traditions may result in an influx of foreign customs. It is essential to safeguard our culture while revitalizing it to ensure it remains dynamic and relevant. While Western Science holds significance across time and space, we should accept it judiciously, without blindly adopting Western lifestyles and values.

Pt. Deendayal Upadhyaya's Integral Humanism represents a comprehensive ideology aimed at the holistic development of both individuals and society. He posited that alongside material advancement, moral and spiritual growth must also be prioritized. Consequently, Indian culture and ethical principles advocate for the pursuit of the four purusharthas: **Dharma, Artha** (wealth), **Kama** (desire), and **Moksha** (liberation or salvation). Individuals serve as the fundamental building blocks of society, thus aligning the objectives of society with those of the individual. The state is responsible for facilitating and safeguarding Dharma, Artha, and Kama, while the individual must strive to attain Moksha through personal endeavor. It is essential to recognize that genuine happiness is achieved when wealth (Artha) is acquired and utilized to fulfill desires (Kama) in accordance with the principles of Dharma. Society establishes various organizations to facilitate the realization of these four goals (Purusharthas). An individual's actions will only contribute positively to the common good when he recognizes the interconnectedness of himself and society, extending his concern beyond personal and familial interests to encompass the global community. Furthermore, he transcends this awareness by embracing all of nature and its creator, infusing divinity into all his actions. Pt. Deendayal Upadhyaya advocated for this philosophy of balanced development for both humanity and society.

The principle of **'Integral Humanism'** is basically the essence of

Indian culture, thought and philosophy. When the whole world was embroiled in the debate on the good and bad of capitalism and communism. Pandit Deendayal intervened and gave a proper concept of integral humanism, different from these two extreme ideologies. Capitalism considered man as an economic unit and considered his relations with society nothing more than a contract; communism considered man as merely a political and personnel unit. Marx, the founder of communism, saw human society as a fragmented, interconnected crowd, in which one class applies selfish rules and practices to establish its supremacy. In socialism too, the person was considered one-sided. Basically, all the ideologies of the West are concentric. Although the person is at the core of all of them, but a little beyond him are the family, community and state, which, according to Western thinkers, are different from each other.

Beyond these, in Integral Humanism, the idea is to move from individual to family, from family to society, from society to nation and then humanity and the entire living world. **'Integral Humanism'** sees the inherent, mutually complementary relationship in all these units. Just as Indian thought sees the universe and the whole in a holistic form, Pandit Deendayal saw man, society, nature and their relationship in a holistic form. In 'Integral Human Philosophy', man was considered to be the combined form of body, mind, intellect and soul. This holisticness of man makes him suitable and useful for the society. The idea of motivating the human soul towards salvation in the form of symbols of Dharma, Artha and Kama, propounded by Indian thought, is included in 'Integral Humanism'. Unity is required in these four elements that form the whole human, because this unity can inspire man towards hard work and make him an entrepreneur, due to which the welfare of the society is possible.

The concept of solidarity between the people and their land, as articulated by Deen Dayal, is encapsulated in the idea of **Ekjan,** which translates to one people, one nation. He perceives Ekjan as a dynamic entity, evolving over time and deeply rooted in a continuous tradition that spans generations. For him, Ekjan represents the essence of the populace, shaping the collective consciousness of those inhabiting a particular territory. This unified consciousness, reflecting the psycho-spiritual essence of the people in harmony, is referred to as **'Chiti.'** The core principles and values that arise from this Chiti, or collective consciousness, are essential in defining and preserving the identity of the nation. As long as this collective consciousness

persists, the nation remains vibrant and resilient. When the principles that form the Chiti are adhered to and respected, the nation gains strength and stability, becoming lively and radiant. Deen Dayal Upadhyaya asserts that Chiti generates a force and energy known as **Virat,** which safeguards the nation from distortions and misrepresentations, ultimately fostering national rejuvenation. He believes that only when Chiti and Virat are activated can the nation and its citizens truly advance.

In the end we can say that **Integral Humanism** articulated by **Pt Deendayal Upadhyay** represents a holistic socio-economic and political framework that emphasizes the balanced development of all magnitude of human life, encompassing the material, intellectual, spiritual, and physical aspects. It advocates for decentralization, self-reliance **(Swadeshi),** and the principle of trusteeship **(Rashtriya Dharma),** which aims to utilize resources for the collective benefit of society. Grounded in India's rich spiritual and cultural heritage, integral humanism aspires to harmonize social responsibilities along with individual aspirations. Its core tenets include a comprehensive approach, a spiritual basis rooted in ethical and moral values, social unity, Antyodaya, the preservation of moral standards and dharma, and a commitment to cultural nationalism. Upadhyay's perspectives on welfare and social organization were informed by his Integral Humanism theory, which offered a unique stance distinct from the prevailing capitalist and socialist paradigms. He critiqued capitalism for its tendency to prioritize individual wealth at the expense of ethical values and social unity, leading to exploitation, economic disparity, and neglect of community welfare. Furthermore, he condemned socialism for suppressing human initiative, creativity, and local self-governance through its centralized planning and state dominance over economic endeavors. Pt. Deendayal Upadhyaya's Integral Humanism, which emphasizes the harmonious coexistence of people and their environment, is the cornerstone of mankind. It acknowledges the material and spiritual aspects and strives for all living forms to coexist and rely on one another.

References:

- Upadhyaya Deendayal, Integral Humanism: An Analysis of Some Basic Elements, Prabhat Prakashan, January 2016, New Delhi.
- Parmila, Singh J. Integral humanism philosophy of Pandit Deendayal Upadhyaya. International Journal of Multidisciplinary Trends. 2021, Pg- 152-154.
- Sharma Mahesh Chandra, Deendayal Upadhyaya: Kritatva Evam Vichar,

(Hindi Edition) Prabhat Prakashan, 2018, New Delhi.

- Jaffrelot Christopher, Hindu Nationalism- A Reader. Princeton University Press, New Jersey, USA, 2007.
- Deen Dayal Upadhyaya, Integral Humanism, Lecture III in Sanjeev Kumar Sharma (ed.), Integral Humanism: A reader-philosophy of Pandit Deen Dayal Upadhyaya.
- Thengadi Dattopant B, Pandit Deendayal Upadhyaya: Ideology and Perception: An Inquest, First ed. New Delhi, Suruchi Prakashan, 2016.
- Two Extracts from Integral Humanism from Jaffrelot, Christophe (2007). Hindu nationalism a reader (in Czech). Princeton, N.J: Princeton University Press.
- Singh S.P. Integral Humanism of Pt. Deen Dayal Upadhyay and the Contemporary World. International Journal for Research Trends in Social Science and Humanities. 2023;1(1):19-24.
- Singh S. Decoding the Integral Humanism Philosophy of Pandit Deendayal Upadhyay. Journal of Research in Humanities and Social Science. 2022;10 (7), Pg 102-105.
- Biography of Pandit Deendayal Upadhyaya. Retrieved from: https://archive.pib.gov.in/documents/rlink/2015/sep/p201592501.pdf
- Mahesh Chandra Sharma, Deendayal Upadhyaya: Kartritva Evam Vichar, New Delhi: Vashudha Publication, 1994, p.3.
- Sabarwal Harshit, Deendayal Upadhyaya's birth anniversary today. Know more about the RSS thinker, Hindustan times, Sep, 25, 2021 Retrieved From https://www.hindustantimes.com/india-news/deendayal-upadhyaya-s-birth-anniversary-today-know-more-about-the-rss-thinker-101632535821187.html
- Yashee, Deendayal Upadhyaya's birth anniversary: his doctrine of integral humanism, which BJP considers its 'basic philosophy' Indian Express, Sep, 26, 2024 Retrieved From https://indianexpress.com/article/explained/explained-politics/deendayal-upadhyaya-integral-humanism-explained-9587650/
- Web Source: http://deendayalupadhyay.org/about_pandit.html https://www.bjp.org/pandit-deendayal-upadhyay

❒

Fostering Economic Growth through Entrepreneurship: Key Determinants And Policy Interventions

Ved Prakash Singh✶

Abstract

A major force behind economic change, entrepreneurship helps countries move from low-income, agriculturally reliant economies to high-income, technology- and service-based sectors. Entrepreneurship shapes a nation's overall development trajectory by influencing both periods of fast invention and periods of stagnation in addition to fostering economic growth. In the age of globalization and liberalization, which have brought about new economic frameworks and opportunities, the changing character of entrepreneurship is especially noticeable.

In India, where industrial development and personal entrepreneurial abilities are essential to economic advancement, this study explores the vital function of entrepreneurship. A number of factors must be taken into account in order to fully appreciate the benefits of entrepreneurship, including the establishment and administration of businesses, the challenges and opportunities faced by entrepreneurs, and the wider influence on the expansion of the national economy. The study looks at a number of important topics, such as how firms have evolved historically, entrepreneurial know-how, drive, and government programs that assist SMEs. Furthermore, it emphasizes the important role that women entrepreneurs play in promoting social and economic advancement in India's industrial sector.

This study highlights the necessity of creating an atmosphere that promotes innovation, supports small enterprises, and empowers female entrepreneurs by evaluating the connection between entrepreneurship and economic development. The results confirm that entrepreneurship is a major driver of equitable and sustainable development as well as a stimulus for economic growth.

Keywords : *Entrepreneurship, Economic Growth, Innovation, Small and Medium-sized Enterprises (SMEs), Women Entrepreneurs*

Introduction

The foundation of economic development is entrepreneurship, and the strength and inventiveness of entrepreneurs play a major role in economic growth. An element that all developed countries have in common is

✶ (Research Scholar, BHU).

entrepreneurial activity, which has a direct impact on economic development. Infrastructure improvements and general development initiatives are intimately related to a flourishing entrepreneurial ecosystem. Entrepreneurs play a crucial part in the overall advancement of the economy by contributing to the manufacturing, agricultural, and service sectors. An entrepreneur is a creative and driven person that aspires to great performance when starting a company or introducing innovations. In a short period of time, governments all over the world have recognized the importance of entrepreneurship and taken action to create the infrastructure required to support its steady expansion. India, too, has recognized the crucial role of entrepreneurship and has implemented several initiatives to promote its expansion. Comprehensive development, including social progress, is fundamentally tied to entrepreneurial advancement.

As articulated by the famous economist Schumpeter in 1934, "Entrepreneurship is based on purposeful and systematic innovation." The process of improving entrepreneurial abilities and knowledge through organized training and institution-building programs is known as entrepreneurship development. It encompassed not only individual businessmen but also managers and directors of companies that perform creative functions. In order to accelerate the creation of new businesses, it seeks to increase the number of entrepreneurs. John Kao's 1989 article, Entrepreneurship, Creativity, and Organization, outlined a conceptual model of entrepreneurship. Four key components make up this model:

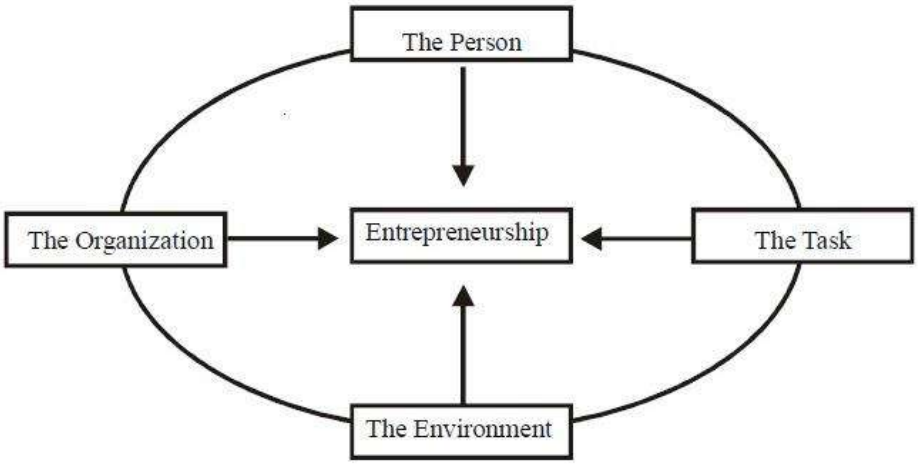

Many entrepreneurship supporting institutions are operating in India

to support entrepreneurs such as Small Industries Development Corporation (SIDCO), Small Scale Industrial Development Bank of India (SIDBI), District Industries Centre (DIC), Industrial Development Bank of India (IDBI), Small Industries Service Institutes(SISI),Entrepreneurship development Institute of India, National alliance of young entrepreneurs (NAYA)etc.

The most recent and popular schemes among them are Pradhan Mantri Mudra Yojana, Start-up India, Start-Up Village Entrepreneurship Programme and Stand Up India. As Pradhan Mantri Mudra Yojana is a widely accepted entrepreneurship development scheme.

Entrepreneurship is the process of initiating, expanding, and sustaining a business with the goal of generating profits in the future. Entrepreneurs aim not only to build successful enterprises but also to bring about positive societal change while fostering strong interpersonal relationships. They take their ideas and turn them into viable businesses, leveraging their ability to take calculated risks and accumulate wealth. Several factors: social, political, psychological, and economic affect entrepreneurship. While positive influences create a conducive environment for business growth, negative factors can hinder entrepreneurial success.

According to Chaudhari (2022), entrepreneurs seek to establish and manage their businesses, whether in manufacturing, processing, or other sectors, regardless of size or operational model. The history of Indian entrepreneurship is marked by inconsistencies. In pre-colonial and colonial times, entrepreneurs were often perceived as trader-money lenders constrained by caste, religious norms, cultural traditions, and social obligations, such as the joint family system and fate-based beliefs. Today, small businesses dominate India's entrepreneurial landscape, accounting for 80% of employment in the manufacturing sector and over 95% of business establishments. These enterprises have also seen significant productivity improvements. A notable portion of employment growth in manufacturing has been driven by small businesses taking on contracts in non-tradable sectors. Entrepreneurs undeniably play a vital role in India's economic development, driving the transition of underdeveloped regions into more developed ones. For businesses to remain competitive in the modern global market, a nation’s economic policies must foster a supportive environment for entrepreneurship.

Entrepreneurship is essential for tackling social issues, creating jobs, reducing poverty, and promoting economic growth and development, especially in small and medium-sized businesses (SMEs). Globally, SMEs are widely acknowledged to have a substantial impact on job creation, poverty alleviation, and real GDP (Chowdhury, 2011). In India, entrepreneurship has played a key role in promoting balanced and quick economic growth, particularly in the SME sector. Approximately 90% of all firms and 62% of all jobs in the nation are accounted for by SMEs, according to research (Yadav et al., 2018).

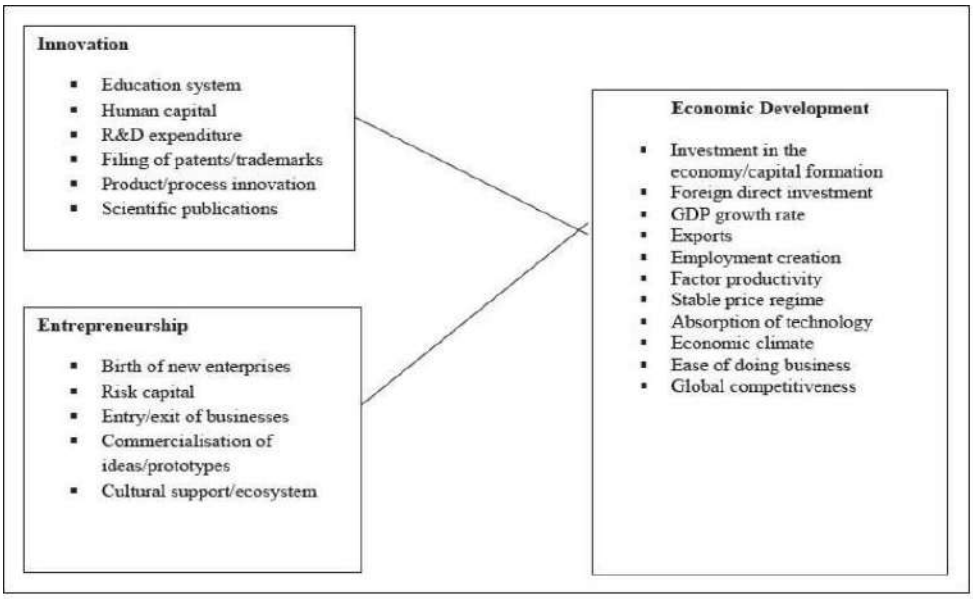

Figure 1: Entrepreneurship, Innovation, and Economic Development

Venture development, which includes funding and essential support, significantly enhances the impact of innovation and entrepreneurship on economic advancement. Private funding and venture capital investments have sped up start-ups' growth, allowing them to scale swiftly and forge a significant market presence. In addition to promoting the creation of innovative ideas, this funding increases these businesses' ability to tackle important societal concerns, such as sustainable development projects and healthcare advancements.

Review of Literature

Tushar Chaudhari (2022) asserts that entrepreneurs are essential to a country's economic development. The report recommends holding sizable industrial fairs and keeping in close contact with all participants in order to

increase visibility and boost product marketing, which would ultimately raise the success rate of business endeavors.

According to Sharma and Ritu (2021), the government is playing a bigger role in supporting an entrepreneurial ecosystem by boosting funding for these kinds of projects. This proactive government strategy increases entrepreneurs' awareness and trust while having a favorable impact on their attitudes and actions. Higher levels of inclusivity and involvement support the growth of varied entrepreneurial sectors throughout the nation.

Nambiar and Balasubramanian's (2020) study looks at how the Indian government has made implementing several startup programs a top priority in order to encourage entrepreneurship. In addition to stressing the value of readily available capital, the federal and state governments also implement laws that promote private investment, guaranteeing the founding and expansion of new businesses.

According to Yoganandan G et al. (2018), entrepreneurship is essential to a nation's economic success. Entrepreneurs play a major role in economic advancement by creating job possibilities. Their capacity to transform creative concepts into commercially viable goods aids in advancing a country's level of development.

Despite significant advancements in science, technology, skills, and education, India's potential as an entrepreneurial nation has not yet been fully fulfilled, according to Abhyankar (2014). The National Innovation Council and the Science, Technology, and Innovation Policy 2013, which both seek to promote sustainable entrepreneurship, are two examples of government measures that the report emphasizes as being crucial in closing this gap.

Das (2012) highlights that many nations consider entrepreneurship, particularly within small- scale enterprises, as a key solution to reducing unemployment, creating job opportunities, and uplifting rural communities in developing countries. In India, the government plays a significant role in coordinating entrepreneurial activities to provide financial support for unemployed and economically disadvantaged populations. Initiatives such as financial schemes offering subsidies and credit services to farmers transitioning into entrepreneurship enhance productivity, supplement incomes, and contribute to overall economic growth.

Objectives

1. To investigate the contribution of entrepreneurs to economic growth.

2. To determine the elements impacting economic growth in the field of entrepreneurship.

Findings and Results

I. The Role of Entrepreneurs in Economic Development

India, like many other developing nations, has an economy primarily driven by the agricultural sector. However, the industrial sector plays a crucial role in fostering economic growth. Raising everyone's standard of living is the ultimate goal of economic development. By maximizing the utilization of scarce resources and guaranteeing their most effective use, entrepreneurs help achieve this objective. Businesses must constantly adjust to technology improvements in the ever changing global economy of today in order to stay competitive. When small, creative businesses and major corporations prosper together, economic development is accelerated. India's economy supports a balanced industrial ecosystem by accommodating both public and private businesses.

Key Contributions of Entrepreneurs to Economic Development

1. **Economic Growth and Prosperity**: By producing wealth, raising GDP and per capita income, raising living standards, and opening up job opportunities, entrepreneurs propel economic growth. A more wealthy society is promoted by their contributions, which also result in improved infrastructure, economic independence, and the growth of deprived areas. Indian data: India's GDP (2023): $3.7 trillion (World Bank) and MSMEs contribute ~30% to India's GDP, 45% of India's total industrial employment comes from MSMEs.
2. **Social Stability and Balanced Regional Development**: Entrepreneurship plays a vital role in stabilizing society by generating employment, reducing poverty, improving healthcare and education, and ensuring fair competition and equitable income distribution. Entrepreneurs contribute to the establishment of social infrastructure, promote gender equality, and provide high-quality goods and services. Adam Smith acknowledged the impact of business owners on society, noting that while they may be driven by self-interest, their efforts ultimately lead to economic and social benefits. Indian Data: Unemployment rate: ~7.4% (2023, CMIE), India lifted 415 million people out of poverty (2005-2021, UNDP) and 20% of startups in India are women-led.

3. **Innovation as a Driver of Economic Growth**: Entrepreneurs act as catalysts for economic progress by introducing new ideas, products, technologies, and business models. Through systematic innovation and technological advancements, they ensure balanced economic growth. Peter Drucker emphasized that innovation and entrepreneurship must become integral components of modern economies and societies, highlighting the transformative role of entrepreneurs in shaping economic history. India ranked 40th in the Global Innovation Index (2023) and Over 1 lakh patents filed in 2022-23 (India Patent Office).
4. **Job Creation and Employment Generation**: Entrepreneurs significantly contribute to job creation by establishing businesses across various sectors, including manufacturing, trade, and services. They tap into underutilized labor markets, promote self-employment, and integrate resources and technology to generate new employment opportunities. Startups created 9 lakh+ jobs in the last 6 years (DPIIT, 2023) and 80 lakh new MSME registrations under Udyam portal (2022).
5. **Enhancing Productivity through Advanced Production Techniques**: Entrepreneurs play a key role in improving production methods and boosting efficiency. According to John Keudrick, enhancing production techniques is one of the primary functions of entrepreneurs. Investments in research and development (R&D) and advanced machinery further enhance productivity, demonstrating the strong connection between innovation and entrepreneurial initiative. George Gilder, in *The Spirit of Enterprise*, highlights how entrepreneurs create demand through innovation, drive technological advancements, and expand market opportunities, thereby strengthening the economy. R&D expenditure in India: ~0.7% of GDP (NITI Aayog, 2023) and India is the 3rd largest startup ecosystem globally (NASSCOM, 2023).
6. **Increasing Productivity with Modern Production Systems**: Liberalization, Privatization, and Globalization (LPG) have enabled entrepreneurs to explore export promotion and import substitution industries. This has led to the creation of new enterprises, efficient resource utilization, foreign exchange accumulation, and increased self-sufficiency in goods production, all of which contribute to national economic resilience. Exports from India: $450 billion (FY 2023-24 projection) and FDI inflows: $84 billion (2022-23, DPIIT).
7. **Accelerating Economic Expansion**: Entrepreneurship influences

various economic factors, including employment, trade, banking, and insurance. As entrepreneurial activities expand, national income increases, allowing governments to plan new initiatives and implement strategic economic policies. This, in turn, drives overall economic growth and development. Indian economy expected to reach $5 trillion by 2027 (IMF) and 10% annual growth in startup investments (2023, Invest India).

Entrepreneurs are instrumental in shaping a nation's economic landscape, fostering innovation, and ensuring sustainable development. Their efforts not only boost economic progress but also contribute to social stability and global competitiveness.

I. Factors Influencing Economic Growth in Entrepreneurship

1. **Financial Knowledge**: Enhancing financial awareness among Indian entrepreneurs is essential for improving their competence in financial management. Research has demonstrated a strong correlation between financial literacy and entrepreneurial engagement, success, and the ability to identify appropriate funding sources for business ventures (Alshebami & Marri, 2022). Additionally, studies indicate that young entrepreneurs with higher financial knowledge develop stronger entrepreneurial skills (Wise, 2012). The literature suggests that a well-integrated financial education system strengthens the capabilities of Indian entrepreneurs, equipping them with better money management skills and improving their access to financial resources, ultimately enhancing business performance. 76% of Indian adults lack basic financial literacy (NCFE, 2023) and Government initiatives like Startup India and MUDRA loans enhance financial access.
2. **Entrepreneurial Proficiency**: The idea of entrepreneurial competency includes a number of qualities that are important for the development of a business. In order to drive firm success, scholars stress the significance of human capital, entrepreneurial competencies, confidence, innovation, and a positive mindset. Education, skills, business experience, and personal drive are all critical components of small business effectiveness, according to Unger et al. (2011). Destiana et al. (2023) also point out that entrepreneurial competence has a big impact on company success and motivation, especially when it comes to time management, goal-setting, risk-taking, and engagement qualities. Particularly for MSMEs, a strong entrepreneurial attitude combined with pertinent knowledge and abilities

gives a company a competitive edge. COVID-19 rehabilitation programs include the Emergency Credit Line Guarantee Scheme (ECLGS), and Indian startups have a 25% survival rate after five years.

3. **Business Resilience**: Entrepreneurial resilience is a critical factor in overcoming challenges, managing pressure, recovering from setbacks, and sustaining long-term success. It includes essential skills such as adaptability, problem-solving, learning from failure, emotional regulation, and perseverance (Fatoki, 2018). Resilience not only benefits individual entrepreneurs but also strengthens organizations by enabling them to recover from economic downturns and crises (Bullough et al., 2014). Studies have shown a direct link between entrepreneurial resilience and sustainable business growth, reinforcing its significance in the survival of SMEs and broader community development (Bullough et al., 2014). Entrepreneurs need to be able to manage themselves well in order to navigate uncertainty and maintain the viability of their businesses (Fatoki, 2018). Research highlights that resilience has a positive impact on both personal and organizational success, making it a key factor in long-term business viability (Bullough et al., 2014). India has over 63 million MSMEs, employing 110 million people (MSME Ministry, 2023) and Entrepreneurial skill programs by NITI Aayog and NSDC to strengthen the startup ecosystem.

These factors such as financial knowledge, entrepreneurial proficiency, and business resilience play a pivotal role in shaping entrepreneurial success and driving economic growth. Economies can promote innovation, boost productivity, and improve overall business sustainability by providing entrepreneurs with the tools and resources they need.

Conclusion

Entrepreneurship is essential for economic success because it promotes innovation, generates employment, and advances national development. Since it promotes infrastructure upgrades and general societal progression, many industrialized nations have shown that a robust entrepreneurial ecosystem results in notable economic advancement. Entrepreneurs work in a variety of sectors, including as industry, services, and agriculture, to promote balanced development. In recognition of their significance, governments across the globe, including India, have implemented a number of laws and initiatives to encourage entrepreneurship,

recognizing its ability to propel social and economic change.

By applying their abilities, inventiveness, and risk-taking prowess, entrepreneurs hope to improve society in addition to growing their businesses and making money. Resilience, entrepreneurial skill, and financial literacy are some of the important elements that affect their success. Effective resource allocation is facilitated by a solid financial management foundation, and success in competitive marketplaces is made possible by entrepreneurial competency, which includes training, experience, and pertinent abilities. Additionally, resilience helps entrepreneurs overcome obstacles and maintain long-term success, which benefits both individual companies and the economy as a whole.

At the heart of economic development are small and medium-sized businesses (SMEs), which have a big influence on GDP growth, employment, and the fight against poverty. Due to government assistance and financial investments, start-ups have grown quickly, further solidifying entrepreneurship's status as a transformational force. Sustainable growth will depend on creating an atmosphere that encourages entrepreneurship through innovation, encouraging laws, and easy access to capital as economies continue to change. In the end, entrepreneurs play a crucial role in fostering economic growth by reducing the gap between developed and developing nations and boosting global competitiveness.

References

- Abhyankar, R. (2014). The government of India's role in promoting innovation through policy initiatives for entrepreneurship development. Technology Innovation Management Review, 4(8).
- Alshebami, A. and Marri, S. (2022). The impact of financial knowledge on entrepreneurial intention: the mediating role of saving behavior. Frontiers in Psychology, 13. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2022.911605
- Bullough, A., Renko, M., & Myatt, T. (2014). Danger zone entrepreneurs: the importance of resilience and self–efficacy for entrepreneurial intentions. Entrepreneurship Theory and Practice, 38(3), 473-499. https://doi.org/10.1111/etap.12006
- Chaudhari, T.(2022) Types and Skills Required by Successful Entrepreneurs: A Case Study.
- Journal of Commerce and Trade:17(02):1–4
- Chowdhury, S. R. (2011). Impact of global crisis on small and medium enterprises. Global Business Review, 12(3), 377-399. https://doi.org/10.1177/097215091101200303

- Das, S. K. (2012). Entrepreneurship through micro finance in north east India: A comprehensive review of existing literature. Information management and business review, 4(4), 168-184.
- Destiana, D., Yandes, J., Santosa, A., & Fadillah, S. (2023). The effect of entrepreneurial competence on business success through entrepreneurial motivation as an intervening variable. Jurnal Manajemen, 14(1), 99. https://doi.org/10.32832/jm-uika.v14i1.9786
- Fatoki, O. and Asah, F. (2011). The impact of firm and entrepreneurial characteristics on access to debt finance by SMEs in king williams' town, south africa. International Journal of Business and Management, 6(8). https://doi.org/10.5539/ijbm.v6n8p170
- Nambiar, R., & Balasubramanian, P. (2020). The impact of government support on the performance of startups in Kerala, India. Journal of Xi'an Shiyou University, Natural Science Edition, 16(10), 81-95.
- Sharma, A., & Ritu, N. R. (2023). Role of Government Schemes in Supporting Startups in India: A Quantitative Investigation. European Economic Letters (EEL), 13(1), 276-280.
- Unger et al. (2011). Human capital and entrepreneurial success: a meta-analytical review. Journal of Business Venturing, 26(3), 341-358.
- Wise, S. (2013). The impact of financial knowledge on new venture survival. International Journal of Business and Management, 8(23). https://doi.org/10.5539/ijbm.v8n23p30
- Yadav, V., Sharma, M., & Singh, S. (2018). Intelligent evaluation of suppliers using extent fuzzy topsis method. Benchmarking an International Journal, 25(1), 259-279. https://doi.org/10.1108/bij-07-2016-0114

❒

Role of Corporate Social Responsibility as a means of fostering Future Skilled Workforce via Vocational Education and Training

Tanu Mazumder✶, Dr . Mayank Kumar Singh✶✶

Abstract *: Corporate Social responsibility (CSR) in India has evolve significantly in recent years . CSR in India today is no longer just a philanthropic activity but is increasingly seen as strategic business responsibility .CSR refers to the ethical obligation of companies to the social, economic and environmental well-being .In India , CSR has evolve significantly with a growing emphasis on sustainability ,social impact and community development .*

CSR and Vocational education have become increasingly intertwined, especially in the context of fostering inclusive economic growth, skill development , and employability. CSR initiatives , have been focusing more on supporting vocational education program to enhance the skills of the workforce, particularly in underdeveloped or underdeveloped regions . For preparing future skilled workers vocational education is essential because it focuses on equipping them with practical ,job-specific skills that are highly valued in the modern workforce .Future skilled workers benefit greatly from vocational education since it equips them with the specialized information, practical abilities, and practical experience needed to succeed in a variety of vocations and industries .All of this requires for a sharp rise in the degree of flexibility in the educational system, the development of essential new ways for it to engage with companies and the labour market, and their active involvement in its future. This research is about theoretical thought which says CRS not only for economic profit but also for the well-being of the employees.

Keywords *: Vocational education, Training , Skilled workforce , Corporate Social Responsibility, India .*

Introduction : In India vocational training plays a vital role in creating a skilled workforce , helping individuals gain practical, industry-specific skills that are crucial for enhancing employability and driving economic growth.

Corporate social responsibility by vocational education refers to business efforts to contribute to the development and improvement of vocational training programs , supporting individual in acquiring practical skills that enhance their employability and contribute to social welfare .

✶ Research Scholar, BHU, Email- mazumdertanu5@gmail.com

✶ Associate Professor,DAV PG college Varanasi

Theoretical foundations

Vocational education and skilled workforce in India : Technical and vocational education and training (TVET) encompasses all educational levels and forms that impart vocation-related information and skills through formal, informal, and non-formal learning approaches in both school-based and work-based learning contexts. To achieve its aims and purposes, TVET focuses on the learning and mastery of specialized techniques and the scientific principles underlying those techniques, as well as general knowledge, skills and values.

Education that educates individuals for a skilled craft is known as vocational education. Vocational education can also be defined as the kind of education that equips a person with the necessary skills to work for themselves or in a profitable job.

For vocational education and training to effectively function in the evolving global environment , its goals must be re-examined . It needs to be flexible ,up to date ,adaptable , inclusive and innovative. It is important to keep in mind that by 2025, 700 million young people in India will be under the age of 35 , accounting for almost 35% of its population under the age of 15 and a population growing at a rate 1.8% annually. With a large number of young people ,India has the chance to establish itself as a reliable source of skilled workers for the rest of the world in the era of knowledge-driven society , where the workforce is getting smaller and the population of wealthy nations is getting older. By concentrating on providing excellent skill training and vocational education to the country's enormous population , the country will benefit greatly. Vocational education consists of training and educational programs designed to equip individuals with specific skills and knowledge needed for a particular job or career. This type of education focuses on hands-on, practical training on field such as healthcare, technology, trades, hospitality, automotive repair, and more. It prepares students for direct entry into the workforce, typically through certifications, diplomas or associate degrees. Vocational education can be offered in high schools, technical schools , community colleges or specialized trade schools .

Vocational education and training (VET) is defined by the National Sample Survey Organization (NSSO) as educational programs and courses that give people specialized skills in order to prepare them for a given job or trade. In order to collect information on the extent , type and distribution of vocational education and training in India , the NSSO has carried out surveys that concentrate on a number of topics including enrollment in VET ,

demographic distribution, mode of training, employment outcomes , trends and challenges. The NSSO states that there are two types of vocational training in India : non formal and formal . Formal vocational training adheres to a predetermined curriculum and produces degrees , certificates, or diplomas accepted by the public sector , the state or federal government , and other respectable organizations . A person can continue to work in their ancestral trade or occupation by acquiring marketable skills through non-formal vocational training .

To address the changing needs of the labor market ,boost employability and promote economic growth , the Indian government has undertaken multiple initiatives to develop and broaden vocational education and training (VET) since 2004. Some key initiatives and programs include like National Policy on Skill Development , Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana ,Skill India Mission ,Technical Education and Training , Vocational Education in Schools etc.

Understanding CRS :For many years , the ideas behind Corporate Social Responsibility have been developing . Carroll's work , which divided social responsibilities into four sections , is cited in our study .

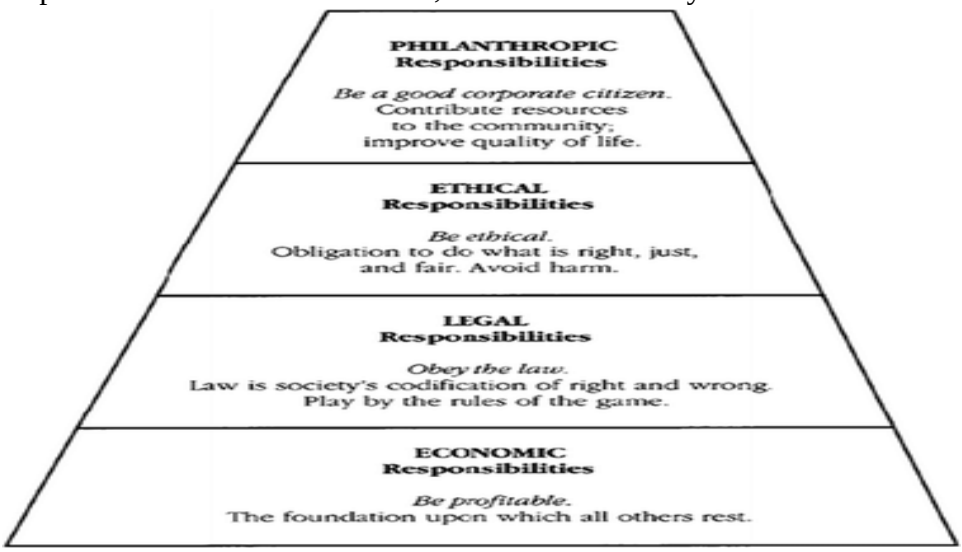

Figure 1 : Social Responsibility categories (Carroll ,1979)

1. Economic Responsibility : This is the foundational level, where a business prioritizes making money and being able to continue operating.
2. Legal Responsibilities ; adhering to all applicable laws and rules in the workplace.
3. Ethical Responsibility : It is the ability to act morally and ethically above

and above the obligations of the law while taking stakeholders' interest into account when making business decisions.

4. Philanthropic Responsibility: Engaging in voluntary activities to benefit society, such as charitable donations or community involvement.

Research Method : The literature review for this study focused on India's issues with vocational education . Secondary data were used in this study .Information obtained from the study results of earlier researchers. The secondary data sources in question are the primary or original scientific books and reports that can be found in printed or non-printed publications or journals . Research techniques that use topic-relevant book and journal article organizations integrate findings from the articles, pinpoint ideas deemed essential and provide data that forms the basis of the study .

Result and discussion :

The responsibilities of the company in employees' vocational training : Companies are plays a crucial role to their employees' vocational training ,and they have a number of duties to make sure that this training is efficient ,advantageous ,and in line with the goals of the company as well as the professional growth of each employee. When it comes to employee vocational training , business have the following main obligations

1. Offering training opportunities : It is the duty of businesses to provide current and pertinent training programs that assist staff in acquiring the abilities required for their positions . This covers both initial training for new employees and current employees' continuing development .
2. Support and resources : To enable efficient training , business should offer the required resources , such as access to educational materials , instruments and technologies. To attend training programs , they may also provide time off from usual responsibilities.
3. Customized training programs : Companies must sure that that their training initiatives meet the unique requirements of their workforce as well as objectives of the business. This involves offering training that is pertinent to the work functions to the staff , their professional development , and changes in the business's industry .
4. Professional growth and progress : Providing vocational training ought to be a component of a more comprehensive approach to professional growth . When employees gain new talents , companies should provide them with clear pathways to advance within the company .
5. Assessment and feedback : Businesses are in charge of assessing the

success of training initiatives and , if required , making adjustments . Employees should also receive feedback from them about their development and places for growth .

Examine the link between the company's responsibilities to employees' vocational training in more detail in terms of vocational training according to four types of responsibilities of Carroll:

A. *Economic Responsibilities and Vocational training*

Economic responsibility in vocational training centers on both notion that skill development is an investment that both business and employees make in order to increase productivity , financial stability and general economic growth .Employees enjoy job security and career advancement, business gain efficiency and comprehensiveness and society , gains improve productivity, innovation and lower unemployment . In this approach , vocational training is a crucial driver of both microeconomic and macroeconomic growth .

B. *Legal Responsibilities and vocational training*

Ensuring that training programs adhere to pertinent labor , safety and industry specific requirements in the main legal responsibility surrounding vocational training in a business. This entrails offering equitable and secure training options, guaranteeing equal access to training , defending the rights of workers and fulfilling legal certification and qualification criteria .

C. *Ethical Responsibility and Vocational training*

Ethical responsibility in vocational training emphasizes fairness, respect and support throughout the training process. Equal access of training ,fair compensation , open communication and personal growth should be given top priority by business. Employees who fulfill these ethical obligations create a productive and empowering workplace, which benefits both employees and the expansion and success of the business.

D. *Discretionary Responsibilities and vocational training*

In vocational training, discretionary duty extends beyond meeting fundamental duties and centers on voluntary steps taken by companies to improve the growth , welfare and prospects for success of their workers as well as make a constructive contribution to society. Business show their dedication to long-term social and economic advancement by providing more training opportunities, sponsoring community projects, fostering a culture of continuous learning and promoting employee innovation.

Conclusion :

Business, workers and vocational training as part of Corporate Social Responsibility. Business may help economic development , lower unemployment and promote social inclusion by providing training programs that equip workers with useful skills, assisting underrepresented groups, encouraging lifelong learning ,and collaborating with educational institutions. Additionally companies can provide enduring social value by promoting sustainability, entrepreneurship and local communities which will improve their reputation and building a more engaged and developed workforce. In the end, CRS initiatives focused on vocational training link social advancement with corporate success , which is advantageous to the organization and the community.

References

- Anggusti .M (2019) "The Power of Corporate Social Responsibility to Raise the Small Medium Enterprises in Indonesia".
- Arora. B and Puranik.R (2004) " A Review of Corporate Social Responsibility in India".
- Basariya.S.R and Kake.F.A (2019) "Corporate Social Responsibilityin Micro Small and Medium Industries".International Journal of Control and Automation. Vol. 12, No. 5.
- Chalapati . N and Chalapati .S (2019) "Bulding a Skilled Workforce : Public discourses on Vocational Educationm in Thailand ". International Journal for Research in Vocational Education and Training. Vol.7 .
- Choi.S.J , Jeong.J.C and Kim.S.N (2018) "Impact of Vocational Education and Training on adult skills and employment : An applied Multilevel Analysis".Published by Elsevier Ltd.
- Kiran S.Bundhrani, Mark M.D Amico and Jose Lioyd D.Espiritu (2018) "Developing a Skilled Workforce Through Technical and Vocational Education and Trainingin the Philippines".
- Kovalchuk . V , Maslich .S , Tkachenko . N , Shevchuk . S and Shchypska . T (2022) "Vocational Wducation in the context of Modern Problems and Challenges".Journal of Curriculum and Teaching .vol. 11 , No. 8.
- Kurniawan.A.A (2020) "Corporate Social Responsibility and Community Empowerment Program for MSMEs and Informal Sectors Affected By the COVID-19 Pandemic".International Journal of Innovation Review .
- LE.T.T.T and Nanteuil.M.D (2015) "Employees' Vocational Training and Corporate Social Responsibility (CRS) : beyond Primary Responsibilities".jouenal on Business Review vol.4 No.2, .
- Ramadhani.M.A and Rahayu.E (2020) "Competency Improvement Through Internship : An Evaluation of Corporate Social Responsibility Program in Vocational School".International Journal of Evaluation and Research in Education. Vol. 9 , No. 3.
- Singh.R.K (2022) "Role of Vocational education and Skill Training to Stimulate Human Development".Indian Journal of Social Science and Literature,Volume-2.
- Tewari. R and Pathak. T (2014) "Sustainables CRS for Micro, Small and Medium Enterprises". Journal of Management & Public Policy. Vol. 6, No. 1.

❒

Science & Religion

Dr. Sunita Barman*

Introduction:

Religion is a system of beliefs, practices, and rituals that often involve a belief in a higher power or deities and seeks to explain the meaning of life and the universe, while science is the systematic study of the natural world through observation and experimental. I am convinced that evolution and religious beliefs need not be in contradiction. Indeed, if science and religion are properly understood, they cannot be in contradiction because they concern different matters. Science and religion are like two different windows for looking at the world. The two windows look at the same world, but they show different aspects of that world.

Swami Vivekananda has shown that religion, as developed in India in her Vedanta, and modern science, are close to each other in spirit and temper and objectives. Both are spiritual disciplines. Even in the ***cosmology*** of the ***physical*** *universe*,

The postulate (of the ultimate reality), of a self-evolving cause. Vedanta calls it Brahman, which is a universal spiritual principle. **The Taittinya Upanisad (Ill. 1)** defines Brahman in a majestic utterance, which will be welcomed by every scientific thinker:

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते
येन जातानि जीवन्ति
यत प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व।
तद् व्रह्मेति'।

Wherefrom all these entities are born, by which, being born, they abide; into which, at the time of dissolution, they enter-seek to know That; That is Brahman.

To the modern scientist, that self-evolving cause is a ***material reality,*** the background material or cosmic dust, as **astrophysicist Fred Hoyle** terms it; whereas, to Vedänta, which vers it also in the light of the consciousness revealed in its evolutionary product, namely, man, it is a universal spiritual

* Associate Professor, Department of Sanskrit, Vivekananda mission Mahavidyalaya, Haldia, Purba Medinipur, West Bengal, Sunita1sanskrit@gmail.com.

principle, the चिद्-आकाश.

Chardin calls a within to nature, over and above and different from the without of **nature revealed by physics and astronomy**. Vedanta terms the 'within' as the पत्यक्ष रूप and the 'without' as the परोक्ष रूप of one and the same nature.

The synthesis of the knowledge of the within and the without is philosophy; and this was what India achieved in her Vedanta ages ago as सांख्य-योग, comprehensive or perfect knowledge of total Reality. Reality itself does not know any distinction between a within and a without. These distinctions are made only by the human mind for the convenience of study and research and daily life.

Says Sri Krsna in the Gita

'क्षेत्र क्षेत्रज्ञ योर्ज्ञानं यत तदज्ञानं मतं मम' -(XIII. 2):

The knowledge of क्षेत्र , the not-self (the 'without' of things), and of क्षेत्रज्ञ the knower of the क्षेत्र (the within of things), is true knowledge, according to Me.

The Vedäntic view of evolution and of man's uniqueness finds a unique statement in the **Srimad Bhagavatam**

'सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या-

वृक्षान् सरीसृपपशून खगदंशमतस्यान्।

यैस्तैरतुष्टहृदयः पुरूषं विधाय

व्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः'।। -(XI. 9. 28):

'The divine One, having projected (evolved), with His own inherent power, various forms such as trees, reptiles, cattle, birds, insects and fish, was not satisfied at heart with forms such as these; He then projected the human form endowed with the capacity to realise Brahman (the universal divine Self of all), and became extremely pleased'.

Drg-arya-viveka said, that The quantum energy field or the four-dimensional space-time, which physics presents as beyond sensory verification, finds its counterpart in Vedanta in its चिदाकाश, the आकाश or the Void, of चित्त, or mind. This is the knowledge-field or Consciousness-field, of which the दृक् and the दृश्यम् are but two poles as the knower and the known or

the observer and the observed. **This Vedantic truth will become revealed to subatomic physics when it resolves its present contradiction involved in viewing its 'observer' in terms of classical physics while viewing its 'ob-served' in terms of quantum probabilities**.

It is about this चित्त or mind that the great **neurologist Sir Charles Sherrington said**, from the point of view of **modern neurology:**

It remains without sensual confirmation, and it remains without it for ever.'

And what Sherrington said about mind is exactly what the great **mathematician-physicist Eddington said** about matter, from the point of view of **modern physics.**

Eddington has also said that, "Consciousness is the most direct thing in experience; all else is remote inference.

in two famous verses (Drg-arya-viveka, the Discrimination between the दृक् and the दृश्यम्, verses 1 and 30):

रूपं दृश्यं लोकानां दृक्,
तत् दृश्यं दृक् तु मानसम्।
दृश्याः धी-वृत्तयः, साक्षी
दृगेव, न तु दृश्यते।।

*Form is दृश्यम्, (then) the eye is the दृक् ;that (i.e., the eye) is the दृश्यम्, then the mind is the दृक् ; the pula tions of the mind are the दृश्यम् ; (then) the शक्ति or the Witness, i.e., the Self (of these), alone is the दृक् ,(and it is always the दृक्) and (being self-luminous) can never be (made) a दृश्यम्.

'देहाभिमाने गलिते
विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति
तत्र तत्र समाधयः'।।

When the notion and attachment that one is the physical body is dissolved, and the supreme Self is real-ized, wherever the mind goes, (there) one experiences samädhi.'

Conclusion

As presented by Swami Vivekananda in the modern age, Sister Nivedita writes (Complete Works, Vol. I, eleventh edition, Introduction, pp. xiii-xiv):

'To him, there is no difference between service of man and worship

of God, between manliness and faith, between true righteousness and spirituality. "Art, Science, and Religion", he said once, "are but three different ways of expressing a single truth. But in order to understand this, we must have the theory of Advaita (non-duality)?

'In modern physics, the question of consciousness has arisen in connection with the observation of atomic phenomena. Quantum theory has made it clear that these phenomena can only be understood as links in a chain of processes, the end of which lies in the consciousness of the human observer. In the words of Eugene Wigner (Symmetries and Reflections-Scientific Essays, p. 172):

Understood in this light, there is no conflict between science and religion, between the physical sciences and the science of spirituality. Both have the identical aim of discovering truth and helping man to grow physically, mentally, and spiritually, and achieve fulfilment. But each by itself is insufficient and helpless. They have been tried separately with unsatisfactory results.

❒

''प्रभा'' : शोध-पत्र प्रकाशन सम्बन्धी नियम एवं निर्देश

1. संगणक (कम्प्यूटर) पर टंकित शोध-पत्र की सॉफ्ट (वर्ड, पी.डी.एफ. फाईल) एवं हार्ड प्रति प्रधान सम्पादक/सहसम्पादक के नाम अवश्य प्रेषित करें। लेखक अपना नाम, पता, ई-मेल एवं मोबाईल नम्बर अवश्य दें।
2. शोध-पत्र ए-4 आकार के पेपर पर डबल स्पेस में टंकित होना चाहिए।
3. **हिन्दी एवं संस्कृत भाषा में टंकित लेख** - ए.पी.एस.-डी.वी.-प्रियंका रोमन फॉन्ट/क्रुति देव 010/यूनीकोड; शीर्षक-17 प्वाइंट ब्लैक, लेखक का नाम– 13 प्वाइंट ब्लैक, टेक्स्ट-14 प्वाइंट, फोलियों-11 प्वाइंट और पाद टिप्पणी 9 प्वाइंट में दें।
4. **अंग्रेजी भाषा में टंकित शोध-पत्र** 'टाइम्स न्यू रोमन' फॉन्ट, शीर्षक-14 प्वाइंट आल कैप्स ब्लैक, लेखक का नाम-11 प्वाइंट ब्लैक, टेक्स्ट-12 प्वाइंट, पाद टिप्पणी और फोलियों- 9 प्वाइंट में दें।
5. शोध-पत्र 3000 से 4000 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए।
6. शोध-पत्र मौलिक एवं प्रामाणिक होना चाहिए तथा त्रुटि अथवा भ्रामक होने की दशा में लेखक स्वयं जिम्मेदार होगा।
7. शोध-पत्र में आवश्यक संशोधन का अधिकार प्रधान सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।
8. शोध-पत्र स्तरीय न होने की स्थिति में उसे अस्वीकार किया जा सकता है।
9. किसी भी शोध-पत्र के कॉपी राईट का अधिकार प्रधान सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।
10. उपर्युक्त निर्धारित नियम के विपरीत शोध-पत्र स्वीकार नहीं किये जाएँगे।

❐

Guidelines for Publication in 'PRABHA' Multidisciplinary International Refereed Research Journal

1. Please send your research article in soft copy (Word & PDF File) and one hard copy to the Chief Editor/Associate Editor with name of Author, address, email and mobile No.
2. Script should be typed in double space on A4 size bond paper.
3. Script in Hindi or Sanskrit should be typed in A.P.S.-D.V.-Priyanka Roman/Kruti Dev 010/Unicode Font. The title should be in font size 17, Author name in 13 point Black, Text in 14 point, folio in 11 point and footer in 9 point.
4. The script in English should be in Times New Roman font, title in 14 point all caps black, Author name -11 point black, Text in 12 point, footer and folio in 9 points.
5. The article should be written in maximum 3000 to 4000 words including references.
6. The article should be original and certified by the authors. If any mistakes or misleading data arises it will be sole responsibility to the author.
7. The Chief Editor or editorial board hold the right to modify or correct the research article as per need.
8. The research article may be rejected if it will be not as per standard of Journal.
9. The copy right of the published article will be reserved to the Chief Editor.
10. Against the above guidelines no research article will be accepted.

❒